RNI-UPBIL/2011/38102

ISSN-2231-5837

Indian Journal of Social Concerns

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

(मानविकी एवं समाज विज्ञान पर केन्द्रित अर्न्तराष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

Volume -9: Issue - 40 Dec. 2020 Gaziabad

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)

Journal Impact Factor No. : 5.114

Editor
Dr. RAJ NARAYAN SHUKHLA

Asstt. Editor
MUKTA SONI

Art Editor
Dr. (MS) PANKAJ SHARMA

Legal Advisor
Dr. JASWANT SAINI
SHRI BHAGWAN VERMA

Office Assistant
JITENDER GIRDHAR

Chief Editor
Dr. HARI SHARAN VERMA

Sub Editor
Dr. PUSHPA
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

Managing Editor
Dr. SANGEETA VERMA

Joint Editor
Dr. PRIYANKA SINGH

Computer Operator
MS. NEHA VERMA

Dr. Hari Sharan Verma
Chief Editor

Dr. Raj Narayan Shukhla
Editor

Dr. Sangeeta Verma
Managing Editor

- The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author.
- The editor does not owe any kind of responsibility in this regard

मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,

गाज़ियाबाद द्वारा संचालित

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : harisharanverma1@gmail.com
WWW.IJSCJOURNAL.COM

सहयोग राशि (भारत में)
(व्यक्तिगत) (आजीवन 4100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 6100 रुपये)
विदेश में :–
(व्यक्तिगत) 26 यू.एस. डॉलर (आजीवन) (संस्थागत) 32 यू.एस. डॉलर (आजीवन)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :
1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM
2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक
1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ० पी.के. शर्मा, (ई–36 बलवन्त नगर विश्वविद्यालय मार्ग, गवालियर, मध्यप्रदेश फोन : 09039131915
3. डॉ० राजकुमारी सिंह (प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपुत मुरादाबाद उत्तर प्रदेश। फोन : 09760187147
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. डॉ० विमला देवी, सहायक प्रोफेसर (इतिहास) स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय लोहाघाट चंपावत (उत्तराखण्ड)–262524 – 9411900411
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0ए0वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 किरण मिश्रा, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी, राम गुलाब राय कालेज, रूसतमपुर गोरखपुर–273001 मौ0 7007018819

स्वत्त्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ० राजनारायण शुक्ला द्वारा आदर्श प्रिंट हाऊस, बी–३२, महेन्द्रा एन्क्लेव, शास्त्री नगर, गाजियाबाद में मुद्रित कराकर, SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०) से प्रकाशित।
सम्पादक : डॉ० राजनारायण शुक्ला। **पंजीकरण संख्या :** ISSN-2231 - 5837

संरक्षक मण्डल :
1. **डॉ० रामसजन पाण्डेय** (कुलपति, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
2. डॉ० दिनेश मणी त्रिपाठी, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ0प्र0
3. **डॉ० राजेन्द्र सिंह,** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय राहतक
3. **डॉ० एस.पी. वत्स,** (पूर्व कुलसचिव, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० रमेशचन्द लवानिया,** (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
5. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)

परामर्शदात्री समिति :
1. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
2. **डॉ० सुधेश** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. **डॉ० प्रतिभा त्यागी,** (प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
6. **डॉ० जंगबहादुर पाण्डेय,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची–**834008**
फोन : 09431595318
7. **डॉ० माया मलिक,** (प्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
8. **डॉ० ममता सिहल,** (एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:
1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ० के०डी० शर्मा,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
6. **डॉ० उत्तरा गुप्ता** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, आर. एन. कॉलेज, मेरठ)
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

कॉलेज, गाजियाबाद)
9. **डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर) हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल
10. **कु० महाविद्या उपाध्याय** (हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, आरोना (गुना) म०प्र०)
11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (कश्मीर) 09419058585
12. **डॉ. सुरेश कुमार** (सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बी.एल.जे. एस. कॉलेज, तोशाम, भिवानी)
13. **डॉ० उर्मिला अग्रवाल,** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
14. **डॉ० शशिबाला अग्रवाल** (रीडर, हिन्दी विभाग, कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ)
15. **डॉ० अनिल कुमार विश्वकर्मा** (जनता महाविद्यालय अजीतमल, औरेया, उ०प्र०)
16. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
17. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
18. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
19. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
20. **डॉ० सीता लक्ष्मी,** पूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम, आन्ध्रप्रदेश
21. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (वरिष्ठ सहायक प्रो०, हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
22. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** (एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
23. **डॉ० शीला गहलौत,** प्रोफेसर (हिन्दी विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
24. **डॉ० राजीव मलिक,** (प्रो. एवं अध्यक्षा, हिन्दी–विभाग, भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय, खानपुर)
25. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा
26. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
27. **डॉ० कामना कौशिक,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग एम.के. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिरसा 09896796006
28. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक
29. **डॉ0 किरण मिश्रा,** सहायक प्रोफेसर, राम गुलाब राय कालेज, गोरखपुर

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ. जे.के. शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, एस.जे.के कॉलेज, कलानौर (रोहतक)
7. **डॉ. रेशमा सिंह,** (एसो. प्रोफेसर, अंग्रेजी–विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन,** रीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ० वजीर सिंह नेहरा,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
6. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
7. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
7. **डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह,** (एसोसिएट प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, उ.प्र.)

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० राजेन्द्र शर्मा** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
5. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
6. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
7. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू

विश्वविद्यालय, जम्मू (कश्मीर)

8. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
9. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द
5. **डॉ० जगवीर सिंह गुलिया,** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय मकड़ौली कलां रोहतक

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० सरिता दहिया** असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
3. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
4. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29, Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
5. **डॉ० नीलम रानी,** प्राचार्या, गोल्ड फील्ड कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बल्लभगढ़ (फरीदाबाद)
6. **डॉ० उमेश चन्द्र कापरी,** सहायक प्राफेसर, शिक्षा विभाग, गोल्ड फील्ड कॉलेज ऑफ एजुकेशन, बल्लभगढ़ (फरीदाबाद) **Mob.: 09711151966, 7428160135**
7. **डॉ० सुनीता बडेला,** एसो० प्रो०, शिक्षा विभाग, हेमवतीनंदन बहुगुणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल–२४६१७४
8. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
9. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
10. **डॉ० अनीता ढाका,** (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा।)
11. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद गर्ग,** एसोसिएट प्रोफेसर शारीरिक शिक्षा विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
3. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
4. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram
5. **डॉ० हरेन्द्र सांगवान,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद
3. **डॉ० (श्रीमती) रश्मि त्रिवेदी,** अध्यक्षा, रानी भाग्यवती महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बिजनौर एवं संयोजक रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० रेणु सिंह राना** (रीडर, अर्थशास्त्र विभाग, गिन्नी देवी मोदी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोदीनगर)
3. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
5. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)
6. **डॉ० सारिका चौधरी,** अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, दयाल सिंह कॉलेज करनाल

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)

3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभागः

1. **डॉ० संजीव कुमार सिंह** (रीडर गणित विभाग, ए.आर.ई.सी. कॉलेज, खुरजा)
2. **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
3. **डॉ० मीनाक्षी गौड,** रीडर एवं अध्यक्षा गणित विभाग, नानकचन्द ऐंग्लो, संस्कृत कॉलेज, मेरठ
4. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चर्रार गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ
5. **डॉ0 रशिम मिश्रा,** सहायक प्रोफेसर, जी0 एल0 बजाज इन्सटियुट ऑफ टैक्नोलजी एण्ड मैनेजमेन्ट नोएडा–201300, मौ0 8287829254

कम्प्यूटर विभागः

1. **डॉ० रेखा चौधरी,** एसोसिएट प्रोफेसर, कम्प्यूटर विभाग, राजकीय इंजीनियरियंग कॉलेज, भरतपुर, राजस्थान
2. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)
3. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईस, खालसा कॉलेज, पटियाला)
4. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभागः

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** (रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)
2. **डॉ० सुनीता सैनी,** प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० साधना सहाय** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
4. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)
5. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य}** एल ० पी ० के ० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभागः

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभागः

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभागः

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभागः

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली
2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)
4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभागः

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभागः

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

An update on UGC - List Journals

The UGC List of Journals is a dynamic list which is revised periodically. Initially the list contained only journals included in Scopus, Web of Science and Indian Citation Index. The list was expanded to include recommendations from the academic community. The UGC portal wasa opended twice in 2017 to universities to upload their recommendations based on filtering criteria available at https://www.ugc.ac.in/journallist/methodology.pdf. The UGC approved list of Journals is considered for recruitment, promotion and career advancement not only in universities and colloges but also other institutions of higher education in India. As such, it is the responsibillity of UGC to curate its list of approved journals and to ensure the it contains only high-quality journals.

To this end, the Standing Committee on Notification on Journals removed many poor quality/predatory/questionable journals from the list between 25th May 2017 and 19th Septemeber 2017. This is an ongoing process and since then the Committee has screened all the journals recommended by universities and also those listed in the ICI, which were re-evaluated and rescored on filtering criteria defined by the Standing Committee. Based on careful and analysis, 4,305 journals were removed from the current UGC-Approved list of Journals on 2nd May, 2018 because of poor quality/incorrect or insufficient information/false claims.

The Standing Committee reiterates that removal/non-inciusion of a journal does not necessarily indicate that it is of poor quality, but it may also be due to non-availability of information such as details of editorial board, indexing information, year of its commencement, frequency and regularity of its publication schedule, etc. It may be noted that a dedicated web site for journals is once of the primary criteria for inclusion of journals. The websites should provide full postal addresses, e-mail addresses of chief editor and editors, and at least some of these addresses ought to be verifiable official addresses. Some of the established journals recommended by universities that did not have didicated websites, or websites that have not been updated, might have bee dropped from the approved list as of now. However, they may be considered for re-inclusion once they fulfil these basic criteria and are re-recommended by universities.

The UGC's Standing Committee on Notification on Journals has also decided that the recommendation portal will be opened once every year for universites to recommend journals. However, from this year onwards, every recommendation submitted by the universities will be reviewed under the supervision of Standing Committee on Notification of Journals to ascertain that only good-quality journals, with correct publication details, are included in the UGC approved list.

The UGC would also like to clarity that 4,305 journals which have been removed on 2nd May, 2018 were UGC-approved journals till that date and, as such, articles published/accepted in them prior to 2nd May 2018 by applicants for recruitment/promotion may be considered and given points accordingly by universities.

The academic community will appreciate that in its endeavour to curate its list of approved journals, UGC will enrich it with high-quality, peer-reviewed journals. Such a dynamic list is to the benefit of all.

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Kiran Sharma**
   Asso.Professor, English Department, Govt. P.G. College (Women), Rohtak (Haryana)

4. **Dr. Narayan Singh Negi**
   H.No. 15, Umracoat, langasu-246446, Distt. Chamoli, Uttrakhand.

5. **Dr. Sarika Choudhary**
   Head Department of Economics, Dyal Singh College, Karnal (Haryana)

6. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

7. **Dr. Reshma Singh**
   Assistant Professor, English Department, J.V. Jain College, Saharanpur (U.P.)

8. **Dr. Savita Budhwar**
   Assistant Professor, K.V.M. Narsing College, Rohtak.
   H.No. 196/29, Gali No. 9, Ram Gopal Colony, Rohtak.
   Mob. 9996363764

9. **Principal**
   Sat Jinda Kalyana College, Kalanaur (Rohtak, Haryana) 124113

10. **Dr. Renu Rana**
    Assistant Professor Department of (Political Science) Pt. Nekiram Sharma Govt. College Rohtak-124001
    H.No. 1355, Sect-2, Rohtak

11. **Dr. Mamta Devi**
    Assistant Professor Department of Polt. Science Hindu Girls College, Sonepat (Haryana)
    H. No. 2066, Sect. 2 (P), Rohtak 124001

12. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

13. **Dr. Sarita Dahiya** (Department of Education, Maharshi Dayanand University, Rohtak 8222811312

14. **Dr. Vimla Devi,** Assistant Professor (History), Swami Vivekanand Govt. (PG) College, Lohaghat, Champawat (Uttrakhand)

15. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

16. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

अनुक्रमणिका

क्र. विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1. वर्तमान में मानवमूल्यों की स्थिति और गुरू जाम्भोजी	डॉ0 कमलेश कुमारी	9—13
2. सामाजिक सरोकार के कहानीकार ओमप्रकाश वाल्मीकि	डॉ0 मृत्युंजय कोईरी	14—17
3. चाणक्य नीति एवं नीतिशतक में धन का महत्व	डॉ0 सूरज सिंह	18—21
4. साहित्यिक साक्षात्कार के अनिवार्य गुण	प्रमिला देवी	22—23
5. दयाप्रकाश प्रकाश सिन्हा के नाटकों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक संवेदना का समन्वय	प्रमिला देवी	24—27
6. वर्तमान में संगीत के क्षेत्र में समूहगान की बढ़ती लोकप्रियता के जनसंचार के साधन का अध्ययन	मोनिका ड़डवाल	28—30
7. अंतहीन का अंतहीन मानवतावादी दृष्टिकोण	डॉ0 सुधांशु कुमार शुक्ला	31—35
8. आधुनिक हिंदी काव्य में महिलाओं द्वारा महिला सशक्तिकरण	डॉ0 राहुल कुमार	36—39
9. डॉ0 राधेशयाम षुक्ल के साहित्य में पारिवारिक सम्बन्धों का ताना—बाना	शारदा कुमारी	40—42
10. समूहगान और समूहवादन का आपसी सम्बन्ध	रविन्द्र कुमार	43—45
11. हिंदी भाषा और राष्ट्र निर्माण	अनु इन्दौरा	46—49
12. दिनेश चमोला के काव्य में मानवतावाद	सलमा असलम	50—55
13. मृच्छकटिकम् के कथानक पर अन्य कथानक का प्रभाव	डॉ0 कनक लता कुमारी	56—57
14. कोरोना महामारी और मानव समुदाय की भागीदारी	डॉ0 ललिता कुमारी	58—60
15. 'ममेतर को साधते आत्मान्वेशी अज्ञेय'	डॉ0 मनोज पण्ड्या	61—64
16. मधुकान्त जी की कहानियों में अध्यापक जीवन	बबली	65—68
17. विष्णु प्रभाकर के साहित्य में प्रजातन्त्र का अर्थ और स्वराज्य की व्याख्या	डॉ0 अनीता	69—70
18. अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' की नायिका रेखा की आधुनिकता"	करुणा सिंधु	71—73
19. अप्रतिम वैदुष्य और महाकवि माघ	डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी	74—76
20. भारत में नारी सशक्तिकरण एवं मीडिया : एक अवलोकन	सुश्री संगीता बारला	77—80
21. महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीयम् (नाटक) की वैषयिक रमणीयता	डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी	81—83
22. कविवर रमेश कौशिक के काव्य में सूक्ष्म बिम्ब	डॉ0 बीना शुक्ला	84—87
23. सन्त गरीबदासः काव्य में रुढियां और आडम्बर	डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा	88—90
24. सुरेन्द्र वर्मा लिखित 'रति का कंगन' : एक अध्ययन	डॉ0 सुमित्रा कुमारी	91—94
25. The Effect of Structuralism in English Literature	Pooja Pandey	95—98
26. Achievements of Chandragupta-II	Rinesh, Urmila Sharma	99—101
27. Giligadu: A New Space For The Aged Self.	Apoorva Jagta	102—105
28. A Conceptual Framework of African Diaspora	Sunil Kumar Dwivedi	106—110
29. A Study of Selected Physiological And Psychological Parameters In Male Handball	Dr Dheeraj Sangwan, Dr. Rambir Sing	111—116
30. Ensuring Safe Work Places for Women-Issues and Challenges	Dr Savita Bhagat	117—121
31. 'Literacy-Cirtical Factor For The Knowledge Revolution	Kiran Miglani, Mukesh	122—127
32. उपन्यास गूगल बॉये पुस्तक समीक्षां	हरनाम शर्मा	128—129

1

वर्तमान में मानवमूल्यों की स्थिति और गुरू जाम्भोजी

डॉ0 कमलेश कुमारी

सारांश –

मानव ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना अपने सुसंस्कृत एवं मूल्यपरायणता के कारण ही है। मूल्यविहीन मनुष्य बिना पूँछ और सींग के एक जानवर के समान है। उसे पशुत्व से मानव बनाने वाले मूल्य ही होते हैं जिनके आत्मसात करने से मानव से महामानव और फिर देवत्व के स्थान तक पहुँचा जा सकता है वस्तुतः मूल्यपरायण समाज ही राष्ट्र एवं विश्व को शांति एवं समृद्धि की ओर अग्रसर कर सकता है।

आज के उत्तर आधुनिक युग में जहाँ पर्यावरण प्रदूषण, मीडिया एवं टैक्नोलॉजी विस्फोट, भौतिकवाद, बाजारवाद, जातिवाद और न जाने कितने वाद–विवाद अपने चरम पर पहुँच कर समाज को अपनी गिरफ्त में लेकर आन्तरिक रूप से खोखला कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर वैयक्तिक स्तर पर मानव का निरन्तर पतन होता जा रहा है, काम, क्रोध, स्वार्थ, लालच, हिंसा, घृणा, अहं, चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता, प्रदर्शन की भावना आदि अनगिनत विकृतियों का वह पुंज बनता जा रहा है। मूल्यहीनता के ऐसे समय में गुरु जाम्भोजी के मानवीय मूल्य एक मशाल की भाँति है जो जनमानस को जनकल्याण की ओर अग्रसरित करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं, साथ ही मानवीय जीवन को उसके वास्तविक लक्ष्य की ओर ले जाकर उसे सार्थकता प्रदान करते हैं।

आज घोर मूल्यहीनता के व्यक्तिवादी युग में जहाँ पाश्चात्य संस्कृति हमारे राष्ट्र के नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, पारिवारिक मूल्यों को धुन की भांति अन्दर ही अन्दर खोखला करती जा रही है और हमारे देश की रीढ़–युवा वर्ग को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से उखाड़कर उन्हें भोगवादी संस्कृति के आधार पर केवल एक 'मनीमशीन' के रूप में तब्दील कर रही है, निश्चित रूप से इस दिशाहीन समाज को गुरु जाम्भोजी के मूल्य ही सही दिशा दिखा सकते हैं आवश्यकता है तो इन्हें अपने आचरण में ढ़ालने की, जीवन में आत्मसात करने की।

आज़ादी के पश्चात् यद्यपि हमने आर्थिक उन्नति तो बहुत की, किन्तु नैतिकता की दृष्टि से पिछड़ गए। समाज में राजनैतिक स्तर पर नेताओं द्वारा कथनी–करनी में भेद, बिना परिश्रम किये ही 'शॉर्ट–कट' अपनाकर स्वर्ग–सुख पाने की तीव्राकांक्षा एवं भौतिक विषय वासनाओं के लिए मृगतृष्णा। इनकी निवृत्ति हेतु सत्य प्रेम, दया, करूणा, कर्मशीलता एवं समानता तथा संतोष के भाव को अपनाकर ही मानव समाज वास्तविक आन्तरिक एवं बाह्य उन्नति कर सकता है यह मूल मंत्र गुरु जाम्भोजी के जीवन मूल्यों से ही प्राप्त हो सकता है।

साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, पर्यावरण प्रदूषण एवं नारी के प्रति बढ़ते अपराध निश्चित रूप से आज बहुत बड़ी चिन्ता के विषय हैं। गुरु जाम्भोजी द्वारा स्थापित जीवन मूल्य न केवल राष्ट्रीय वरन् वैश्विक समस्याओं के समाधान का सूत्र भी हमें देते हैं। अतः सही अर्थो में मूल्यक्षरणता के इस विकट समय में मानवतावाद की स्थापना हेतु गुरू जाम्भोजी के मानव–मूल्यों की आज नितांत आवश्यकता है।

मूल्य' शब्द का संबंध अर्थशास्त्र से है जिसे किसी वस्तु अथवा पदार्थ की कीमत के रूप में समझा जा सकता है। कम या अधिक कीमत वस्तु की श्रेष्ठता की निर्धारक होती है। इस अर्थ में व्यक्ति एवं समाज के संदर्भ में मूल्यों पर विचार करना अपेक्षणीय है। कोई व्यक्ति अथवा समाज मूल्यपरकता के आधार पर ही आदर्श अथवा श्रेष्ठ माना जाता है। इस आधार पर मूल्य परायण व्यक्ति ही किसी समाज में सुसंस्कृत या महान कहलाने का अधिकारी है। मूल्य मानव को मानव बनाने का उपक्रम है अन्यथा इनके अभाव में व्यक्ति बिना पूँछ एवं सींग के केवल पशु समान है। पशुत्त्व से मानव एवं मानव से देवत्त्व की यात्रा केवल मूल्यों के मार्ग पर चल कर ही तय हो सकती है। मूल्यपरायणता सुसंस्कृत व्यक्ति का अर्जन करती है तभी तो मानव को संसार की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा गया है। यद्यपि मानव समाज के विविध प्रयोजन होते है किन्तु विद्वानों के मतानुसार मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य समाज में रहकर उदात्त आचरणशील बनना है। जिसके परिणामस्वरूप न केवल परिवार एवं समाज वरन् किसी राष्ट्र की वैश्विक सुख–समृद्धि एवं शान्ति की भावना भी जुड़ी हुई है। मानवीय गतिविधियाँ अक्सर द्विपक्षीय होती है– प्रवृत्ति एवं निवृत्ति। इन्हीं के मंथन से मानवमूल्यों की स्थिति तय होती है।

जब मानव अपने गुणों के आधार पर उदात्तता की ओर कदम बढ़ाते हुए मानवीय दुर्बलताओं से मुक्त होकर आदर्श जीवन जीता है, तभी उसे सार्थक कहा जा सकता है। दरअसल साधारण मानव जीवन से श्रेष्ठ जीवन लक्ष्य की ओर ले जाने वाले मूल्य ही मानव मूल्य कहलाते हैं।

मानवीय जीवन जीवनपर्यंत विविध विकारों से ग्रस्त होकर जीवन के वास्तविक लक्ष्य को भुला बैठा है और बैल की भाँति लक्ष्यहीन कर्म में संलग्न होकर रह गया है। संपूर्णजीवन धन–संग्रह

अथवा शारीरिक सुखानुभूति कराने वाले भौतिक सुख भोग के साधन संग्रह में व्यतीत कर देता है। जीव की इसी संग्रह प्रवृत्ति को विग्रह या त्याग की ओर संचालित करने वाली शक्ति मूल्य ही हैं। उदात्तता के शिखर पर मूल्य ही हमें आसीन करते हैं और मानवता की ऊँचाइयों तक पहुँचाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जब सांसारिक भोग विलास में डूबा व्यक्ति 'स्व' के स्थान पर 'पर' की ओर उन्मुख होता है और परपीड़ा या परमार्थ की भावना से परिप्लावित होता है तभी वह मूल्यनिष्ठ होकर आदर्शवादिता की ओर अग्रसर होता है। मानवीय उदात्तता की यह यात्रा केवल मनुष्यता तक ही सीमित नहीं वरन् देवत्त्व की ओर प्रयाण करने की यात्रा भी है, यदि कहें तो मानव से महामानव का प्रस्थान बिन्दु मूल्य ही है जो समाज में देवत्त्व की स्थापना का सुदृढ़ आधार भी हैं हमारे संस्कार, शिक्षा, धर्म सभी इसी सार्वभौमिक सत्य हेतु संकल्पशील दिखाई देते हैं।

किसी राष्ट्र की रीढ़ उसकी युवा शक्ति होती है। अतः उस राष्ट्र अथवा समाज की उन्नति अवनति का निर्धारण उसके नागरिकों के चरित्र पर निर्भर करता है। आचरणशील नागरिक समाज किसी राष्ट्र की वास्तविक पूंजी हैं। इस संदर्भ में विचारणीय तथ्य है कि किसी भी देश काल और परिस्थितियों में जन सामान्य की जो उदात्त मान्यताएँ हैं, वे ही मानव मूल्य की उपाधि पाते हैं। जिनका प्रयोजन व्यक्ति के उदात्तीकरण के माध्यम से लोक कल्याण की ओर उनमुख होना होता है।

इस दृष्टि से अनादिकाल से जनसामान्य के वे सभी सद्गुण, भाव एवं विचार, आदर्श तथा मान्यताएँ, समस्तश्रेष्ठ सिद्धान्त, मानवोचित नीतियाँ तथा परंपराएँ सब कुछ मिलकर मानवमूल्यों की श्रेणी में आकर इन मूल्यों को समृद्धि प्रदान करते हैं अतः मूल्यों का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। इस संदर्भ में यदि मूल्यपरक साहित्य पर चर्चा करें तो निश्चित् रूप से संत साहित्य इसमें अपना बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। संत साहित्य अपनी एक सुदीर्घ परंपरा रखता है। कबीर, नानक, दादू आदि अगणित संतों के साथ–साथ गुरू जाम्भोजी का भी इस श्रृंखला में अपना श्रेष्ठ स्थान हैं। इन सभी संतों का ध्येय व्यक्ति के माध्यम से समष्टि परिष्कार की भावना रहा है। अतः यहाँ मानवीय मूल्यों के संदर्भ में कसौटी पर गुरू जाम्भोजी के साहित्य पर विचार करने की आवश्यकता है।

हमारे देश ने आजादी के पश्चात् अभूतपूर्व उन्नति की है जिसे आर्थिक तकनीकी, सामाजिक एवं भौतिक अनेक रूपों में देखा जा सकता है। निश्चित रूप में आज हमारा समाज चहुँमुखी प्रगति की राह पर है किन्तु यह विडम्बना ही है कि हम उतनी ही तीव्र गति से नैतिक दृष्टि से पिछड़ गए। आज के उत्तरआधुनिक युग में भौतिकवाद, बाज़ारवाद, पाश्चात्य सांस्कृतिक आकर्षण एवं भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास, राजनैतिक पतन, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता तथा पर्यावरण प्रदूषण के साथ–साथ स्त्री के प्रति बढ़ते अपराध, ढ़ोंग–पाखण्ड, असमानता एवं जातिवाद का जहर तथा व्यर्थ के वाद–विवाद, यह आज के सामाजिक वैश्विक परिदृश्य का एक चित्र है।

संवेदनशून्यता की दृष्टि से यह युग चरम पराकाष्ठा पर हैं बाज़ारवाद का जादू सब पर छाया हुआ है। मानवीय संवेदना की सारी तरलता बाज़ार ने सोख ली है और वह दम तोड़ती जा रही है। भोग, ऐश्वर्य प्रदर्शन अपने पूर्ण वैमव पर है ऐसे में गुरू जाम्भोजी की वाणी बाज़ार के प्रभाव से मुक्ति हेतु, समाधान ही नहीं सुझाती वरन् व्यक्ति को सन्मार्ग से दिग्भ्रमित करने वाले बाज़ारवाद के आकर्षण से सावधन भी करती हैं।–

हाट पटण बजार न होता
न होता राज दवारूं।

गुरू जाम्भोजी एक दूरद्रष्टा संत थे। आज से लगभग 600 वर्ष पूर्व उनकी वाणी में न केवल आज की तमाम सामाजिक राजनैतिक विसंगतियों का समाधान ढूँढ़ा जा सकता है वरन् वैश्विक पटल पर भी उनका साहित्य विश्व को राह दिखाता है। दरअसल चकाचौंध करने वाले व्यापारिक प्रतिष्ठान एवं दिशाभ्रष्ट करने वाले बाज़ार ने हमारी विवेक शक्ति को कुंठित कर दिया है। और उसके स्थान पर सांसारिक आकर्षण पैदा करने वाली धन–दौलत के पीछे मोह ने ले लिया। इस हेतु व्यक्ति अपना सर्वस्व समर्पित करने हेतु तत्पर है ऐसी मृगतृष्णा की भयंकर स्थितियों में गुरू जाम्भोजी के मूल्य सहज ही अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। दिन–रात व्यक्ति धन पशु बनकर माया के पीछे भागता रहता है और अभिलाषा जनित क्लेश से घिरा रहता है मानवता एवं संवेदनशीलता से वह निरंतर कटते हुए केवल अर्थोपार्जन की एक अमानवीय दौड़ का हिस्सा बन कर रह गया है। ऐसी स्थिति में गुरू जाम्भोजी की वाणी हमें निरंतर सहारा देती है गुरूजी आध्यात्मिक धरातल पर इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

जीवर पिण्ड बिछोवा होयसी
ता दिन दाम दुगाणी।

अर्थात जिस दिन तेरा जीव इस शरीर से बिछड़ेगा उस दिन यह तेरी धन–दौलत कुछ भी काम नहीं आएगी। मृत्यु के समय यह पैसा तेरी सहायता नहीं करेगा। अतः प्रश्न उठता है कि फिर धन संग्रह हेतु इतनी अधीरता क्यों?इतनी बेचैनी क्यों?श ।ज ंदल बवेजश मानव की धन पिपासा कभी शान्त ही नहीं होती। उल्लेखनीय है कि भ्रष्टाचार, कालाधन, बेइमानी समस्त दुर्गुणों के मूल में यह कामना ही रही है, इतना ही नहीं व्यक्ति की श्रेष्ठता का आकलन भी उसकी आर्थिक स्थिति से होता है जो बहुत खतरनाक है। ऐसे समय में गुरू जाम्भोजी मानवीय जीवन के वास्तविक लक्ष्य की ओर हमें उन्मुख करते हैं। गुरूजी के मूल्य किसी देश–काल की सीमा में आबद्ध न होकर अपना वैश्विक महत्त्व रखते हैं। आज विश्व के समक्ष

आतंकवाद, धार्मिक उन्माद एवं साम्प्रदायिकता बड़े राष्ट्र विरोधी तत्त्व हैं। जिनसे लगभग पूरा विश्व जूझ रहा है। कुछ असामाजिक तत्त्व टैक्नोलॉजी और मीडिया का दुरूपयोग साम्प्रदायिक हिंसा फैलाने के लिए कर रहे हैं। भारत जो अपनी गंगा–जमुनी संस्कृति के लिए विश्वविख्यात थाा आज साम्प्रदायिकता एवं आतंकवाद की चपेट में आ चुका है। निःसंदेह संतों के मूल्य इस संदर्भ में अपनी महती भूमिका निभाते रहे हैं। जिनमें गुरू जाम्भोजी का मानवीय चिंतन अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। जातिवाद, धार्मिक कट्टरवादिता के कारण किसी समाज–राष्ट्र का विकास संभव ही नहीं, क्योंकि एक उन्नतिशील राष्ट्र हेतु, शान्ति, प्रेम, सौहार्द की भावना का होना अति आवश्यक है। आज हम धार्मिक उन्माद का दुष्परिणाम कश्मीर तथा पठानकोट हमले तथा प्रतिदिन सीमाओं पर होने वाली गोलीबारी के रूप में देख सकते हैं। ऐसे में बाबरी मस्जिद विवाद हो या फिर मुंबई में आतंकी हमले अथवा विभिन्न प्रान्तों में होने वाली सांप्रदायिक हिंसा, इस संकटपूर्ण स्थिति से उबरने का मूल मंत्र हमें गुरू जाम्भोजी की वाणी ही देती है–

यह छत धार बड़े सुलतानों
रावण राणा के दिवाणा
हिन्दू मसलमानूं, दोय
पंथ ना ही जूवा–जूवा

अर्थात् विश्व बन्धुत्व एवं जातिगत एकता ही गुरू जाम्भोजी की वाणी का मूल आधार है। धार्मिक एकता इसमें बड़ी भूमिका निभा सकती है, गुरूजी इसी भावना को अग्रसरित करते हैं। और संकेत करते हैं कि इस धरती को बांटने वाला यह भू–स्वामी अर्थात सताधारी वर्ग ही है जो अपने निजी स्वार्थ हेतु जन सामान्य को हिन्दू–मुस्लिम में बांटकर उनके बीच भेद उत्पन्न करता है क्योंकि देश की एकता अखण्डता को विभाजित करके ही वे अपनी सत्ता को बनाये रख सकते हैं, इस सत्य का उद्घाटन गुरू जाम्भोजी कई सौ वर्ष पूर्व कर चुके थे। इस अर्थ में गुरूजी की वाणी और उनके मानव मूल्य आज और भी प्रासंगिक हो गए हैं क्योंकि वर्तमान स्थितियाँ तद्युगीन स्थितियों से कुछ सुधरी नहीं वरन् और बदतर ही हुई हैं। इन घृणा फैलाने वाले आतंकवादी शैतानों को जो आज धार्मिक उन्माद में मानवता का खून कर रहे हैं गुरू जी का विचार है–

"जां जां शैतानी करै उफारूं
तां तां महंत न फलियों"

कोई भी समाज–राष्ट्र तब तक प्रगति के मार्ग पर अग्रसरित नहीं हो सकता जब तक कि वह आंतरिक एवं बाह्यरूप से पूर्ण स्वस्थ न हो। रूढ़ियाँ एवं पाखण्ड किसी स्वस्थ समाज के निर्माण में सबसे बड़े बाधक हैं आज वैज्ञानिक युग में भी इन्हीं बाह्डम्बरों के कारण हमारी विश्व में हास्यास्पद स्थिति बनी हुई है। जहाँ एक ओर विज्ञान और टैक्नोलॉजी अपने चरम पर हैं वही उसी के समानांतर हम रूढ़ियों, झूठे पाखण्डों में और अधिक जकड़ते जा रहे हैं शिक्षित वर्ग भी इसी भेड़चाल पर चलता दिखाई दे रहा है तभी तो नित नये ढ़ोंगी बाबाओं का अस्तित्व आज बना हुआ है।

हजारों–लाखों की संख्या में निर्मल बाबा, आसाराम बापू, राधे माँ, रामपाल एवं रामवृक्ष की जड़ें गहरी होती जा रही हैं और सभी अपनी धर्म–कर्म की दुकानें सजाए बैठे हैं जहाँ भूत–प्रेत, तीर्थयात्रा, टोने टोटके सभी कुछ बिक रहा है, केवल वास्तविक धर्म, मानवधर्म का कहीं कोई पता नहीं गुरू जाम्भोजी इन व्यर्थ के पाखण्डों की निःस्सारता बताते हुए इन्हें निराधार सिद्ध करते हैं–

"अडसठ तीरथ हिरदै भीतर
बाहर लोकाचारूं"

इनके मतानुसार व्यक्ति की श्रेष्ठता का मापदंड कर्म ही हो सकते हैं और इन्हीं के बल पर कोई व्यक्ति निम्न अथवा श्रेष्ठ ठहराया जा सकता है। आज जिस प्रकार दलितों का शोषण बढ़ता जा रहा है इस दिशा में गुरू जाम्भोजी की समानता परक दृष्टि का विशेष महत्त्व है जहाँ कर्म ही हमारी जातिगत पहचान होगी, धर्म नहीं। धर्म के ठेकेदारों को गुरू जी सचेत करते हैं–

"उत्पति हिन्दू जरणा जोगी,
किरिया ब्राह्मण, दिल दरवेसां
उनमुन मुल्ला, अकल मिसलमानी।"

आज समाज में धार्मिक चेतना का निरंतर ह्रास होता जा रहा है। योग और भोग का मेल आज के पाखण्डी समाज की सबसे बड़ी उपलब्धि है, लूट और झूठ के बल पर सत्ताधारी इन पाखण्डी योगियों की गुरू जी खूब खबर लेते हैं–

"थे जोग न जोग्या भोग न भोग्या
न चीन्हों सुर रायो
कण बिन कूकस कॉस पीसों
निश्चै सरी न कायो।"

आगे वे इनकी व्यर्थता सिद्ध करते हुए इनसे सावधान रहने की बात करते हैं–

"जोगी जंगम जपिया जती तपी तक पीरूं।
जिंहि तुल भूला पाहण तोलै, तिंहि तुल तोलत हीरूं।"

निःसंदेह आज हमारा समाज इन भेषधारियों के पाखण्ड में उलझकर धर्म का वास्तविक मार्ग भूल गया है। इसका उल्लेख हमें गुरू जाम्भोजी की वाणी में बहुत पहले ही मिल जाता है जहाँ वे ऐसे ढ़ोंगियों से बचने और सच्चे गुरू की पहचान का आग्रह करते हैं।

धर्म के नाम पर अधर्म एवं पाखण्डों की वर्तमान समाज में बाढ़ सी आ गई है। तीर्थयात्रियों की नित–प्रति बढ़ती संख्या इसका प्रमाण है। प्रतिवर्ष कांवडयात्रियों की बढ़ती संख्या इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। सभी धर्मों में चाहे हिन्दू अथवा मुस्लिम अचानक तीर्थों का महत्त्व अत्यंत बढ़ता जा रहा है। जन सामान्य अज्ञानता के

अधंकार में डूब तीर्थों में ही अपने पाप कर्मों से मुक्ति खोजने में लगा है। गुरू जाम्भोजी के उपदेश ऐसे विकट समय में धर्म की सच्ची व्याख्या करते हुए जनसामान्य को विवेकशील बनने का आग्रह करते हैं।

हिन्दू होय कर तीरथ धोकै
पिण्ड भरावै तेपण रह्या दूवाणी
× × × ×
तुरकी होय हज काबो धोकै
भूला मुसलमानों।

मूर्ति पूजा के विषय में प्रश्न पूछते हुए कुत्ते को मूर्तियों से श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं कि कुत्ता चोरों से स्वयं की एवं अपने मालिक की भी रक्षा करता है किन्तु मूर्तियाँ?

काठी कण जो रूपा रेहण
कापड मॉंह छिपाई
नींचा पड़–पड़ ताने धोकै
धीरा रे हरि आई।

संत गुरू जाम्भोजी इन्हीं विस्मृत भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की ओर हमें लौटने का आग्रह करते हैं जिनकी आज नितान्त आवश्यकता है।

इहिं कलयुग में दोय जन भूला
एक पिता एक माई।

वर्तमान समय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक सभी स्तरों पर मूल्यहीनता का युग है। राजनैतिक पटल पर मूल्य क्षरण का प्रत्यक्ष उदाहरण राजनेताओं द्वारा भ्रष्टाचार एवं कालेधन के रूप में मौजूद है। विभिन्न घोटाले इसका ज्वलंत उदाहरण है। जो धनराशि जनसामान्य की खून पसीने की कमाई है और उन्हीं के कल्याणार्थ प्रयोग की जानी चाहिए लेकिन नेताओं की नीतियाँ इस धन राशि पर खूब ऐश करने की रही है। वर्तमान लोकतंत्र के खोखलेपन की ओर संकेत करते हुए गुरू जाम्भोजी इन भ्रष्टाचारियों का विरोध करते हैं।

कोई भी समाज तब तक पूर्णरूप से प्रगति नहीं कर सकता जब तक उसकी आधी आबादी स्वतंत्रता एवं समानता के अधिकारों को प्राप्त न कर ले अर्थात् स्त्री–पुरूष समानता पूर्ण समाज ही सही अर्थो में विकसित समाज कहला सकता है। इस दृष्टि से आज न केवल भारतीय समाज अपितु पूरा विश्व स्त्री शोषण की समस्या से जूझ रहा है। गुरू जाम्भोजी की दृष्टि इस अर्थ में आधुनिक सोच रखती है जो निःसंदेह आज अत्यंत प्रासंगिक है–

"ओउम् तइयां सासूं तइया मासूं
तइया देह दमोई।
उत्तम मध्यम क्यूं जाणिजै
बिबरस देखो लोई।"

आज हमारे देश के कई राज्यों में जिस प्रकार स्त्री–पुरूष अनुपात में गिरावट आई है जिसका कारण कन्या भ्रूण हत्या है हरियाणा, राजस्थान दिल्ली आदि कई राज्यों में स्त्री–पुरूष अनुपात में बहुत अंतर है, जो चिन्ताजनक है। गुरू जाम्भोजी स्त्री के प्रति आदर सम्मान का भाव दर्शाते हुए स्त्री–स्वतंत्रता के प्रबल पक्षधर हैं। जो उनके आधुनिक बोध का परिचायक है। उन्होंने इसे बायोलॉजिकल आधार पर सिद्ध करते हुए कहा है कि जब स्त्री–पुरूष दोनों का भौतिक शरीर बराबर है तो स्त्री के प्रति समाज में गैरबराबरी क्यों?भेद दृष्टि क्यों? वर्तमान पितृसत्तात्मक समाज द्वारा स्त्री के अस्मिताबोध पर लगाये गए प्रश्नों को गुरूजी पूर्णतः नकारते हुए स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता के प्रबल पैरोकार हैं।

वर्तमान समय वैज्ञानिक एवं टैक्नोलॉजी की प्रगति का है भूमंडलीकरण ने उद्यौगिक क्रांति के द्वारा उन्नति–रथ को बहुत तीव्रता से आगे बढ़ाया है किन्तु विकास के नाम पर विनाश अधिक हुआ है जिसके भयंकर दुष्परिणाम से पर्यावरण प्रदूषण के रूप में आज पूरा विश्व जूझ रहा है। जिसके परिणामस्वरूप आज पूरा विश्व कैंसर, हृदयरोग और अनगिनत भयंकर रोगों की चपेट में आ चुका है। पर्यावरण प्रदूषण के प्रति गुरूजी न केवल सैद्धान्तिक उपदेश देते हैं वरन् व्यावहारिक सतर पर भी वे पर्यावरण की रक्षा के अभियान से जुड़े रहे, इसके संकेत मिलते हैं–

सोम अमावसआदितवारी
कायं काटी बन रायो।

हरे पेड़ों को काटने पर वे उसका विरोध करते हुए अपनी दूरदर्शिता एवं स्वस्थ समाज निर्माण के संकल्प को लेकर चले थे। आज जिस प्रकार प्रकृति दोहन हो रहा है ऐसे में मानव एवं प्रकृति के संतुलन को बनाए रखना एक बड़ी चुनौती है। गुरू जाम्भोजी इस चुनौती को स्वीकार करते हुए इस विश्वव्यापी समस्या के निराकरण पर बल देते हैं। निश्चित रूप से आज इस पर्यावरणीय संवेदना की पूरे विश्व को बहुत आवश्यकता है।

गुरू जाम्भोजी की मूल्य दृष्टि बहुत व्यापक है उन्होंने व्यक्ति की आंतरिक शुचिंता पर विशेष बल दिया है। पाश्चात्य सांस्कृतिक प्रभाव के परिणामस्वरूप आज युवाओं में नशे, मांस आदि दुर्व्यसनों का क्रेज बहुत तेजी से बढ़ा है जो युवा शक्ति का नैतिक पतन करते हुए उसे खोखला करता जा रहा है। आज से लगभग 600 वर्षो पूर्व गुरू जाम्भोजी जब युवाओं को इन दुर्गुणों से दूर रहने का उपदेश देते हैं तो उनकी दूरदर्शिता एवं प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

"अमल तमाखूं भांग
मधं मांस सूं दूर ही भागै"

कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस प्रकार युवाओं में शराब, नशा, मांग, अफीम, कोकीन, हुक्का, तमाखू और न जाने

कितने तरह की ड्रग्स जैसी कुप्रवृत्तियाँ देश की रीढ़ को तोड़ने का काम कर रही हैं। गुरू जाम्भोजी की चिन्ता आज की सबसे बड़ी चिन्ता है। इसके अतिरिक्त भौतिकवाद की आड़ लेकर भोगवाद भी अपने पूर्ण शिखर पर है जिसने व्यक्ति को मनोविकारों का दास बना दिया है। ये विकार ही मानव का नैतिक पतन कर उसे गर्त की ओर धकेल रहे हैं। असत्य, हिंसा, अहंकार, घृणा, असंतोष, परनिन्दा तथा कथनी करनी में भेद आदि अनगिनत मनोविकार मानवीय मूल्यों की स्थापना के मार्ग में सबसे बड़े बाधक हैं; क्योंकि जब तक व्यक्ति का अंतःकरण शुद्ध नहीं होगा वह नैतिक मूल्यों की राह पर कैसे चलेगा? तब तक बाह्य परिवेश की शांति और उत्थान का स्वप्न भी व्यर्थ है। मानव जीवन का वास्तविक लक्ष्य इन्हीं मूल्यों तक पहुँचना है। तभी वह मानवता से देवत्व की ओर कदम बढ़ा सकता है–

अहनिश धर्म हुवै धुर पूरौ
सुर की सभा समाइये।

इसी प्रकार अयोग्य व्यक्ति को दान देकर मुक्ति की कामना व्यर्थ है गंगा में डुबकी लगाकर इतने सस्ते में मोक्ष नहीं मिल सकता। आगे गुरू जाम्भोजी दया, प्रेम एवं मुक्ति की यथार्थ पहचान कराते हुए कहते हैं–

ओउम् जां जां दया न मया
तां तां बिकरम कया
तथा
जां जां जीव न ज्योति
तां तां मोख न मुक्ति।

भौतिकवाद ने भोग एवं विलास के साधनों को ही सुख में परिवर्तित कर दिया है और परिणाम स्वरूप मानव एक 'मनीमशीन' के रूप में तब्दील होता जा रहा है। केवल आर्थिक उन्नति के अहं में चूर होकर वह वास्तवक प्रगति से दूर हाता जा रहा है। गुरू जाम्भोजी मूल्यों को सुरक्षित रखने हेतु एक पहरूए की भूमिका का निर्वाह करते हैं।

निष्कर्ष:

अतः आज वैश्वीकरण के युग में जहाँ अस्त्र, अर्थ और टैक्नोलॉजी प्रगति का मापदण्ड बन गए हैं और पूरा विश्व इन्हें हथियाने की प्रतिस्पर्धा में शामिल है, ऐसे में मानवीय संवेदनाएँ कहीं बहुत पीछे छूट कर दम तोड़ती जा रही है और उनका स्थान संवेदनशून्यता एवं मूल्यहीनता बहुत तेजी से ग्रहण करती जा रही है, ऐसे विकट समय में गुरू जाम्भोजी के मूल्य ही हमें सांस्कृतिक–नैतिक संस्कारों से संपन्न कर विश्वकल्याण के मार्ग की ओर उन्मुख कर सकते हैं। इस संदर्भ में गुरू जाम्भोजी मानव–मूल्यों के सच्चे पहरूआ हैं, क्योंकि वर्तमान समाज एवं विश्व की तमाम समस्याओं एवं चुनौतियों का सहज समाधान हमें इनकी वाणी में ही मिलता है। ये मूल्य मानव का आन्तरिक उत्थान करते हुए उसे राष्ट्रीय उदात्तता की ओर अग्रसर करते हैं। अतः कहना न होगा कि वर्तमान भौतिकपरायणता के युग में गुरू जाम्भोजी सच्चे पहरूआ के रूप में इन मूल्यों को सुरक्षित बचाये–बनाये रखने का आग्रह करते हैं। क्योंकि मूल्यपरायणता ही किसी व्यक्ति अथवा समाज की प्रगति का वास्तविक मापदण्ड है।

सन्दर्भ सूची

1. जम्भसागर, कृष्णानंद आचार्य, पृष्ठ 30
2. वही, पृष्ठ 131
3. वही, पृष्ठ 221
4. वही, पृष्ठ 137
5. वही, पृष्ठ 27
6. वही, पृष्ठ 33
7. वही, पृष्ठ 75–76
8. वही, पृष्ठ 94
9. वही, पृष्ठ 104–105
10. वही, पृष्ठ 155
11. वही, पृष्ठ 179
12. वही, पृष्ठ 104
13. वही, पृष्ठ 34
14. वही, पृष्ठ 275
15. वही, पृष्ठ 80
16. वही, पृष्ठ 55–56

सम्पर्क सूत्र
डॉ0 कमलेश कुमारी
शहीद भगत सिंह कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. न. 7838159693
म0न0 5034, गली दारोगा छैलू सिंह,
पहाड़ी धीरज, दिल्ली–110006
ई–मेल kamleshsbsc.kumari@gmail.com

सामाजिक सरोकार के कहानीकार ओमप्रकाश वाल्मीकि

डॉ0 मृत्युंजय कोईरी

सारांश –

आधुनिक समाज में जाति के नाम पर हो रहे शोषण, दमन, उपेक्षा, उत्पीड़न, बहिष्कार और भेदभाव आदि देश का ज्वलंत मुद्दा है। समाज में दलित केवल जाति के नाम पर शोषित हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि समाज से वास्ता रखने वाले सर्तक व सजग कहानीकार हैं। वे 'यह अंत नहीं', प्रमोशन', 'शवयात्रा', 'अम्मा', 'बैल की खाल', 'बंधुआ लोकतंत्र', 'घुसपैठिए' और 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' आदि कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त ऊँच–नीच और जाति–पांति के भेदभाव का भंडा फोड़ने का काम करते हैं।

विषय–प्रवेश : ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'यह अंत नहीं' कहानी दलितों के संघर्ष, पुलिस और सवर्णों के अत्याचार को अभिव्यक्त करती है। जमींदार तेजभान का बेटा सचींदर दलित लड़की बिरमा पर हमला करता है। लेकिन अपने आत्मसम्मान के लिए निडर व साहसी बिरमा अत्याचारी सचीन्दर पर अचूक प्रहार करती हैं और अपने को बचा लेती हैं। बिरमा की माता–पिता जमींदार के डर से चुप रहना चाहते हैं। बिरमा का भाई किसन और उनके दोस्त बिरमा पर किए का सजा दिलाने के लिए थाना जाते हैं। जहाँ इंस्पेक्टर रपट लिखने से मना कर देता है। आम जनता के रक्षक इंस्पेक्टर का अमानवीय व्यवहार देखिए–**''छेड़ा–छाड़ी हुई है......बलात्कार तो नहीं हुआ.....तुम लोग बात का बतंगड़ बना रहे हो। गाँव में राजनीति फैलाकर शांति भंग करना चाहते हो। मैं अपने इलाके में गुंडागर्दी नहीं होने दूंगा....चलते बनो।''**[1] वहीं आगे कहते हैं–**''फूल खिलेगा तो भौंरे मण्डराएंगे ही...''**[2] इंस्पेक्टर अमानवीय व्यवहार पर किसन बौखला गया और तिलमिलाकर कहा कि तमीज से पेश आइए कहते ही इंस्पेक्टर का अत्याचार देखिए–**''इंसपेक्टर का झन्नाटेदार थप्पड़ किसन के गाल पर पड़ा, 'हरामी की औलाद ये डंडा पूरा उतार दूंगा... तू मुझे तमीज सिखाएगा...' इंसपेक्टर ने बिना देर किए सभी की धुनाई शुरू कर दी। अचानक हमले से वे हड़बड़ाकर इधर–उधर भागने लगे।''**[3] पंचायत में शिकायत करने पर जमींदार के पालतू कुत्ते बिसना प्रधान ने पंचायत में सचीन्दर पर पाँच रुपये जुर्माना ही केवल लगता है।

'बैल की खाल' कहानी में मृत मवेशी की खाल उतारने वाले काले और भूरे की बछड़ी के प्रति संवेदना अपरंपार है। पंडित बिरिज मोहन के बैल मर जाने के बाद काले और भूरे को खोज रहा है। क्योंकि अब बैल को छू लेने मात्र से छूत हो जायेगा। इसलिए वह दफ़नाने नहीं ले जाता है। पर बैल से खेत की जोताई करते छूत नहीं लगी। अंत में काले और भूरे के आ जाने पर पंडित बिरिज मोहन का अमानवीय व्यवहार देखिए– **''कहां मर गए थे भोसड़ी के....तड़के से ढूंढ़–ढूंढ़ के गोड्डे टूट गए हैं। और इब आ रहे हो महाराजा की तरियों...... इस बैल को कौन उठावेगा......तुम्हारा बाप....''**[4] पंडित बिरिज मोहन ने काले और भूरे को ही घृणा की नजर से नहीं देखा बल्कि एक भारतीय कृषि समाज का भी अपमान किया है। किसान बैल से खेत की जोताई ही नहीं करते हैं। उन्हें पूजते भी हैं। पैर के स्पर्श मात्र से बैल को छूकर प्रमाण करते हैं।

पुरखों से चली आ रही कुर्सी और सालों से काला धन को सफेद करते आ रहे हैं। जिसका राज खुलने के डर से जमींदार का अत्याचार ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'बंधुआ लोकतंत्र' कहानी में देखी जा सकती है। सरकार ने सरपंच की कुर्सी को आरिक्षत कर देती है। चौधरी भूप सिंह सरकार के निर्णय को बदले का हर संभव प्रयास किया। वे मंत्री, विधायक और उच्च अधिकारी तक के पास चला गया। जब सरकार अपना निर्णय वापस नहीं लेती हैं। तब चौधरी दलितों की बस्तियों पर मारने–पीटने पर उतर आता है। चौधरी के डर से छब्बीस लोगों ने सरपंच पद के उम्मीदवारों ने नामांकन दाखिल कराया था। जिसमें बीस लोगों ने उम्मीदवारी वापस ली। प्रगतिशील रूपचंद को सरेआम थप्पड़ मारते हैं और नाम वापस लेने का धमकी देते हैं। रूपचंद पुलिस थाने रिपोर्ट दर्ज कराने पहुँच गया। पुलिस चुनाव के समय रिपोर्ट लिखने से साफ माना कर देती हैं। रूपचंद की जिद करने पर उच्च वर्ग के चमचे पुलिस का कथन देखिए– **''देख रूपचंद, तू अगर अभी और आज ही अपना और अपनी बिरादरी के लोगों के पर्चे वापस लेता है तो यह दरोगा हर वक्त तुम्हारे साथ होगा। और हर प्रकार से तुम्हारी हिफाजत करने की कोशिश करेगा... यह एक राजपूत की जबान है... आगे थारी मरजी है।''**[5]

चौधरी के डर से बाकी पाँच उम्मीवार ने अपना नाम वापस ले लेते हैं। रूपचंद निर्विरोध चुनाव जीत जाता है। सरपंच पद का कार्यभार विधिवत् तरीके से नहीं मिला। वह इंतजार करता थक गया। अंत में चुनाव कार्यालय के चक्कर काट कर परास्त रूपचंद दाने–दाने को तरसने लगा। चौधरी के खेतों में काम करता था। वह भी छूट गया। पत्नी राजबीरी जहाँ भी काम खोजने जाती, वहाँ काम भी नहीं मिलता और ऊँपर से जली–कटी अपमानित बातें भी सुननी पड़ती।

यथा– **''काम की क्या जरूरत है, इब तो सरपंच हो, सब कुछ थारा ही है.... ऐश करो... चौधराइन बनके पूरे गांव पे हुकम चलाओ...''**[6] रूपचंद और बीबी–बच्चा को बंधुआ लोकतंत्र ने भिखारी बना दिया। उच्च वर्ग के सामने रूपचंद जैसे दलित का सरपंच पद गले में फांसी का फंदा बन गया है।

'शवयात्रा' एक दलितों में दलित परिवार की बेबसी की कहानी है। समाज में बल्हारों को चमारों से छोटी जाति का दर्जा प्राप्त है। वृद्धा सुरजा एक मात्र विधवा बेटी संतो के साथ रहता है। बेटा कल्लन दस–बारह साल की उम्र में घर से भाग गया था। उन्हें रेलवे में नौकरी मिल गई है। वह जब भी गाँव आता, चमारों की नजरों में अब भी अछूतों का अछूत बल्हार ही था। कहानीकार के शब्दों में निम्नपंक्तियाँ उद्धृत है– **''गांव वह यदा–कदा ही आता था। लेकिन जब भी वह गांव आता, चमार उसे अजीब–सी नजरों से देखत थे। कल्लू से कल्लन हो जाने को वे स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। उनकी दृष्टि में वह अभी भी बल्हार ही था, समाज–व्यवस्था में सबसे नीचे यानी अछूतों में भी अछूत।''**[7]

दिल्ली में बीबी–बच्चे के साथ ही रहने के लिए कल्लन अपनी बहन और पिता को ले जाना चाहता है। पर पिता गाँव छोड़कर जाना नहीं चाहते हैं। पिता की जिद के सामने विवश पुत्र पक्का मकान बना देने के लिए दिल्ली जाकर पैसा का बंदोबस्त किया और पत्नी–बच्चा के साथ आ गया। कल्लन ईंट, सीमेंट, बालू और संगमरमर के टाइल मांगाने लगा। सारा सामान आन लगा है। सुरजा ठेकेदार के पास चला जाता है। सुरजा के तन में ढंग का कपड़ा नहीं देख, ठेकेदार हँसता हुआ काम का बहाना बना कर टल देता है। वहीं एक पुराना मिस्त्री को माना लेता है। पर गाँव के प्रधान बलराम सिंह को इसकी खबर मिलते ही बेचैन हो उठा और सुरजा के सामने चीखा– **''अंटी में चार पैसे आ गए तो अपनी औकात भूल गया। बल्हारों को यहां इसलिए नहीं बसाया था कि हमारी छाती पर हवेली खड़ी करेंगे.... वह जमीन जिस पर तुम रहते हो, हमारे बाप–दादों की है। जिस हाल में हो... ...रहते रहो...किसी को एतराज नहीं होगा। सिर उठा के खड़ा होने की कोशिश करोगे तो गांव से बाहर कर देंगे।''** [8]

सुरजा अब हार चुका था। उसे पुत्र की बात ही सही लगने लगी थी। कल्लन अजीब–सा दुविधा में पड़ गया था। भावावेश में आकर सारा सामान ले आया था। पर गाँव की हालत देख उसे डर भी लगने लगा था। वहीं दस बरस की पुत्री सलोनी को बुखार आ गयी। पत्नी सरोज के पास जो दवाइयाँ थीं, वह दे चुकी। लेकिन बुखार उतरने का नाम नहीं लेता। कल्लन गाँव के डॉक्टर को बुलाने चला गया। किंतु डॉक्टर साहब आने से माना कर देते हैं। इतना ही नहीं जब पुत्री को क्लिनिक लेकर आने की बात कही, तभी डॉक्टर साहब का कथन देखिए– **''नहीं ..... यहां मत लाना. ..कल से मेरी दुकान ही बंद हो जाएगी। यह मत भूलो, तुम बल्हार हो,''**[9]

डॉक्टर साहब साफ चेतावनी दी और कुछ दवा खिलाने को दे दिया। दवा से कुछ लाभ नहीं होने पर रात–भर झाड़–फूंक कराता रहा। लेकिन बुखार कम होने का नाम नहीं लेता। गाँव से शहर की दूरी लगभग आठ–दस किलोमीटर है। कल्लन चमारों से उनकी बैलगाड़ी मांगी, पर सब इंकार कर दिया। दोनों पति–पत्नी पैदल ही शहर के लिए निकल पड़े। शहर पहुँचने से पहले ही कल्लन की गोदी में सलोनी मर जाती हैं। मानो पति–पत्नी की आँखों से आँसू के साथ रक्त निकल रहे हैं। राहगीर की संवेदना को लकवा मार गया है। जो दोनों की हालत पर दया नहीं दिखा रहे। शायद इन्होंने पहचान लिया था कि ये बल्हार हैं। दोनों की हालत खराब हो गई। कल्लन तो किसी प्रकार मृत पुत्री को कंधे में लिए गाँव की ओर लौट रहा है। पर सरोज घिसट रही है। वह अधमरी–सी हो गई है। हिन्दू समाज में स्त्रियों का श्मशान जाना वर्जित है। पर विवश बल्हार परिवार में दो पुरुष और दो स्त्री के अतिरिक्त कोई नहीं है। जो मद्द के लिए आये। गाँव के चमार तक नहीं आते हैं। और गाँव के निकट स्थिति चमारों के श्मशान में बल्हार मुर्दे को फूंक नहीं सकता है। सुरजा और संतो किसी तरह लकड़ियों का इंतजाम कर लिया और दाह–संस्कार के लिए चारों निकल पड़े। जाति के नाम पर समाज की संवेदनहीनता का करुण दृश्य उद्धृत है– **''उन दोनों ने कपड़े में लिपटे सलोनी के शव को उठा लिया था। स्त्रियों के श्मशान जाने का रिवाज बल्हारों में नहीं था। लेकिन संतो और सरोज के लिए इस रिवाज को तोड़ देने के अलावा कोई और रास्ता नहीं बचा था। संतो ने लकड़ियों का गट्ठर सिर पर रखकर हाथ में आग और हांडी उठा लिए थे। पीछे–पीछे सरोज उपलों से भरा टोकरा लिए चल पड़ी थी।''**[10]

'घुसपैठिए' नामक कहानी में जाति के नाम हो रहे शैक्षणिक संस्थानों के अत्याचार को उजागर करते हैं। दलित विद्यार्थी के साथ कॉलेज से लेकर बस तक में अपमानित किया जाता है। चमार स्टूडेंट को लात–घूंसों और धकियाकर पिछली सीटों पर ले जाया जाता है। दलित छात्र सुभाष सोनकर के साथ प्रणव मिश्रा का अत्याचार देखिए– **''प्रणव मिश्रा ने चिल्लाकर आवाज लगाई तो उस बस में सुभाष सोनकर था, जो प्रणव की आवाज पर चुपचाप रहा। सोनकर के पास जो छात्र बैठा था, उसने इशारे से बता दिया कि सोनकर यहां बैठा है। प्रणव मिश्रा अपनी अवहेलना पर तिलमिला गया। सोनकर के बाल पकड़कर अपनी ओर खींचे, 'क्यों बे चमरटे, सुनाई नहीं पड़ा हमने क्या कहा था?' सोनकर ने अपने बाल छुड़ाने की कोशिश की.... मैं चमार नहीं हूं। बालों की पकड़ मजबूत थी**

। सोनकर कराह उठा। प्रणव मिश्रा का झन्नाटेदार थप्पड़ सोनकर के गाल पर पड़ा.....(गाली)......चमार हो या सोनकर.......ब्राह्मण तो नहीं हो......हो तो सिर्फ कोटे वाले.....बस इतना ही काफी है, प्रणव मिश्रा ने सोनकर को लात–घंसों से अधमरा कर दिया। पूरी बस में ठहाके गूंज रहे थे.....बाबा साहब के नाम पर गालियां दी जा रही थीं। प्रणव मिश्रा के इस शौर्य पर उसे शाबाशियां मिल रही थीं।''[11]

सरकारी मेडिकल कॉलेज के होस्टेल में भेदभाव किया जाता। जहाँ जाति पूछकर छात्र अपना रूम शेयर करते हैं। दलित छात्र इसकी शिकायत कॉलेज मैनेजमेंट को करते हैं। लेकिन कोई फर्क नहीं हुआ। साथ ही कॉलेज में प्रोफेसर प्रैक्टिकल की परीक्षा में भी भेदभाव करते हैं। यह वर्तमान समाज का यथार्थ है जो कहानीकार के शब्दों में निम्नपंक्तियाँ उद्धृत हैं– **''प्रैक्टिकल की परीक्षाओं में भी भेदभाव बरता जाता है। प्रणव मिश्रा मेरे ही बैच में है। न क्लासेज अटैंड करता है, न प्रैक्टिकल। फिर भी त्रिवेदी सर उसे ही सबसे ज्यादा अंक देते हैं। अटैंडेंस की भी समस्या नहीं होती।''**[12]

मेडिकल कॉलेज के डीन डॉ0 भगवती उपाध्याय सवर्ण छात्र के हितैषी हैं। जिसके पास दलित छात्र अपनी समस्या लेकर जाते हैं। उनका माना है कि आप सब आरक्षण से आये हैं। थोड़ा–बहुत सहना ही होगा। डीन से प्रोफेसर तक का यही माना है। डीन ने आरक्षण में आये छात्र को घुसपैठ की संज्ञा दी। उनकी धरणा देखिए– **''कम योग्यता वाले जब सरकारी हस्तक्षेप से मेडिकल जैसे संस्थानों में घुसपैठ करेंगे तो हालात तो दिन–प्रतिदिन खराब होंगे ही। उन छात्रों का क्या दोष जो अच्छे अंक लेकर पास हुए हैं।''**[13]

दलित छात्र पर भेदभव ही नहीं किया जाता है। मार–पीट भी की जाने लगी। छात्र सुभाष सोनकर अपने साथ किये गए मार–पीट की मेडिकल रिपार्ट लेकर पुलिस थाने गया। लेकिन उच्च वर्ग के पालतू इंस्पेटक्र ने रिपोर्ट लिखने से साफ माना कर दी। उसी कॉलेज में सुभाष सोनकर और सुजाता की मौत को आत्महत्या का केस बना देते हैं। देश की प्रशासन और कॉलेज के बड़े अधिकारी की संवेदना को लकवा मार गया है।

'प्रमोशन' कहानी में सुरेश स्वीपरों का काम करता था। जिसका प्रमोशन मजदूर में होता है। एक बार पांडे में आई संकट में पूरी मेहनत की। सुरेश ने पंडाल तैयार किया और धरणा में खूब नारा लगाया। मजदूर–मजदूर भाई–भाई... इन्कलाब जिंदाबाद का नारा लगाने वाले सुरज को एक दिन सुपरवाइजर के आदेशानुसार दूध लेकर आता। पर उसका दूध अन्य मजदूर खाने नहीं आते हैं, क्यों सुरेश एक स्वीपर था। यह कहानी समाज के मजदूर वर्ग के बीच भी ऊँच–नीच को प्रस्तुत करती है।

'अम्मा' कहानी की अम्मा मालिक के घर कैसे जाना है, कैसे दरवाजे पर पहुँचकर आवाज लगानी है, कैसे घुसना है, घर–आँगन में कहाँ तक जाना है, कैसे पानी डालना है, कैसे झाड़ू चलाना है, किसके साथ किस तरह से बात करनी है और किन–किन चीजों को स्पर्श नहीं करना है आदि के बारे अपनी सास से ट्रेनिंग लेने के बाद काम पर जाती हैं। क्योंकि घर की हालत बहुत खराब थी। अब धीरे–धीरे पैसे आने लगे थे। एक दिन अम्मा मिसेज चोपड़ा के घर काम समाप्त करके मिसेज से पानी मांगती हैं। वह स्नान कर रही थी, उनका बॉयफ्रेंड विनोद घर में बैठा हुआ था। मिसेज अपना बॉयफ्रेंड से पानी डाल देने को कही। विनोद पानी डाल देने की जगह कमर में पकड़ लिया। अम्मा उनके हरकत से हड़बड़ाती हुए चीखती छूटने की कोशिश करती हैं। पर विनोद के अनैतिक व्यवहार पर अम्मा का विरोध आज की नई पीढ़ी को सीख देती है। कहानीकार के शब्दों में उद्धृत है– **''विनोद ने दबाव बढ़ा दिया। कसकर अपने सीने से भींच लिया। अम्मा को लगा जैसे किसी आदमखोर ने उसे दबोच लिया है। वह बंधन ढीला करने के लिए जोर लगा रही थी। जैसे ही पकड़ कुछ कम हुई, झटका देकर उसने खुद को मुक्त कर लिया। हाथ में थमी झाड़ू की मूठ पर हथेली कस गई। पूरी ताकत से झाड़ू का वार सीधा उसकी कनपटी पर किया। चोट लगते ही वह लड़खड़ा गया और बेडरूम की तरफ भागा। अम्मा लगातार उसे पीटते हुए बेडरूम में घुस गई। वह नीचे फर्श पर गिर पड़ा था। अम्मा की झाड़ू सड़ाक–सड़ाक उस पर पड़ रही थी। मुंह से गालियां फूट रही थीं।''**[14]

अम्मा के विरोध का सामना करने स्नान घर से मिसेज अर्द्धनग्न बाहर आ गई। जहाँ मिसेज को अपनी इज्जत की चिंता नहीं है। उन्हें अपना बॉयफ्रेंड की चिंता है। समाज के उच्च वर्ग में इज्जत बिक चुकी है। लेकिन निम्न वर्ग में आज भी अम्मा जैसी विरोध करने को तैयार हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में अशिक्षित दलितों पर जमींदारों के अन्याय को उजागर करते हैं। कहानीकार नवयुवक के माध्यम से दलित का जमींदार के प्रति विश्वास और जमींदार के अन्याय का पर्दाफ़ाश करते हैं। मानवाधिकार का हनन करने वाले जमींदार का कथन देखिए–**''मैंने तेरे बूरे बखत में मदद करी तो ईब तू ईमानदारी ते सारा पैसा चुका देना। सौ रुपये पर हर महीने पच्चीस रुपये ब्याज़ के बनते हैं। चार महीने हो गए हैं। ब्याज़–ब्याज़ के हो गए हैं पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपणा आदमी है तेरे से ज़्यादा क्या लेणा। डेढ़ सौ में बीस रुपये कम कर दे। बीस रुपये तुझे छोड़ दिए। बचे एक सौ तीस। चार महीने का ब्याज़ एक सौ तीस अभी**

दे दें। बाक़ी रहा मूल जिब होगा दे देणा, महीने–के–महीने ब्याज़ देते रहणा।''[15]

जमींदार मुश्किलों के समय दलित पर उपकार करते हैं और बदले में दौगुणा–तीगुणा ब्याज़ लेते हैं। अनपढ़ व गँवार दलित जमींदारों के जालसाजी ब्याज़ पर विश्वास कर ब्याज अदा करने पर विवश हो जाते हैं। कहानीकार दलितों को शिक्षित होने और उनके अत्याचार के विरूद्ध आवाज उटाने के लिए प्रेरित करते हुए सुदीप के पिता के अंतरात्मा के माध्यम से कहलाते हैं। यथा–''**कीड़े पड़ेंगे चौधरी....कोई पानी देनेवाला भी नहीं बचेगा।''**[16]

निष्कर्ष :

देश के उच्च अधिकारी से लेकर एक मजदूर वर्ग के बीच भी जाति के नाम पर भेद–भाव, उत्पीड़न और दलितों के प्रति घृणा भाव कायम है। जो समाज के ठेकेदारों के द्वारा शोषण की जड़ों को खाद–पानी मिलता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अम्मा, रूपचंद, सुदीप, सुदीप के पिता, बिरमा, किसन और उनके दोस्तों के माध्यम से दलित नवयुवकों को सवर्णों के अत्याचार से लड़ने के लिए प्रेरित करते हैं और दलितों की मानसिकता बदलने का प्रयास भी। आज भी दलित जमींदार, पंचायत और इंस्पेक्टर के अत्याचार से पीड़ित हैं।

संदर्भ–संकेत

हिंदी कहानी विविधा, संकलन और संपादन डॉ0 विमल खांडेकर, मानविकी विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पुन : मुद्रित मार्च 2010, पृ0–203

उपरिवत्, पृ0–203

उपरिवत्, पृ0–203

दस प्रतिनिधि कहानियां, ओमप्रकाश वाल्मीकि, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण : 2013, पृ0– 14

उपरिवत्, पृ0– 41

उपरिवत्, पृ0– 43

उपरिवत्, पृ0– 58

उपरिवत्, पृ0– 60–61

उपरिवत्, पृ0– 62

उपरिवत्, पृ0– 65

उपरिवत्, पृ0– 79

उपरिवत्, पृ0– 80

उपरिवत्, पृ0– 81

उपरिवत्, पृ0– 24–25

दलित कहानी संचयन, चयन एवं संपादन रमणिका गुप्ता, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रण : 2017, पृ0–24

उपरिवत्, पृ0–28

सम्पर्क सूत्र

डॉ0 मृत्युंजय कोईरी

द्वारा,

कृष्णा यादव

करम टोली (अहीर टोली)

पो0 – मोराबादी

थाना – लालापूर

राँची, झारखंड–834008

चलभाष – 07903208238

07870757972

मेल– mritunjay03021992@gmail.com

3

चाणक्य नीति एवं नीतितक में धन का महत्व

डॉ0 सूरज सिंह

सारांश –

नीतिग्रन्थों में मानव को उदात्त गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा दी गई है । ये एक अपूर्व ग्रन्थ है। जब हम कभी ध्यान के साथ उनका पारायण करने बैठते हैं , तो ऐसा मालूम पड़ता है , मानों संसार में जो कुछ भी महान है , जो कुछ भी नवीन , निश्पाप , निर्मल और मनोहर है , वह सब एकत्र करके , जिस स्थान पर जिसका समावेश करने में उसकी सुन्दरता और निर्मलता और भी बढ़ सकती है , वह उसी स्थान पर उसी ढंग से बैठाया गया है । भाषा की सुबोधता और चारूता तथा भावों की गम्भीरता के कारण ये श्लोक हमारे जीवन के दैनिक प्रयोग के लिए रूचिकर हैं । नीतिग्रन्थों में मनुस्मृति और महाभारत की गम्भीर–नैतिकता कालिदास की सी प्रतिभा के साथ प्रस्फुटित हुई है । विद्या , वीरता , साहस , मैत्री , उदारता , परोपकार परायणता जैसी उदार वृत्तियों का बड़ी सरस पदावली में वर्णन किया गया है। इनमें जिन नीति–सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है , वे संसार की किसी भी जाति अथवा धर्म के लिए भूषणस्वरूप हैं ।

नीतिकाव्य का नाम लेने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे इन नीति ग्रन्थों में समाज को शिक्षा प्रदान करने के लिए ही चाणक्य , भर्तृहरि , विदुर , कामान्दक , शुक्राचार्य आदि कवियों ने मुक्तक छन्दों को माध्यम बनाकर उपदेशात्मक श्लोकों तथा सूक्ति वाक्यों की रचना की है । मनुष्य के जीवन में विद्वत्ता , नीतिवान , संस्कारवान , सज्जनता , परोपकारी , राजनीतिज्ञ , धैर्यवान , धार्मिकता का जितना महत्व है उतना ही धनत्व का भी है । क्योंकि जीवन को सुचारु रूप से संचालित करने में प्रत्येक क्षण पर धन की आवश्यकता होती है । इसी तथ्य को दृष्टिगत करते हुए मैं इस शोध पत्र में ''धन के महत्व'' को प्रस्तुत करता हूँ ।

शोध पत्र

चाणक्य नीति एवं भर्तृहरिकृत नीतिशतक में धन के महत्व को भलि–भाँति स्पष्ट किया गया है । यह धन पग–पग पर हमारी महती आवश्यकता है , जैसे चाणक्य नीति के इस श्लोक में चाणक्य ने स्वयं लिखा है –

यस्यार्थास्तस्य मिन्नाणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमान् लोके यस्यार्थाः स च जीवति ।।
चा0 नी0 द0 7/15

धन का महत्व वही व्यक्ति समझ सकता है जिसके जीवन में धन का अभाव होता है । धनवान को दिया गया अतिरिक्त धन या दान उसके लिए कोई महत्व नहीं रखता वह उसका दुरूपयोग करने लग जाता है या अनीति के कार्यों में उसे लगा देता है । इसी बात को समाज में बहुधा देखा भी गया है । चाणक्य ने इसी का सड्.केत किया है –

वृथा वृष्टिः समुद्रेशु वृथा तृप्तेशु भोजनम्
वृथा दानं धनाढयेशु वृथा दीपो दिवापि च ।।
चा0 नी0 द0 5/16

जहाँ जिस वस्तु की आवश्यकता और उपयोगिता है वहाँ उस वस्तु को समर्पण करने से लाभ होता है , अन्यथा किया गया कार्य व्यर्थ हो जाता है । इसलिए वस्तु की उपयोगिता बतलाने के लिए ही इस श्लोक का उद्देश्य है । हितोपदेश में भी कहा गया है–

दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
व्याधितस्यौशधं पथ्यं नीरुजस्य किमौशधैः ।।
हितोपदेश 1/15

हे युधिश्ठिर! निर्धनों का पालन करो , धनवानों को दान मत दो , क्योंकि रोगी को औषध देना हितकारी होता है; नीरोग को औषधि देने से कोई लाभ नहीं है ।

कठिन परिश्रम से अपने द्वारा नैतिक रीति से अर्जित धन को व्यर्थ ही नहीं जाने देना चाहिए क्योंकि धन अर्जित करने के अनेक उपाय होते हैं परन्तु उचित मार्ग से अर्जित धन को यदि अनैतिक कार्यों में खर्च किया जाए तो अत्यधिक कष्ट होता है– भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में इस बात को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

दानं भोगो नाास्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुड्क्ते , तस्य तृतीया गतिर्भति ।।
नीतितक 44

धन की दान , भोग और विनाश ये तीन प्रकार की अवस्थायें होती हैं । जो धन का दान नहीं करता है , न उसका भोग करता है , उसके धन की तीसरी गति (विनाश) हो जाती है इसी बात को चाणक्य नीति दर्पण में चाणक्य ने स्वयं लिखा है –

उपार्जितानां वितानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाऽम्भसाम् ।।
चा0 नी0 द0 7/14

कमाये हुए धन को उचित व्यय करना ही उसकी रक्षा है ।

जैसे तालाब के अन्दर भरे हुए जल को निकालना ही एक मात्र पवित्र करने का उपाय है । क्योंकि इससे गन्दा पानी निकल जाता है और पवित्र जल उसमें दे दिया जाता है ।

जगत् को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए महर्षियों ने पुरुषार्थ चतष्ट्य (धर्म , अर्थ , काम , मोक्ष) का आश्रय लिया है । अर्थात् जीवन की एक नहीं अनेक आवश्यकताएँ होती हैं । जो किसी एक मार्ग से पूर्ण नहीं हो सकती अतः जीवन का सफल संचालन व्यवस्थानुसार ही हो सकता है । धर्म , अर्थ , काम और मोक्ष में अर्थ अर्थात् धन के महत्व को ही सर्वोपरि माना गया है । इसी तथ्य को चाणक्य ने इस प्रकार स्पश्ट किया है –

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ।।
चा0 नी0 द0 13 / 9

जिस मनुष्य के जीवन में धर्म , अर्थ , काम और मोक्ष– इस चार पुरुषार्थों में से एक भी नहीं है , उसका जन्म ऐसे ही व्यर्थ और निश्फल है । जैसे बकरी के गले में लटकने वाले स्तन , जिसमें न तो दूध निकलता है और न गले की शोभा ही होती है ।

संसार में चार प्रकार के पुरुषार्थ हैं , धर्म , अर्थ , काम और मोक्ष । उनमें मोक्ष रूप पुरुषार्थ सांसारिक वासना से रहित मुनिजनों के लिए साध्य है क्योंकि मुनियों में काम्य कर्म के साथ ही लौकिक वासना भी समाप्त हो जाती है , तभी मोक्ष संभव है । इसी के साथ अर्थ (धन) के बिना भौतिक जीवन असम्भव है ।

अपि च –

धर्मं धनं च धान्यंच गुरोर्वचनमौशधम् ।
सुगृहीतंच कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ।। चा0 नी0 द0 14 / 19

धर्म , धन , अन्न , गुरु के वचन और अनेक प्रकार की औषधियों को भलिभाँति एकत्रित करना चाहिए । जो व्यक्ति इनका संग्रह नहीं करता है , वह मनुष्य संसार में ठीक प्रकार से नहीं रह सकता है ।

चतुर्वर्ग पुरुशार्थ में धर्म के अनन्तर धन का स्थान है । धर्म से धन और धन से धर्म – दोनों ही प्रक्रियाएँ मान्य एवं प्रसिद्ध हैं । 'धर्मार्थकाममोक्षाणां वैचक्षण्यं कलासु च'। यहाँ पर धर्म का स्थान प्रथम है , लेकिन 'धनाद्धर्मः ततः सुखम्' में धन से धर्म–प्राप्ति का साधन बतलाया गया है। ये दोनों मार्ग अभीष्टदायक तथा ऋषिजन–सेवित हैं ।

इसके अतिरिक्त लोकव्यवहार धन के द्वारा चलता है , इसलिए धन की पवित्रता सर्वश्रेष्ठ पवित्रता मानी जाती है । मनु ने भी कहा है –

सर्वेशामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् ।
योऽर्थे शुचिर्हि च शुचिर्न मृद्वारि शुचिः शुचिः ।।
मनु0 5 / 106

सभी प्रकार की पवित्रताओं में धन की पवित्रता सर्वश्रेष्ठ है । धन अन्याय एवं गलत साधनों के द्वारा उपार्जित न हो । मिट्टी और जल के द्वारा पवित्रता वास्तविकता से परे है अर्थात् धन की पवित्रता ही सर्वोपरि है ।

इस पद्य में धन की महत्ता को बताया गया है जिसके पास धन है वही व्यक्ति सभी गुणों से पूर्ण माना जाता है ।

धन अर्जित हो जाने पर उसका उपभोग किस प्रकार किया जाना चाहिए इस बात को भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक में इस प्रकार कहा है –

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतः सङ्.गात्सुतो लालना
द्विपोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षमादपि कृशिः स्नेहः प्रवासाश्रया
न्मैत्री चाडप्रणयात्समृद्धिरनयात्यागप्रमा दाद्धनम् ।
नीतिशतक–43

अनुचित मन्त्रणा से राज्य , (नश्ट हो जाता है) मुनि आसक्ति से , पुत्र अनुचित लाड प्यार से , ब्राह्मण अध्ययन नहीं करने से , कुल बरे पुत्र से , सदाचार दुष्ट व्यक्तियों की उपासना करने से लज्जा मद्य से , खेती देखभाल न करने से , स्नेह प्रवास का आश्रय लेने से , मित्रता प्रेम के बिना , समृद्धि अनीति से और धन दान में प्रमाद करने से नष्ट हे जाता है ।

राजा को चाहिए कि वह सही व्यक्तियों के साथ मंत्रणा करे । अनुचित मंत्रणा देने वाले व्यक्ति के कारण राजा विनाश को प्राप्त हो जाता है । साधु को चाहिए कि वह सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति नहीं रखे , क्योंकि विष्यासक्त व्यक्तियों का सब कुछ नष्ट हो जाता है । पुत्र को अनुचित रीति से अथवा अनावश्यक लाड़ प्यार नहीं करना चाहिए । ऐसा करने पर उसके कुमार्गगामी होने का भय रहता है । ब्राह्मण का कार्य ज्ञानार्जन करना है । जो ब्राह्मण ज्ञानार्जन नहीं करता , उसका लोग सम्मान नहीं करते हैं तथा उसकी आजीविका भी ठीक नहीं रहती है । यदि कोई अपने वंश की उन्नति चाहता है , तो उसे अपने पुत्र को सदाचारी बनाना चाहिए । कुपुत्र अच्छे कुल के लिए अंधकारस्वरूप होता है । यदि कोई व्यक्ति सदाचारी बनना चाहे तो उसे दुष्टों की संगति छोड़ देनी चाहिए । जो व्यक्ति मद्यपान करता है , वह अपना विवेक खो देता है । विवेकहीन व्यक्ति निर्लज्ज होता है । जो व्यक्ति अपनी खेती को उन्नत करना चाहता है , उसे स्वयं ही उसकी देखभाल करनी चाहिए । दूसरे व्यक्तियों पर खेती का कार्य छोड़ देने पर वे लापरवाही करते हैं और अनेक प्रकार से हानि पहुँचाते हैं । जो व्यक्ति निरन्तर परदेश में रहता है , आत्मीय जनों का उसके प्रति प्रेम घट जाता है । यदि कोई व्यक्ति किसी से मैत्री करना चाहता है तो वह उसके प्रति प्रेम का भाव रखे । कोई व्यक्ति यदि सम्पन्न बनना चाहता है तो उसे नीतिपूर्वक सारे कार्य करना चाहिए । यदि कोई

चाहता है कि उसका धन निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो , तो उसे निरन्तर दान करते रहना चाहिए कभी भी दान में प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

गोस्वामी तुलसीदास ने इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुये रामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में कहा है—

राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा । हरहिं समर्पे बिनुसतेर्मा ।
विद्या बिन विवके उपजावें । श्रमफल पढ़ें कियें अय पावें ।
सड्.ग ते सती कुमंत्र ते राजा । मान ते ज्ञान पान ते लाजा ।
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी । नासहिं बेगि नीति अससुनी ।

परोपकारार्थ धनदान भी उसी व्यक्ति को करना चाहिए जो उसका सत्पात्र हो , कुपात्र को धनदान नहीं करना चाहिए यही नैतिकता है । क्योंकि अपात्र या कुपात्र को किया गया धनदान स्वयं के लिए अमड्.गलकारी सिद्ध होता है । पता नहीं कुपात्र उस धन का उपयोग किस अनुचित कार्य में करेगा , मदिरापान करेगा या द्यूत क्रीड़ा करेगा या वेश्यावृत्ति में करेगा । अतः धन दान करते समय यह भी देखना चाहिए इसी बात को आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में लिखा है —

वित्तं देहि गुणान्वितेशु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित्
प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्तं सदा ।
जीवान्स्थावरजड्.गमांश्च सकलान् संजीव्य भूमण्डलं
भूयः पश्य तदेव कोटिगुणितं गच्छान्तमम्भोनिधिम् ।।
चा0 नी0 द0 8/4

हे बुद्धिमान् ! गुणवानों को धन दो , गुणहीनों को नहीं । देखो , सागर का खारा पानी मेध के मुख में मीठा हो जाता है और पृथ्वी पर चराचर जीवों को जीवन प्रदान करते हुए करोड़ों गुणा अधिक होकर समुद्र में चला जाता है ।

परोपकार की भावना से किया गया कार्य लोककल्याणार्थ होता है—

सहस्त्रगुणमुत्स्रश्टुमादत्ते हि रसं रविः । रघुवंश

भगवान् सूर्यलोक कल्याण के लिए पृथ्वी एवं समुद्रादि से एक गुणा जल लेकर हजार—गुजार गुणा देता है । उसी प्रकार सत्पात्र में दी हुई वस्तु हजारों गुणा लाभदायक होती है —

क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति । कालिदास

लोक में धन की महिमा सर्वोपरि है । इस बात को आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में भलि—भाँति प्रदर्शित किया है—

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च ।
तं चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ते ह्यर्थो हि लोके पुरुशस्य बन्धुः ।।
चा0 नी0 द0 15/5

मित्र , स्त्री , सेवक , बन्धु—बान्धव— ये सब धनरहित मनुष्यों को त्याग देते हैं , परन्तु वही मनुष्य जब धनवान् हो जाता है तो फिर सभी पुनः उनके पास चले आते हैं । इसलिए ठीक ही कहा गया है कि इस संसार में धन ही मनुष्य का सबसे बड़ा बन्धु—बान्धव है ।

धन की महिमा लोक में सर्वाधिक है , धन के बिना कोई भी कार्य नहीं होता । इसलिए धन की महत्ता को स्वीकार करना पड़ता है । साथ ही निर्धन व्यक्ति को सम्पूर्ण संसार में उपेक्षा , तिरस्कार और अपमान सहना पड़ता है । इसलिए धन की महिमा सर्वत्र प्रतिपादित की गयी है —

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्य पिहितं मुखम् ।
तत्र क्व मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्सतः ।। ईशा0

सोने के पात्र से सत्य का मुख ढँका हुआ है वहाँ मोह—शोक कुछ भी नहीं होता , केवल एकत्व दिखलाई देता है ।

नीतिकार भर्तृहरि ने कहा है—

यस्याति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति ।।
नीतिशतक — 42

जिसके पास धन है वही मनुष्य कुलीन , पण्डित , वेदों का ज्ञाता और गुणज्ञ है , वही वक्ता और दर्शनीय है , इसलिए सभी गुण सोने में ही रहते हैं ।

नैतिक परम्परा से ही धन अर्जित करना चाहिए अनैतिक रूप से कदापि धन अर्जित नहीं करना चाहिए , क्योंकि अनैतिक रूप से अर्जित धन पाप का कारण बन जाता है इसी तथ्य को चाणक्य नीति में इस प्रकार बताया गया है ।

अन्यायोपार्जित द्रव्यं दशवर्शाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्शे समूलं तद् विनष्यति ।।

अन्याय से उपार्जित किया हुआ धन दश वर्श तक रहता है , ग्यारहवाँ वर्ष प्राप्त होने पर समूल नष्ट हो जाता है ।

अन्याय पापों का मूल है लेकिन प्रारम्भिक दशा में अधर्म से वर्तमान समय में विकास दिखलाई देता है , उसमें स्थायित्व नहीं होता । वह एक दिन समूल नष्ट हो जाता है । इसलिए मनु ने कहा है—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पष्यति ।
ततः सपत्नांजयति समूलस्तु विनष्यति ।।
मनुस्मृति 4/174

मनुष्य अधर्माचरण से पहले उन्नति करता है , उसके बाद अनेक प्रकार की कल्याणकारक वस्तुओं को देखता है , तत्पश्चात् अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है; परन्तु अन्त में समूल नष्ट हो जाता है ।

आज तक का इतिहास साक्षी है कि पापाचरण के द्वारा विकास—प्राप्त व्यक्ति बाद में समूल नष्ट हो जाता है । अतः पापाचरण नहीं करना चाहिए और धर्माचरण के साथ धन कमाना चाहिए एवं उसका सदुपयोग करना चाहिए ।

धन की कब और कहाँ आवश्यकता पड़ जाए यह कोई

नहीं जान सकता क्योंकि दैनिक जीवन में भी नित्य प्रति धन की आवश्यकता रहती ही है । अतः धन को सदैन अपने पास ही रखना चाहिए इसी बात को बड़ी ही चतुरता से आचार्य चाणक्य ने अनेक उदाहरणों के साथ इस श्लोक प्रस्तुत किया है ।

पुस्तकेशु च या विद्या परहस्तेशु यद्धनम् ।
उत्पन्नेशु च कार्येशु न सा विद्या न तद्धनम् ।। 20

जो विद्या (शास्त्रज्ञान) पुस्तकों में लिखा हुआ है और जो धन दूसरों के हाथों में चला गया है आवश्यकता पड़ने पर न वह शास्त्रज्ञान काम देता है और न वह धन ही काम आता है ।

विद्या और धन जिसके पास हो , वही काम आता है । अभ्यस्त विद्या और पास के धन का कभी भी उपयोग किया जा सकता है । पुस्तकों में लिखे हुए विशयों का सदुपयोग कार्य के समय नहीं हो पाता । इसीलिए 'विद्या कण्ठ की और धन गाँठ का' वाली कहावत यथार्थ घटती है ।

निष्कर्ष :

इन विभिन्न श्लोकों के माध्यम से आचार्य चाणक्य एवं भर्तृहरि ने धन के महत्व को प्रदर्शित किया है। दैनिक जीवन में धन का विशेश महत्व होता है । बिना धन के वर्तमान समय में एक दिन भी जीना कठिन है । अतः नीतिग्रन्थों में धन को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चाणक्य नीति दर्पण
2. नीतिशतक (भर्तृहरि)
3. मनुस्मृति
4. हितोपदेश
5. रघुवंश

डॉ0 सूरज सिंह
असि0 प्रोफेसर (संस्कृत विभाग)
श्री गोविन्द डिग्री कॉलेज
तेवरखास बिलारी
मुरादाबाद
मो0 नं0– 7500042383

4

साहित्यिक साक्षात्कार के अनिवार्य गुण

प्रमिला देवी

सारांश –

हिंदी गद्य की नवीनतम विधाओं में वर्तमान समय में इंटरव्यू सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। इसके लिए साक्षात्कार, भेंटवार्ता अंतरंग वार्ता तथा परिचर्चा शब्द भी पर्याप्त रूप में प्रयुक्त होते हैं। इन्टरव्यू से तात्पर्य उस रचना से है जिसमें लेखक किसी व्यक्ति विशेश के साथ साक्षात्कार करने के बाद प्रायः किसी निश्चित प्रश्नावली के आधार पर उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करता है और फिर उसे लिपिबद्ध करके उसे पाठकों तक पहुँचा देता है।

साक्षात्कार के अनेक प्रकार हो सकते हैं – सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा राजनैतिक विशयों पर दिए गए साक्षात्कार । इनमें से साहित्यिक साक्षात्कार विधा निरंतर विकास को प्राप्त कर रही है । वैसे तो साहित्यिक साक्षात्कार विधा पश्चिम साहित्य की देन है किंतु भारत में भी वैदिक काल से ही विद्वान इसकी शुरुआत मानते हैं ''यम–नचिकेता संवाद, लक्ष्मण–परशुराम संवाद, युधिश्ठिर–यक्ष संवाद तथा श्रीमद् भागवत गीता को भी बहुत से विद्वान साक्षात्कार की कोटि में रखते हैं।''[1]

हिंदी में इस विधा का सूत्रपात वैसे तो भारतेंदु युग से ही माना जा सकता है लेकिन उस युग में पं. राधाचरण गोस्वामी ने भारतेंदु हरिश्चन्द्र से साक्षात्कार करके उनसे साहित्यिक प्रश्न पूछे थे और फिर पूछे गए प्रश्नों तथा प्राप्त उत्तरों को लिपिबद्ध करके प्रकाशित भी करवाया था । किंतु डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी का मानना है कि साहित्यिक प्रस्तुतीकरण के अभाव में इसे साक्षात्कार की कोटि में नहीं रखा जा सकता । अतः साहित्यिक साक्षात्कारों का अध्ययन करने से कुछ तत्त्व सामने आते हैं, जिन्हें हम साक्षात्कार के आवश्यक गुण के रूप में भी स्वीकार करते हैं । इन गुणों के होने से प्रश्नकर्ता तथा उत्तरदाता दोनों के ही अंतर्मनों में छिपे रहस्यों को पाठकों के सामने लाने में सहजता होती है । साहित्यिक साक्षात्कारों का अध्ययन करने से कुछ तत्त्व सामने आते हैं, जो साहित्यिक साक्षात्कार विधा के अनिवार्य गुणों के रूप में जाने जाते हैं जिन्हें हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत समझ सकते हैं –

1. निष्पक्षता :–

यह साक्षात्कार का सबसे अनिवार्य तत्त्व या गुण माना गया है । निष्पक्ष भाव से लिया गया साक्षात्कार ही उच्च कोटि का माना जाता है । यदि स्वयं प्रश्नकर्ता ही किसी मत विशेश का मानने वाला है तो साक्षात्कार मात्र उस मत सहमति का परिचायक होगा । डॉ. तारिणीचरणदास 'चिदानंद' लिखते हैं ''.... यह कोई आवश्यक नहीं है कि भेंट किए जाने वाले व्यक्ति के उज्ज्वल पक्ष पर ही प्रकाश डाला जाए। अतः निरपेक्ष भेंटवार्ता कोई निरपेक्ष कलाकार ही लिख सकता है । साक्षात्कार करने वाला लेखक अगर पूर्वाग्रह अथवा मानसिक असंतुलन से ग्रस्त होगा तो उसकी भेंटवार्ता सफल न होगी।''[2]

2. स्पष्टवादिता :–

यह साक्षात्कार विधा का दूसरा मुख्य गुण है। प्रश्नकर्ता तथा उत्तारदाता दोनों के ही लिए स्पश्टवादी होना अत्यावश्यक है तभी साक्षात्कार का उद्देश्य पूरा होगा । गोबिंद मिश्र के शब्दों में ''.. ...साक्षात्कार उस साहित्यकार के व्यक्तित्त्व, उसकी सोच, उसके जीवन के कितने अंजान पहलुओं को उजागर करते हैं, उनसे जहाँ एक तरफ उस साहित्यकार के साहित्य को समझने में मदद मिलती है, वहीं उस साहित्यकार के इर्द–गिर्द जो रहस्य समय के साथ–साथ इकट्ठा हो जाता है वह भी उद्धाटित हो जाता है।[3]

3. मौलिकता :–

मौलिकता या स्वाभाविकता साक्षात्कार का अन्य महत्त्वपूर्ण गुण है । गद्य के विविध रूप में डॉ. माजदा असद लिखती है – ''तथ्य की मौलिकता इंटरव्यू में बहुत महत्त्व रखती है । इन तथ्यों के उद्घाटन की ओर ध्यान दिया जाए जो पहले प्रकाश में न आए हों । यह किसी भी विशय से जुड़े हुए हो सकते हैं । पुराने विशयों को नए स्वरूप में मौलिक ढंग से भी उद्घाटित किया जा कसता है । मौलिक तथ्यों का उद्घाटन वार्ता को महत्त्वपूर्ण बना देता है।''[4]

4. तथ्याधारिता :

सक्षात्कार का तथ्यों पर आधारित होना उसकी सत्यता की कसौटी है, अन्यथा वह कहानी या गलप की श्रेणी में आ जाता है । प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनों ही इस तथ्याधारिता की परिधि में आते हैं । इस संदर्भ में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं – इंटरव्यू का अभिप्रत वास्तविकता यथार्थ उद्घाटन है । यह कथन भी साक्षात्कार में तथ्यों की आवश्यकता पर बल देता प्रतीत होता है ।

5. सत्यता :–

साक्षात्कार सत्य पर ही आधारित होना चाहिए, तभी यह गद्य विधा इतिहास में परिवर्तित हो सकती है । वस्तुतः सत्य कहलवाने के लिए ही इसका प्रयोग किया जाता है क्योंकि रचना करते समय लेखक स्वयं को आवरण से ढंग सकता है, साक्षात्कार देते समय नहीं । डॉ. आशा गुप्ता लिखती है ''लेखक भी जब सीधे

सामने बोलता है तो वह उस प्रकार अपने को सावधान नहीं रख पाता, न सँवार पाता है जिस प्रकार वह लिखते समय सावधानी बरतता है।''[4]

6. तथ्यान्वेशण :–

तथ्यों पर आधारित होने तथा सत्य कहने के साथ–साथ तथ्यो का अन्वेशण भी साक्षात्कार का एक गुण है । कहने वाला जो कह रहा है उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है जो कहना चाह रहा है। इसी लिए साक्षात्कार में तथ्यान्वेशण को महत्त्व दिया गया है । भीश्म साहनी के शब्दों में ''साक्षात्कार द्वारा हम केवल लेखक के व्यक्तित्त्व को ही नहीं, अपने सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के अनेक पक्षों के प्रति भी सचेत हो पाते हैं, भले ही वे लेखक के माध्यम से चर्चा का विशय बने हैं, उनकी जानकारी अनेक सामाजिक तथा सहित्यिक पहलुओं को भी जैसे रचना–प्रक्रिया, रचना का गठन, रूप–सौश्ठव, भाशा आदि।''[5]

7. व्यक्तित्त्व का उद्घाटन –

साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता के व्यक्तित्त्व का उद्घाटन होता है । साक्षात्कार एकमात्र ऐसी विधा है जो उत्तरदाता के व्यक्तित्त्व के कुछ ऐसे पक्षों को उद्घाटित करता है जिन पर किसी अन्य ढंग से प्रकाश नहीं पड़ सकता । साक्षात्कारकर्ता ऐसे विशयों से संबंधित प्रश्न पूछ सकता है जिन पर साहित्यकार की रचनाओं में बात ही नहीं की गई है। लेखक के व्यक्तित्व के सबल और दुर्बल दोनों पक्षों का स्पश्ट उद्घाटन साक्षात्कार में ही संभव है । प्रश्नकर्ता के व्यक्तित्व का भी प्रश्नों के माध्यम से उद्घाटन होता है । दोनों ही वैचारिक परिपक्वता–अपरिपक्वता, दृश्टि की गहराई आदि से परिचय साक्षात्कार में ही संभव है ।

निष्कर्ष–

अतः कह सकते हैं कि साक्षात्कार के आवश्यक गुणों के ज्ञान से प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनों को ही सुविधा रहती है तथा साक्षात्कार के यथार्थ एवं स्वस्थ रूप के लिए यह आवश्यक भी है ।

संदर्भ :–

1. हिंदी साहित्य का इतिहास (द्वितीय खंड) श्री शरण डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी, पृ. 298
2. साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन– डॉ. तारिणीचरणदास 'चिदानंद', पृ. 220
3. मेरे साक्षात्कार – गोबिन्द मिश्र, पृ. 7
4. गद्य के विविध रूप – डॉ. माजदा असद, पृ. 18
5. मेरे साक्षात्कार – भीष्म साहनी, पृ.6

प्रमिला देवी
प्राध्यापिका
कन्या महाविद्यालय,
खरखौदा (सोनीपत)

कहानी

सागर की काकी

डॉ0 मृत्युंजय कोईरी

सागर के काका अरुण अंगूठा छाप है। हाट–बाज़ार में हिसाब–किताब में गड़बड़ा जाता। एक–दो ग्राहक और व्यापारी हिसाब से कम पैसा देते। अरुण की पत्नी पढ़ी–लिखी हो जो साथ में हाट–बाज़ार जाकर पैसा का हिसाब–किताब कर सकें। यही सोचकर पड़ोस के किसानों ने मैट्रिक पास लड़की से शादी कर दी। अरुण की पत्नी रम्भा साथ में बाज़ार जाने लगी।

एक दिन बाज़ार से दोनों आ रहे थे और रम्भा साइकिल से गिर गयी। पैर में मोच आयी। अरुण घर आकर पड़ोस के चचेरे भाई सुभाष को बुलाने चला गया। सुभाष शहर से बीए पास करके आया था। वह अपने दोस्तों से हाथ–पैर की मोच ठीक करने की कला सीख लिया था। रम्भा के पैर की मोच थोड़ी ज्यादा थी। रात को कुछ ठीक कर दिया। अरुण सुबह सुभाष को बुलाया और बिजली आ गयी। फ़सल की सिंचाई करनी थी। अरुण ने सुभाष को पत्नी का पैर ठीक से मालिश कर देने को कहा और खेत चला। ''भाभी जी! आपका पैर का दर्द कुछ कम हुआ या नहीं।'' सुभाष ने पूछा

''हाँ, हाँ....है न!''

''कहाँ? कहाँ?''

''दिल में''

''दिल को क्या हुआ?''

''सॉरी, सॉरी....देवर जी! मैं भी क्या बोल रही हूँ। पैर का दर्द कम हुआ है, पर जंघा में बहुत दर्द है।''

''भाभी जी! मैं जंघा की मोच ठीक नहीं कर सकता हूँ। आप उसके लिए दाई भाभी को बुला लीजिए! नहीं, नहीं... मैं नहीं।'' कहता उठाकर घर के लिए निकल रहा।

''तुम मेरा देवर हो! क्या? वैद्य–डॉक्टर मरीज का बीमार देखकर इलाज करता है न कि शरीर का अंक। तुम्हारे भैया ही बोलकर गये हैं ....।'' बोलती रम्भा उठकर सुभाष का हाथ पकड़ ली।

''क्या?क्या?भैया ही बोले हैं।''

''हाँ!''

'' अच्छा ठीक है। मैं, पैर और घुटना से नस को पकड़ कर ठीक करने की कोशिश करता हूँ।'' कहा और हाथ में तेल लेकर मोच ठीक करने लगा।

रम्भा पहले साड़ी घुटना से ऊपर कर ली। फिर कराह रही, ''जंघा में में बुहत दर्द हो रहा है, ऊह ऊह ऊह ऊह ...... ऊहऊहऊह.....।'' सुभाष मोच ठीक करने में लगा हुआ है।

क्रमश पृ.27

5

दयाप्रकाश प्रकाश सिन्हा के नाटकों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक संवेदना का समन्वय

प्रमिला देवी

सारांश –

भारत की संस्कृति बहुआयामी है, जिसमें भारत का महान इतिहास विलक्षण भूगोल और सिन्धु घाटी की सभ्यता के दौरान बनी और आगे चलकर वैदिक युग में विकसित हुई। बौद्ध धर्म एवं स्वर्ण युग की शुरूआत और उसके अस्तगमन के साथ फली–फूली अपनी खुद की प्राचीन विरासत शामिल हैं। इसके साथ ही पड़ोसी देशों के रिवाज, परम्पराओं और विचारों का भी इसमें समावेश है। पिछली पाँच–सहस्राब्दियों से अधिक समय से भारत के रीति–रिवाज भाशाएँ, और परम्पराएँ एक–दूसरे से परस्पर संबंधों में महान विविधताओं का एक अद्वितीय उदाहरण देती है। गाँधी जी ने बार–बार कहा हैः–''धर्म प्रत्येक व्यक्ति का निजि मामला है, इसे राजनीति या राष्ट्रीय मामला के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही धर्म सर्वोपरि रहा है। सभी युगों के नाटकों में किसी न किसी रूप में धर्म एवं संस्कृति का प्रमुख स्थान देखने को मिलता है। हिन्दी नाटकों के उद्‌भव काल में धार्मिक प्रवृतियों की समाज में प्रमुखता रही है। परिणाम स्वरूप उस काल के नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से धर्म और सांस्कृतिक भावना का आकलन किया है। यही कारण है कि हिन्दी के अधिकांश आरम्भिक या प्राचीन काल के नाटक प्रमुख रूप से धार्मिक–सांस्कृतिक आख्यानों से भरे हुए हैं। ''श्री दयाप्रकाश सिन्हा'' के परिवार में आस्तिकता और आस्था की मात्राा प्रचुरता से देखने को मिलती है।

उनके सभी नाटकों में जीवन के सकारात्मक मूल्यों में विश्वास की प्रतिष्ठा है। 1975 से 1979 के दौरान उनके जीवन में ऐसे कड़वे अनुभव आए, जिनमें नाटककार के विश्वास और आस्था की नींव ही हिल गई। व्यक्ति अपने जीवन का संचालन धार्मिक मान्यताओं पर नहीं छोड़ना चाहता हैः– ''धर्म आदमियों को निकम्मा व आलसी बना देता है। वह उसे स्वयं सोचने और जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण लेने के अयोग्य बना देता है। धर्म उसकी आँखों पर वर्शों की पुरानी शिक्षाओं औश्र परम्पराओं की पट्‌टी बाँध देता है। यह करो यह न करों।

आज के वैज्ञानिक युग में व्यक्ति कोई भी कार्य अपनी बुद्धि से निर्णय करें, धर्म के आधार पर नहीं। आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्येक व्यक्ति हर तत्व की परीक्षा बुद्धि व तर्क के आधार पर करता है। इसलिए ''दयाप्रकाश सिन्हा जी'' ने नाट्‌य साहित्य में परम्परावादी धर्म और पौराणिक संस्कृति के स्थान पर मानव धर्म की प्रतिष्ठा का स्वर मुखरित किया है। उनके अधिकांश नाटकों में मानव धर्म की प्रतिष्ठा दिखाई देती है।

जीवन परिचयः–

वर्तमान युग के प्रतिष्ठित नाट्‌य साहित्य के सूत्रधार ''श्री दयाप्रकाश सिन्हा जी'' का जन्म ब्रिटिश भारत के संयुक्त प्रान्त आगरा एवं अवध में ऐटा जिले के कासगंज कस्बे में 2 मई 1935 को हुआ। पिता आयोध्यानाथ सिन्हा व माता स्नेहलता के घर पर हुआ। पिता सरकारी नौकरी में थे। अतः इधर–उधर स्थानान्तरण होने के कारण बालक ''दयाप्रकाश सिन्हा'' को घर पर ही अध्ययन करना पड़ा। चौथी कक्षा में मैनपुरी के एक विद्यालय में स्थायी रूप स प्रवेश मिल सका। अभिनय करने के लिए उन्हें मनचाहा साथी भी मिल गया। उनका अचानक दिल का दौर पड़ने से देहांत हो गया। उनकी पत्नी प्रतिभा की मृत्यु के पश्चात नाट्‌य जीवन से मन कुंठित होने लगा। ऐसी घटित घटनाओं को देखकर नाटककार का को लगता है कि :–यह कैसा संयोग। कितना क्रूर। कितने प्रश्न मस्तिश्क को सालते रहते हैं। ''मेरा रंगमंच का जीवंत रिश्ता टूट गया।''

उस समय ''दयाप्रकाश सिन्हा'' एम० ए० पास कर चुके थे। उनके पिता जी की इच्छा थी कि वह आई० ए० एस० के कॉम्प्टीशन में बैठकर गहन अध्ययन करें, परन्तु ''दयाप्रकाश सिन्हा'' नाटकों और साहित्य के प्रति अपनी महत्वाकांक्षा जोड़ रहे थे। पिता–पुत्र में अव्यक्त और अघोशित संघर्श जारी था। जब पश्चिम की चकाचौंध में युवा मानस का प्रारम्भिक मूल्यों के प्रति विमोह हो रहा था। ''सिन्हा जी''33 वर्शों तक विभिन्न पदों पर सेवाएँ देते रहे। सेवानिवृति पर उन्होंने नोएडा के मकान पर आयोध्या नाम दिया। इसी मकान में बड़ी बेटी प्राची और दामाद सामेश रंजन के साथ रहने लगे। लेकिन भाग्य को कुछ ओर ही मंजूर था। गुर्दों की बिमारी से बड़ी बेटी प्राची गंभीर हो गयी। गुर्दें का प्रत्यारोपण के बाद भी नियति को यह स्वीकार नहीं था।

प्राची 32 वर्श की अल्पायु में एक छोटे बेटे को अपने नाना के हाथों सौंपकर स्वर्ग सिधार गयी। उनके दामाद सोमेश रंजन ने अपने शवशुर ''दया जी'' से अनुमति लेकर अपना गृहस्थ जीवन को आगे बढ़ाया। अब वे अपने पुत्रधर्म को निभाते हुए उन्हीं के साथ नोएडा में रह रहे हैं। इनका पारिवारिक जीवन दुखों से भरा हुआ है। अपनी पत्नी से ज्यादा लगाव होने की वजह से उनको प्रेरणा से वे लिखते रहे। वह उन पर गर्व व अभिमान से भर उठती थी। ''कथा एक कंस की'' नाटक जब वह लिख रहे थे, तो वह

कहती थी कि मैं स्वाति का रोल अदा करूंगी। वह उनकी सहगामिनी बन साथ चलने को तैयार रहती थी। इनकी नाट्य यात्रा से इनका जीवन निरन्तर चल रहा है।

धार्मिक संवेंदनाः—

धर्म एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें विश्वास, प्रथाएँ एवं पवित्रता स सम्बन्धित मूल्य रूपी मोती होते हैं। जिससे मानव समूहों में सांसारिक अस्तित्व का अन्तिम लक्ष्य माना जाता है। ''दयाप्रकाश सिन्हा'' 'सम्राट अशोक नाटक में धर्म के बारे में सम्राट अशोक द्वारा उसे धर्म धर्म कहा हैः—''अनुचरों और कर्मचारियों के प्रति उचित व्यवहार, माता—पिता के प्रति उदारता और ब्राहम्णों और श्रमणों के प्रति श्रद्धा यही धर्म है।'' मानव जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जब 'सम्प्रट अशोक' पाटलिपुत्र राज—सत्ता हेतु प्रस्थान के लिए तैयार होता है तो उनकी रानी देवी पूजा—पाट में मग्न होती है और अपने धर्म को निभाते हुए उनके साथ उनके भाई के विरूद्ध जाने से इन्कार कर देती है।

''दयाप्रकाश सिन्हा द्वारा रचित नाटक 'मन के भँवर' में डॉ० वशिष्ठ की माँ पूजा—पाठ करने का जिक्र छाया के संवादों से स्पष्ट होता है। ''पहले मैं रोज शाम को सिनेमा देखने जाती थी, अब तो महिनों बीत जाते हैं। मैं मन मारकर चुप हूँ। पानी भी अपने हाथ से उठाकर नहीं पीती थी अब खाना भी बनाती हूँ, क्योंकि तुमको पूजा—पाठ करना हाकता है।'' इससे स्पष्ट हो जाता है कि डॉ० वशिष्ठ की माँ हर दिन भगवान की पूजा पाठ करती है।

''दुश्मन'' नाटक में हिकमत पहलवान बजरंग बली की कंठी और लंगोट धारण कर हर दिन सुबह—शाम हनुमान जी की तस्वीर के आगे आँख बंद करके पुजा किया करता है। तस्वीर के सामने उठक—बैठक मार पहलवानी के दृश्य अंकित हैं। भगवान की अंध भक्ति के कारण शादी को भी इनकार करता है। '' अपने—अपने दाँव'' नाटक में बुआ—दादी का ही दृश्य देख लीजिएः— माला जपना और भगवान की पूजा का जिक्र किया है।

पूजा करते समय हरिबाबू और रानी आने पर उन्हें कहती है कि —''अच्छा बेटा, तुम लोग बैठो। आने दो चार माला फेर कर जल्दी पूजा से निपटती हूँ।'' इससे अपने पूर्वजों की धर्म के प्रति गहरी आस्था के दर्शन होते हैं। ''इतिहास—चक्र'' नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार के माध्यम से प्राचीन भारतीय नाटकों की परम्परा के अनुरूप शिव पूजा का उल्लेख है। सूत्रधार के माध्यम से यही अपेक्षा की हैः—''भगवान करे आप के दिन फिरें। कहकर भगवान की प्रार्थना की है।

''रक्त अभिशेक'' का प्रथम दृश्य धर्म से परिपूर्ण है। मिनेण्डर ने अपने यूनानी लोगों को लेकी जियस की मूर्ति के सामने खड़े होकर प्रार्थना की है। ''हे जियस तू हमरा माई खुदाई बाप है। हमरा मालिक है। हमारी हिफाजत करने वाना मुहाफिज है। सब देवता तेरे नौकर हैं। जियस हम सब फरियादी तेरे सामने सिर झुकाए खड़े हैं।'' राजा ब्रहद्रथ द्वारा वघ कर देने पर दुर्गा—सप्तशती का रौद्र—मंत्रोच्चारण का उल्लेख भी हुआ है। इस प्रकार दुर्गा—शक्ति तथा मंत्रोच्चारण द्वारा भारतीय जनमानस को प्रोत्साहित किया गया है।

''कथा एक कंस की'' नाटक में मथुरा साम्राज्य में सभी यादव 'श्री कृश्ण' की उपासना तथा पूजा किया करते हैं। प्रलम्ब के शब्दों में :—''मूढ़जन ईश्वर के बिना नहीं रह सकते।'' साधारण जनता भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति के दर्शनों के लिए हजारों की संख्या में मन्दिरों में एकत्रित हो रही है। भगवान कृष्ण के ही भक्त नहीं बल्कि केस के भी भक्त देखने को मिलते हैं।

इस नाटक में एक मछुआरा स्वयं कहता हैः—''भगवान मैं नदी में मछली पकड़ रहा था। अचानक तेज बहाव आया, मेरे पैरों तले की बालू फिसली और मैं पानी में बह चला। डूबने लगा, मौत एकदम सामने थी। तभी मैंने कंस का नाम जाप किया । मेरे पैरों तले धरती आ गई। मैं डूबने से बच गया। इन सभी विवरणों से साबित होता है कि ''दयाप्रकाश सिन्हा'' के सभी नाटकों में धर्म की पराकाष्ठा देखने को मिलती है।

''ओह—अमेरिका'' में एक अमेरिका औरत से प्राप्त रूद्राक्ष की माला को जया, रमेश, माधुरी, और समीर एक लेटेस्ट फैशन का नाम देते हैं। भारतीय संस्कृति के मूलाधार राम और कृश्ण के हारे कृष्णा और हारे रामा कहकर उपहास उड़ाते हैं। अमेरिकन हिन्दु देवी—देवताओं की उपासना को अपनी जीवन—पद्धति का अंग बनाने का प्रयास कर रहे हैं। वे भारतीय संस्कृति के आदर्श को आत्मसात करना चाहते हैं।

सांस्कृतिक संवेदनाः—

संस्कृति शब्द का पर्यायवाची शब्द 'कल्चर है जो संस्कृति की परिकल्पना करता है। संस्कृति वह गुण है जो मनुश्य में व्याप्त होता है। संस्कृति का अथ हैः—संस्कार से उत्पन्न गुण। किसी भी वर्ग के व्यक्ति, समुदाय, जाति, के संस्कारों में हमें उस वर्ग, समुदाय, की झलक दिखाई देती है। संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे से प्रभावित होती हैं। संस्कृति का विस्तार बहुत व्यापक माना जाता है। संस्कृति उस सामाजिक व्यवहार का नाम है, जो परम्परागत रूप में मनुश्य में विद्यमान रहती है। भारतीय संस्कृति की झलक वास्तविक रूप से ग्रामों में ही विद्यमान रहती है। इस संदर्भ में ग्रामीण संस्कृकत को ही भरतीय संस्कृति के रूप में स्वीकार करना उचित रहेगा। ग्रामीण पर्व, त्यौहार, मेले, लोकगीत, लोककथाए, कीर्तन, प्रथाएँ, विवाह, एवं रीति—रिवाज आदि ग्रामीण संस्कृति की धरोहर हैं।

आधुनिक प्रभाव के प्रभाव से गाँवों में वैज्ञानिक उन्नति एवं औद्योगिक विकास के सांस्कृतिक परिवर्तन

स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ''दयाप्रकाश सिन्हा'' एक सजक नाटककार होने के साथ–साथ एक साधक भी हैं। उन्होंने साहित्य कला परिशद् के सचिव बनने पर एक ऐसी अनेक योजनाएँ बनाई कि दिल्ली शहर के साधारण व्यक्ति को भी कला और संस्कृति से जोड़ने का प्रयास किया। ''दयाप्रकाश सिन्हा'' भारतीय संसकृति के जीवन मूल्यों के अनेक उत्सवों का विस्तृत वर्णन हुआ है।

लोकगीत एवं नृत्यः–

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लोकगात की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। प्रत्येक प्रदेश में आँचलिक क्षेत्रों की अपनी पहचान व परम्परा होती है और लोकगीत गाने की प्रथा भी। लोकगीत लोगों के द्वारा गाये जाने वाले गीत होते हैं। यह एक व्यक्ति ही नहीं बल्कि उन्हें सम्पूर्ण समाज स्वीकृत करता है। लोगों के द्वारा कही गयी उक्तियाँ मुहावरों और लोकोक्ति का रूप लेती हैं। बालक–बालिकाओं के जन्म, पूजन, विवाह, त्यौहार, आदि पर गाये जाने वाले संस्कार गीत होते हैं। इनके बिना कोई उत्सव उत्सव नहीं लगता है। ''दयाप्रकाशै सिन्हा'' के नाटकों में प्रसंग के अनुकूल लोक गीतों व नृत्य का समावेश हुआ है। ''दुश्मन'' नाटक में जब हिकमत कों बेटा पैदा होता है तो बधाई के गीत गाये जाते हैं–

''आयी शुभ घड़ी आई रे,
लल्ला जी जन्में बधाई रे बधाई।
कुल का चिराग जला, खुश हुई माता।
आज पहलवान की छाती हुई छाता।

''सीढ़ियाँ'' नाटक में ऊद्यम बाई तवायफ कमरे में अपनी ही छवि को निहार कर विभिन्न अदाओं को निहार रही है। मोहम्मदशाह रंगीला ऊद्यमबाई के कोठे पर आकर उसे मोहब्बत करने का तथा रानी बनाने की बात करता हैं। उसी समय रानी नृत्य करने लगती है। ''रक्त अभिषेक'' म राजा बृहद्रथ राजगृह संघाराम जाते समय उनका ढ़ोल–तासों की आवाज की आवाज के साथ जब जूलूस निकलता है तो साथ में नृत्य करती युवती है। उत्साही दृष्य को नाटक में दर्शाया है।

कीर्तनः–

प्राचीन काल से ही कीर्तन की महिमा रही है। हिन्दू धर्म देवताओं की भक्ति व गुणगान से उनका नाम लेना व उच्चारण करना कीर्तन कहलाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में भजन–कीर्तन का विशेश महव है। ''दयाप्रकाश सिन्हा के नाटकों में इसका उल्लेख हुआ है। ''ओह–अमेरिका'' नाटक में बहुत से अमेरिकन व्यक्ति सफेद साड़ी में कीर्तन कर रहे हैं और हारे कृष्ण हारे रामा का उच्चारण कर रहे हैं। यहाँ पर युवा पीढ़ी के अमेरिकी संस्कृति के अन्धानुकरण का नाटककार ने सुन्दर वर्णन किया है।

''कथा एक कंस की'' नाटक में यादव साम्राज्य में प्राचीन संस्कृति के दर्शन होते हैं। श्री कंस की उपासना की जब घोषणा की जाती है तो वहाँ पर उपस्थित जन भजन–कीर्तन में मग्न दिखायी देते हैं। भगवान श्री कंस के नाम कीर्तन की मंडलियाँ विभिन्न भागों में भेज दी जाती हैं।

लोककथाओं का भी वर्णन ''दयाप्रकाश सिन्हा जी'' ने किया है। ''साँझ–सवेरा'' नाटक में सत्यनारायण की कथा का जिक्र हुआ है। गावों में आज भी सत्यनारायण की कथा सुनाई जाती है।

विवाह एवं त्यौहारः–

भारतीय संस्कृति में विवाह एवं त्यौहार का अपना ही महत्व है और भारतीय संस्कृति की धरोहर भी। गाँव व कस्बों में यह बड़े ही धूमधाम से मनाए जाते हैं। किसी भी देश की पहचान उनके रीति–रिवाजों और त्यौहारों से होती है। भारतीय समाज के मूल्यों को सुरक्षित रखने के प्रयास में विवाह एक ऐसा आदर्श प्रथा है जो नए जीवन का स्वागत करता है। ''दयाप्रकाश सिन्हा ने विवाह की जितनी भी रस्में होती हैं सभी का वर्णन अपने नाटकों में किया है। साहित्य समाज का दर्पण के कथ्य को चरितार्थ करने का भरसक प्रयास किया है।

'साँझ–सवेरा' नाटक में विवाह का वर्णन किया है। विवाह के समय औरतों को गाना गाने के लिए न्यौता देने की प्रथा का भी वर्णन है। जैसे माँ परमा को कहती हैः–''अच्छा बहन, थोड़ी देर बैठो, अभी औरतें आती होंगी। गाने का न्यौता तो पूरे महोल्ले में भिजवा दिया। इस नाटक में यह भी स्पश्ट दिखाया गया है कि आज की लड़कियाँ विदाई के समय दुख प्रकट नहीं करती। पहले की लड़कियाँ अपने माता–पिता के गले लगकर रोती थी। आज की लड़किया खुशी–खुशी घर से विदा हो रही हैं। ''दुश्मन'' नाटक में विवाह के बाद की प्रथा गोने का भी वर्णन किया है।

निष्कर्ष :

अंत में यही कहा जा सकता है कि नाटककार ''श्री दयाप्रकाश सिन्हा'' ने समाज में व्याप्त सांस्कृतिक व धार्मिक जीवन का मार्मिक चित्रण अपनी लेखनी से जीवंत कर दिया है। धार्मिक बाहय–आम्बरों से लेकर देवी–देवताओं के नाम पर अंधविश्वास को अपने सभी नाटकों में स्थान दिया है। समाज में बढ़ती धर्म एवं संस्कृति के नाम पर कुप्रथाओं पर करारा व्यंग्य किया है। इन्होंने धार्मिक रूढ़ियों, परम्पराओं का चित्रण बहुत ही बारीकी से प्रस्तुत किया है। सांस्कृतिक जीवन के प्रत्येक पहलू को उन्होंने जैसेः–विवाह, जन्मोत्सव, पर्व–त्यौहार, लोकगीत, लोककथाएँ, धार्मिक मन्यताएँ आदि की अभिव्यक्ति नाटकों में प्रमुख रूथान दिया है। कुल मिलाकर ''सिन्हा जी''के नाटय जीवन में प्राचीन संस्कृति के माध्यम से आज समाज के यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1 नया पंथ–अक्तूबर–दिसम्बर–1992

2 ''दयाप्रकाश सिन्हा'' नाटक, साँझ–सवेरा' पृश्ठ संख्या–21

3 रविन्द्रनाथ बहोरे, समीक्षायन–संपादक पृष्ठ संख्या–324
4 दयाप्रकाश सिन्हा, नाटक, 'सम्राट अशोक' पृष्ठ संख्या–68
5 दयाप्रकाश सिन्हा, नाटक, 'मन के भँवर' पृष्ठ संख्या–25
6 दयाप्रकाश सिन्हा, नाटक, 'अपने–अपने दाँव' पृष्ठ संख्या–35
7 दयाप्रकाश सिन्हा, नाटक, 'रक्त अभिशेक' पृष्ठ संक्ष्या–15
8 दयाप्रकाश सिन्हा, नाटक, 'कथा एक कंस की' पृष्ठ संख्या

प्रोमिला कुमारी : हिन्दी प्रवक्ता
हिन्दी विभाग : शोध छात्रा
बाबा मस्थनाथ विश्वविद्यालय रोहतक
लक्ष्मी नगर गोहाना सोनीपत।
शोध निर्देशक :
डॉ० जयकरण यादव
राजकीय कन्या उच्च विद्यालय
रकनपुर कलां सोनीपत।

पृष्ठ.23 का शेष

रम्भा अचानक साड़ी कमर तक खींच ली और बोली, ''देवर जी! जंघा में बहुत दर्द हो रहा है, ज़रा मल दीजिए न! प्लीज सुभाष, प्लीज.......।'' सुभाष जंघा देख हक्का–बक्का हो गया। फिर मन में श्रृंगार रस का संचार होने लगा। इसी बीच रम्भा ने ब्लाउज़ का दो बटन खोल स्तन दिखा दी। स्तन में हाथ डालने वाला ही था कि बाहर किसी आदमी के आने की आवाज़ रही, सुभाष उठकर घर के लिए निकल गया।

सुभाष अगले दिन सुबह आकर पूछा, ''भाभी जी! आपका पैर और जंघा का दर्द कैसा है? और अरुण भैया घर में नहीं दिख रहे हैं।''

''हाँ, हाँ... आज कुछ आराम है। लेकिन रात से गला बहुत दर्द कर रहा है। ऊह, ऊह.... न जाने क्या हो गया? शायद गला में भी मोच आ गयी है, ज़रा देखो न! आपके भैया सुबह ही सब्जी बिकने मार्केट चले गये हैं। वह कह गये हैं कि आपको बुलाने को। लेकिन आप स्वयं आ गये। बहुत अच्छा हुआ''

''अच्छा! मैं देखता हूँ।'' कहकर गले में हाथ क्या डाला कि रम्भा ने उनका हाथ पकड़कर स्तन में थमा दी और बाँहों में भर ली। फिर क्या हुआ? जो होना था, वही हुआ। सुभाष और रम्भा के बीच यह सिलसिला आवश्यकता में बदल गयी। प्रतिदिन सरसों और राहड़ के खेतों में संभोग करते। एक नहीं अनेक व्यक्ति ने देखा लिया। यह ख़बर सुभाष के पिता रत्नेश के पास भी पहुँच गयी। रत्नेश लड़का को आगे की पढ़ाई कराने की इच्छा थी। पर उनका चरित्र जानने के बाद शादी कर देने का निर्णय लिया और एक माह के अंदर शादी कर दी। किंतु सुभाष भाभी रम्भा के जाल में इस तरह फंसा था कि वह अपनी अप्सरा जैसी सुन्दर पत्नी से प्यार नहीं करता। छोटी–छोटी बातों में मारने–पीटने पर उतारू हो जाता। जब रम्भा के साथ पति का गलत संबंध जान गयी, तब मायके चली गयी। रत्नेश यहाँ–वहाँ गुनी–ओझा के पास ले जाने लगा और साल भर गाँव नहीं लाया। इधर रम्भा झोला छाप डॉक्टर आर0 के0 प्रसाद से संबंध बनाने लगी।

रम्भा पढ़ी–लिखी थी। आस–पास की महिलाओं ने महिला समिति का अध्यक्ष बना दी। गाँव से आठ किलोमीटर दूर प्रखंड में बैंक है। पैसा जमा करना हो या निकालना हो साइकिल से जाती। जहाँ दो–चार अवारे लड़कों से मिलना–जुलना शुरू हुआ। बीच में पन्द्रह दिनों तक नहीं जाने पर वे लड़के घर आ गये। फिर रम्भा पति के बाहर जाने पर फोन से बुलाती। इसी बीच एक दिन अरुण ने रम्भा को एक लड़का के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देख लिया। वह लड़का कुछ कहे बिना ही मोटरसाइकिल स्टार्ट करके चला गया। ''रंडी की औलाद! तुमको मैं अपने साथ बाज़ार जाने कहता, तब तुमको बैंक में काम रहता। तुम बैंक समिति का पैसा जमा करने या

शेष पृष्ठ.39 पर शेष

6 वर्तमान में संगीत के क्षेत्र में समूहगान की बढ़ती लोकप्रियता के जनसंचार के साधन का अध्ययन

मोनिका ड़डवाल

सारांश –

किसी भी युग संस्कृति का अनुमान हम उस युग के संगीत की समृद्धि से भी लगा सकते हैं फिर चाहे वह लोक संगीत हो अथवा शास्त्रीय एवं समूहगान संगीत हो, क्योंकि यह संगीत मनुष्य के मन की गहनता को प्रकट करने का एक उचित माध्यम है। क्योंकि संगीत ने तो सदैव हर रूप में अपनी भूमिका को निभाया है। अगर देखा जाए तो समूहगान की परम्परा वैदिक युग से लेकर ऐतिहासिक युगों तक अपनी संस्कृति का व्याख्यान करती हुई कई अलग–अलग रूपों को संजोए हुए जैसे धर्म–दर्शन, भक्तिरस, वीर–रस तथा कई भाषाओं और सांस्कृतियों के बीच प्रेम की भावना को पैदा करती हुई आज भी हमारे बीच विद्यमान है। जिससे कि मालूम होता है कि समूहगान का हमेशा से ही एक ही उद्देश्य रहा है। हमारे मन को नाद्मय आनन्द की और ले जाना समूहगान का वर्तमान में केवल यह उद्देश्य है कि समूहगान का हर क्षेत्र में विकास हो, और कई पहलुओं में उसका स्थान तथा वर्तमान समय में उसका अपना अस्तित्व हो, और इसी सोच के चलते समूहगान आज अपने नवीन–प्रयोगों से युक्त होकर हमारे समक्ष विद्यमान है।

हिन्दुस्तान के संगीत के इतिहास में सदा से ही समूहगान भावना का समावेश रहा है क्योंकि वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक हम देखते आए हैं कि संगीत का गायन, वादन, नृत्य ये तीनों विधाए अधिकतर सामूहिक रूप में ही होती थी अथवा प्राचीन काल से ही समूहगान को वृन्दगान का नाम दिया गया था वास्तव में देखा जाए तो वृन्द का अर्थ समूह हैं और गान का अर्थ गाने से रहा है। सही मायने में जो संगीत समूह में गाया जाता है। वही समूहगान कहलाता हैं और वर्तमान में आज के समय में समूहगान इस प्रकार के होते हैं कि आठ, बीस व्यक्तियों का समूह, जिनकी एक सी आवाज और वेशभूषा होती है। और मिलकर जब वह गायन करते हैं। उनको समूहगान कहा जाता है। इतिहास पर पुनः विचार करे तो हमें ज्ञात होता है कि विश्व के उन सभी महान देशों में समूहगान का अधिक प्रचलन रहा है। जिनका विकास प्राचीन काल से ही होता हुआ रहा है। प्राचीन काल में समूहगान वैदिक मंत्रो के सामूहिक उच्चारण के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान था और वर्तमान में देशभक्ति, वन्दनाएँ, मार्चिंग सांग, राष्ट्रीय गीतों के रूप में हमारे समक्षहै और इस तरह समूहगान का हमारे दैनिक जीवन में विशेष भूमिका सदा से ही रही है।

1) आकाशवाणी के द्वारा लोकप्रियता

आकाशवाणी संगीत जगत में किसी भी वरदान से कम नहीं है। और वर्तमान में समूहगान को लोकप्रिय बनाने में जो महत्वपूर्ण भूमिका आकाशवाणी निभा रही है उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता है। आज समूहगान के प्रचार के लिए समय–समय पर कई जनकल्याणकारी योजना बनाई जा रही है और इन नवीन–योजनाओं के प्रति लोगों को जागरूक करने के लिए आकाशवाणी अपना संपूर्ण सहयोग दे रही है। आज सरकार द्वारा चलाई जा रही जनकल्याणकारी योजना में सम्मिलत स्वच्छ भारत मिशन, मृदा बैंक, नारी सम्मान, किसान योजनाओं पर कई समूहगान बनाकर आकाशवाणी आम–लोगों को जागरूक कर रही है और साथ ही एकता के मंत्र को भी स्थपित कर रही है जो छवि समूहगान की धूमल पड़ गई थी आज नवीन–प्रणालियों के माध्यम से आकाशवाणी ने जन–समुदाय में एक बार फिर से समूहगान के माध्यम से अपनी नई पहचान लेकर उमड़ा है।

2) दूरदर्शन के द्वारालोकप्रियता

वर्तमान समय में दूरदर्शन मनोरंजन का एक ऐसा लोकप्रिय माध्यम बन चुका है जो अपने प्रातः कालीन से लेकर दोपहर एवं सायंकालीन प्रसारणों द्वारा घर–2 तक अपनी शिक्षा, ज्ञान, विज्ञान, परिवारिक मनोंरजनात्मक से पूर्ण कई कार्यक्रमों को पहुँचा रहा है। और समूहगान को एक संशक्त मंच प्रदान करके दूरदर्शन ने एक महत्वपूर्ण भूमिका को निभाया है। समूहगान में मंच पर बैठने या खडे होने का तरीका वाद्यवृन्द का बैठने का तरीका और अनुशासन के बारे के साक्षात दर्शन सर्वप्रथम हमें दूरदर्शन पर ही हुए है। ''मिले सुर मेरा तुम्हारा जैसे गीतों पर आधारित कार्यक्रम वखूबी प्रसारित किए गए और ऐसे ही कितने कार्यक्रम वर्तमान समय में, भी प्रसारित किए जा रहे हैं।'' और जब यह कार्यक्रम दृश्य और श्रवण के रूप में दूरदर्शन में प्रस्तुत किए गए तो सबके मन में एक अलग ही छाप छोड़ गया। यह एक प्रकार का नवीन प्रयोग था जिसमें एक ही गीत को अलग–2 भाषाओं में गाया गया फिर उसे समूह के रूप में गाया गया और साथ ही भारत की संस्कृति विविधता, प्राकृतिक सौन्दर्य के दर्शन करवाएं गए वर्तमान में भी श्री प्रमोद मेहता जी के नेतृत्व में दूरदर्शन के दारा समूहगान को काफी बढ़ावा मिल रहा है। आज प्रधानमंत्री जनकल्याणकारी योजनाओं का लाभ हर नागरिक को मिले इसके चलते इन्होंने कई समूहगानों को दूरदर्शन पर चित्र एवं दृश्य, श्रवण के रूप में प्रस्तुत किए है। वर्तमान में ''हम कामयाब है हम कामयाब रहेगें'' इस समूहगान में भारत की बढ़ती शक्ति एवं

पहचान से लोगों को दूरदर्शन द्वारा ही जागरूक किया गया है। इसके साथ ही दूरदर्शन ने समय के साथ संगीत के पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को उपलब्ध करवाए है। ''राष्ट्रीय एकता राष्ट्रीय अखण्डता, सद्भावना, राष्ट्रीय उत्थान एवं जनकल्याण पर आधारित सन्देश लोकसेवा संचार परिषद् द्वारा समय–2 पर दूरदर्शन के माध्यम से लोगों के बीच प्रसारित किए जाते है। इन कायक्रमों में बजे सरगम हर तरफ से इत्यादि प्रमुख है। जिसमें विभिन्न कलाकारों ने संगीत के माध्यम से राष्ट्रीय एकता एवं पारम्परिक सौन्दर्य की प्रबलता प्रदान करने का सन्देश दिया है।'' इस तरह हम देखते हैं कि दूरदर्शन ने समूहगान की लोकप्रियता को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और वर्तमान में भी दे रहा है।

3) चलचित्रों के द्वारालोकप्रियता

चलचित्रों के द्वारा भी समूहगान का विकास अधिक हुआ है। क्योंकि आज भी जब फिल्म का प्रकाशन होता है तब उसमें कोरस एवं कब्बाली के रूप में समूहगान अधिक प्रयुक्त होता है और जब पर्दें पर फिल्म दिखाई जाती है जो उसमें गायक एवं वादकों का संगीत समूह के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और फिल्मों ने देशभक्ति के गीतों से भी भारत के नागरिक को देश–प्रेम के प्रति जागरूक किया है और वर्तमान के समय में भी कई संगीत के मिश्रण से समूहगानों को प्रस्तुत किया जाता रहा है फिर चाहे वह लोकसंगीत के रूप में हो या पाश्चात्य संगीत के रूप में हो देखा जाए तो यह सभी कारण कहीं न कहीं समूहगान को बढ़ावा दे रहे हैं क्योंकि फिल्मों द्वारा जन–समुदाय के मन में गहरा प्रभाव पड़ता है और यह सभी कारण कहीं न कहीं समूहगान के प्रति लोगों की रूचि को बढ़ावा देते हैं।

4) शिक्षण संस्थाओं के द्वारा लोकप्रियता

आज शास्त्रीय संगीत की शिक्षा के साथ–साथ सामूहिक संगीत शिक्षण की भी अत्यन्त आवश्यकता है और अगर यदि ध्रुपद, धमार तथा तराना जैसी विधाओं को हम सामूहिक रूप में विद्यार्थियों से गवाएं तो शास्त्रीय संगीत में तो बढ़ोतरी होगी परन्तु समूहगान के प्रति भी विद्यार्थियों की जागरूकता बढ़ेगी आज कई निजि संस्थाएं भी इस दिशा में कई प्रयास कर रही है जिनके नाम इस प्रकार है गन्धर्व वृन्द दिल्ली, श्रुति अहमदाबाद, मधुकली वृन्द भोपाल, विजय भारतीय वृन्द जालन्धर इत्यादि। इन समूहगानों के समर्पित शिक्षण संस्थाओं ने विशेष प्रयास किए हैं और वर्तमान में भी कर रही है। इसके साथ ही विश्वविद्यालयों एवं स्कूलों, महाविद्यालयों के द्वारा किए गए प्रयास भी काफी हद तक प्रशंसनीय रहे हैं और इनके यह कार्यक्रम हमें महाविद्यालयन स्तर तथा विश्वविद्यालय स्तर यहां तक अर्न्तविश्वविद्यालयीन स्तर में देखने को मिलते हैं और इन सब कार्यों की प्रतियोगिताओं के लिए भारत विकास परिषद् के द्वारा युवा महोत्सव का आयोजन किया जाता है। देखा जाए तो कहीं न कहीं यह युवा महोत्सव समूहगान को बढ़ावा देने तथा उसके उत्थान में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं आज के समय में देश के समस्त भाषाओं पर आधारित समूहगान की रचना पूरे देश–भर में आयोजित कार्यक्रम में दिखाई जा रही हैं जिससे समूहगान से विद्यार्थी वर्ग काफी जागरूक हो रहा है और इन सब से समूहगान को बढ़ावा मिल रहा है।

5) संगीत नाट्क अकादमी के द्वारा लोकप्रियता

वर्तमान में देखा जाए तो संगीत नाट्क अकादमी के द्वारा भी समूहगान का काफी प्रचार हो रहा है। क्योंकि यह एक ऐसा केन्द्र हैं। जिसने समय–समय पर संगीत के द्वारा लोगों में जागृति को उत्पन्न किया है। क्योंकि यह एक ऐसी अकादमी हैं जिसका निर्माण संगीतकला के विकास एवं नृत्य, नाट्क कलाओं से सम्बन्धित कलाकारों की कला को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से किया गया था और हम आज वर्तमान में देखें तो संगीत, नृत्य एवं नाट्क के विकास के द्वारा तथा देश की सांस्कृतिक एकता को बल प्रदान करने हेतु तथा भारत की परम्पराओं एवं संस्कृतियों को मध्य नज़र रखते हुए इस अकादमी ने कई योज़नाएं एवं कार्यक्रम चलाए हैं जिससे की देश की सांस्कृतिक एकता को बल मिला हैं इस अकादमी ने आज पुरे भारत में प्रतिष्ठित कलाकारों को एक मंच प्रदान कर उनकी कला को विकसित करने में पूर्ण सहयोग दिया है छात्रवृतियों के द्वारा प्रशिक्षण एवं कार्यक्रमो को चलाना तथा जनसाधारण तक संगीत को पहुंचाना और लोगों में जागरूकता को बढ़ाना इस अकादमी का प्रमुख उद्देश्य रहा हैं इस अकादमी ने देश के कई क्षेत्रों में लोकसंगीत एवं नृत्यों तथा नाट्कों के साथ सामुदायिक संगीत को भी बढ़ावा दिया हैं इसके साथ ही प्रादेशिक भाषाओं के द्वारा संगीत नाटक केन्द्रों को भी सहयोग दिया है और उनके श्रेष्ठ प्रस्तुति के लिए पुरस्कार भी प्रदान किया है अतः हम कर सकते है कि कहीं न कहीं यह अकादमी भी समूहगान कीलोकप्रियता को बढ़वा देने में सफल रही है ओर वर्तमान में भी कार्य के प्रति कार्यरत है।

6) वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारालोकप्रियता

वर्तमान में वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा समूहगान विधा के प्रचार तथा प्रसार में विशेष उन्नति हुई हैं। आज कोई भी विधार्थी किसी भी समूहगान को सुन सकता है और उसे बार–बार सुनकर शिक्षा ग्रहण कर सकता है। आज रेड़ियो, टी.वी. सी.डी. तथा टेपरिकॉर्डर आदि संचार माध्यमों में कम्प्यूटर, मोबाईल, मेमोरीकार्ड, पेनड्राईव, डी.वी.डी. इन्टरनेट इत्यादि के इस्तेमाल से समूहगान शैली में अपनी एक प्रभावशाली भूमिका का इस्तेमाल हो रहा है। इसके साथ समूहगान शैली को विश्वव्यापी बनाने हेतु भी इन्टरनेट के माध्यम से वीड़ियों कान्फ्रेसिंग ऑनलाईन तकनीक तथा म्यूजिक बेवसाईट आदि का आगमन भी आज समूहगान शैली में हो चुका हैं

क्योंकि वर्तमान समय में कम्प्यूटर का इस्तेमाल गीत–संगीत, रीमिक्स, नृत्य आदि के सम्पादन से लेकर फिल्मी संगीत इत्यादि में हो रहा हैं क्योंकि कम्प्यूटर की सहायता से आज ऑड़ियों वीड़ियों सम्पादन, रचना एवं संगीत मिंक्सिग को बहुत ही सरल बना दिया हैं। इन उपकरणों के माध्यम से हम भारत के कोने–कोने से भारत की अन्य भाषाओं एवं संस्कृति तथा देशभक्ति से जुड़े हुए समूहगानों से अवगत हो सकते हैं और हो भी रहे है क्योंकि आज इन्टरनेट के द्वारा समूहगान संगीत शिक्षण का प्रचार–प्रसार विश्व स्तर तक हो रहा है।

7 गीत एवं नाटक विभाग के द्वारा लोकप्रियता

वर्तमान में नुक्कड़ नाटकों के प्रचलन से भी समूहगानों का विस्तृत प्रयोग हो रहा हैं क्योंकि यह एक ऐसी विधा हैं जो गाँव–गाँव जाकर लोगों को आने वाली समस्याओं से अवगत करवाती हैं। ताकि हमारे समाज का प्रत्येक वर्ग इन योजनाओं एवं बढ़ती समस्याओं से अवगत हो सके और एक खुशहाल जीवन जी सके इन सभी योजनाओं को आज हमारी सरकार द्वारा समूहगान के माध्यम से ही नाटक मण्डली के कलाकारों से लोगों के अन्दर जागृति लाई जा रही हैं। फिर चाहे यह स्वास्थय से जुड़ी हुई कोई समस्या हो या फिर कोई भी जनकल्याण कारी योजना हो जिससे कि लोगों को बताया जा सके और वह इन कल्याणकारी योजनाओं का भरपूर फायदा उठा सके। इस तरह देखा जाए तो वर्तमान में समूहगान इन योजनाओं के लिए हमारे समाज में एक बहुत ही बड़ी कड़ी का काम कर रहा हैं क्योंकि संगीत में एक अद्भूत शक्ति होती है। जो सबको अपनी तरफ आकर्षित कर सकती है और आज इसी संगीत की शक्ति में समूहगान एक वरदान बनकर प्रकट हुआ है।

8) विज्ञापनों के द्वारा जागरूकता

''वर्षों से ही विज्ञापनों ने समाज में अपना आधिपत्य जमाया हुआ है और वर्तमान समाज में भी यह अपना एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना चुके है। देखा जाए तो यहां विज्ञापन के माध्यम से उत्पादन में बिक्री होती है। तो वहीं दूसरी तरफ समाज कई प्रकार की सूचनाओं से भी रूबरू होता है।'' यह विज्ञापन समाज में उपलब्ध किसी भी विषय की सूचना देकर सामाजिकों की सहायता करता हैं और वही दूसरी और लोगों को अपनी और आकर्षित करने में भी सक्षम रहता है अक्सर हम देखते है व्यावसायिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृति के रूप में विज्ञापन कई वर्गों में तैयार किए जाते है। आज फिर चाहे कोई कार्यक्रम हो वह संगीत से जुड़ा हुआ हो या फिर समाचार हो, अथवा परिक्षाएं एंव रेडियो, टेलीविजिन, इटरनेट या कोई भी बाहरी स्थल इन सभी स्थानों पर विज्ञापन ही दिखाई देते हैं। इन विज्ञापनों की सहायता से आज हम समूहगानों में भाग लेने वाले विधार्थियों को देख पाते हैं और उनके बारे में पढ़ पाते हैं।

''आज इसका क्षेत्र बहुत ही व्यापक हो गया है। विज्ञापन कई रूपों में दिये जाते हैं। कुछ विज्ञापन ऐसे होते हैं जो जनकल्याण के उद्देश्य से बनाए जाते हैं और कुछ तुलनात्मक दृष्टि से बनाए गए विज्ञापन होते हैं। नगर निगम, नगरमहापालिका, नागरिक संस्थाओं द्वारा सार्वजनिक कल्याण के लिए समयानुसार जनकल्याण सम्बन्धी विज्ञापनों का प्रसारण, प्रकाशन एवं प्रदर्शन होता है। इसमें कुछ प्रत्यक्ष और कुछ अप्रत्यक्ष विज्ञापन होते हैं औद्योगिक संस्थाओं एवं समूहों द्वारा आवश्यकतानुसार तुलनात्मक दृष्टि से अपने उपभोक्ताओं को अन्य उत्पादन की तुलना में उतम या समकक्ष बताकर उपयोग करने को प्रेरित करने वाले विज्ञापन तुलनात्मक विज्ञापन कहे जाते हैं।''[2]

जिससे कि हम यह जान सकते हैं कि वर्तमान में समूहगान के प्रति बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए आज कैसे स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय एवं आकाशवाणी, दूरदर्शन, फिल्में यहां संगीत नाटक अकादमी तक नुक्कड़ नाटक विशेष योगदान दे रहे है। हमारे समाज में जागृति लाने के लिए और सब में एकता एवं प्रेम की भावना को स्थापित करने के लिए सभी समय–समय पर अपना कार्य कर रहे हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते है कि बदलते दौर में समूहगान ने सांस्कृतिक मूल्यों को माध्यम बनाकर एकता एवं अनुशासन की भावना को नई–पीढ़ी के मध्य में एक अच्छी एवं गतिमान राह बनाने में अपना पूर्ण सहयोग दिया हैं और वर्तमान में भी दे रहा है।

पाद टिप्पणियां

1) अशोक कुमार, संगीत संवाद, पृ. 315
2) एन.सी. पंत, मनीषा द्विवेदी, पत्रकारिता एवं जनसंचार, पृ. 231
3) विजय शर्मा, जनसंचार माध्यम एवं पत्रकारिता, पृ. 193
4) www.google.com

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुमार अशोक, संगीत संवाद पृ. 315 कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली 110002,
2. शर्मा विजय, जनसंचार माध्यम एवं पत्रकारिता, पृ. 193

मोनिका ड़डवाल
विद्यावाचस्पति शोधछात्रा
संगीत विभाग हि.प्र.वि.वि.
समरहिल शिमला–5

7

अंतहीन का अंतहीन मानवतावादी दृष्टिकोण

डॉ0 सुधांशु कुमार शुक्ला

सारांश –

डॉ0 रमेश पोखरियाल निशंक जी के कहानी संग्रह अंतहीन को12 अविस्मरणीय कहानियों का दस्तावेज कहना ठीक है, इससे भी अधिक यदि यह कहा जाए कि यह कहानी संग्रह सांस्कृतिक–बोध और मानवीय–रिश्तों की अद्भुत गाथा है, तो अधिक सटीक होगा।कहानीकार का कवि मन कहानी के साथ–साथ भाषाई–सौंदर्यबोध, उत्तराखंड के सुरम्य प्राकृतिक सुषमा को चित्रित करता चला जाता है। यही कारण है कि वाह! जिंदगी कहानी संग्रह पर चर्चा होने के तुरंत बाद बेचौन कंडियाल जी के द्वारा उपलब्ध कराई गई। इस कहानी संग्रह पर छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक धरा पर डॉ. विनय पाठक और श्री बी. एल. गौड़ जैसे संतों के समक्ष साहित्य की मंदाकिनी की कल–कल ध्वनि की गूँज न केवल छत्तीसगढ़ के विश्वविद्यालयों मेंगूँजी अपितु इसका नाद सौंदर्य भारत की सीमा को बेधता हुआ, विदेशी विश्वविद्यालयों को भी आनंदित कर गया। यहाँ रमेश पोखरियाल जी की ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं–

देख निर्धन को सबने हैं, कुचला जहाँ
ढोंग का बन गया है, व्यक्ति पुतला वहाँ
आज मानवता पहचान, खोती है।
क्यों न मानवता की, बात होती है।

अधिकांश साहित्यकारों ने तो विमर्शोंकी चर्चा–परिचर्चा के माध्यम से जीवन के खंडित रूप पर चर्चा करके अपनी विद्वता को लोगों के समक्ष रखा, अनूठीशैली में चित्रित किया। ऐसे समय में जीवन को समग्रता के साथ देखते हुए, जीवन की कला सिखाते हुए, सहज भाव से स्वयं को अर्थात् पाठक को आईना दिखा कर मुस्कुराते हुए चलते ही जाने का नाम रमेश पोखरियाल है। कहीं कोई भी कहानी उपदेशक जैसी नहीं लगती है, शिक्षा के वास्तविक अर्थ, साहित्य के वास्तविक अर्थ को उद्‌घाटित करती हुई स्वयं की कहानी लगती है।अंतहीन नामकरण की सार्थकता को सिद्ध करती हुई ये कहानियाँ पाठक मन को सोचने समझने को प्रेरित करती हुई, अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए बाध्य करती हैं। यही कारण है कि इनकी कहानियाँ और इनके पात्र देशकाल की सीमाओं से परे सार्वभौमिक, सार्वदेशीय बन जाते हैं। साधारणीकरण की यह प्रक्रिया सुखद अनुभूति देती है।

अतीत की परछाइयाँ कहानी मात्र माता–पिता से बिछुड़े सरजू की कहानी नहीं है, अपितु यह कहानी भागीरथी और रामरथ के एकमात्र पुत्र को विदेशी दंपत्ति को बेचे जाने की दर्द भरी कहानी है। कहानीकार ने जहाँ उत्तराखंड के पौड़ी गढ़वाल में भटकते लालची लोगों द्वारा बच्चों को उठाकर विदेशियों को बेचने की समस्या को चित्रित किया है। वहीं अपने बेटे की याद में जीवन काटने पर अचानक नीदरलैंड से आए विदेशियों के झुंड में एक बालक को देखकर हू–बहूअपने बेटे का चेहरा देखकर रामरथ व्याकुल हो उठता है।जब वह पूरी घटना पत्नी को बताता है तो वह भी व्याकुल हो उठती है।युवकों का दलवापस लौटकर आयेगा,इस बात को ध्यान में रखकर भागीरथी का मातृहृदय विकल हो उठता है, माँ की ममता पुत्र से मिलने के लिए बेचौन हो उठती है, सुख के मारे अंतः चेतना जागृत हो जाती है, मृतप्राय में मानों एक बार फिर प्राण संचार हो गया हो ऐसा लगने लगता है।प्रातःसे शाम तक चाय की दुकान पर उससे मिलने की आशामें बैठती है।एकदिन आ जाने पर और पूछने पर किस देश से आए हो अपने बेटे को पहचानने–जानने पर भी अपनी ममता को दबाकर वह शब्दहीन हो जाती है। वह सोचती है कि अगर वह यहाँ होता तो चाय की दुकान पर ही बैठता। उसका बेटा जिंदा है, खुश है यही भागीरथी और रामरथ की खुशी, महिमा है।श्जीवन एक बार फिर पुराने ढर्रे पर चल निकला। लेकिन एक अंतर भागीरथी के जीवन में जरूर आ गया था, अब वह रोज पति के साथ चाय की दुकान पर बैठने लगी। आखिर उसका बेटा फिर आने की जो कह गया।श(पृष्ठ–12) भागीरथी और रामरथ नाम के पात्र उस मर्मस्पर्शीममत्व की कुर्बानी की याद दिलाते हैं, जिन्होंने मानवता के हित में ही काम किया। भागीरथी और रामरथ भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं। भागीरथी गंगा की पावनता को धारण किए हुए बच्चे के लिए अपना सर्वस्व कुर्बान करने के लिए तैयार है। रामरथ भी पिता के पितृत्व कोधारण किए हुए है। यह कहानी डॉ. रामकुमार वर्मा की एकांकी श्प्रतिशोधश की याद दिलाती है। संसार में माँ की ममता को नापने वाला थर्मामीटर ही नहीं बना है। यह कहानी श्री बी.एल.गौड़ की कहानी श्प्रतिशोधश की भी याद दिलाती है। जहाँ माँ अपने राष्ट्र अपने स्वाभिमान के लिए बलात्कारी अमेरिकन सैनिक से जन्मे पुत्र को ठंडे पानी में डुबोकर मार डालती है।

अनजान रिश्ता कहानी वास्तव में ससुर–बहू के अनोखे रिश्ते की दास्तान है। मेरे जीवन की यह बेमिसाल कहानी है, जहाँ बहू सुलक्षणा दीनानाथ के बेटे से शादी करना चाहती थी, शादी सेठीक पहले ही अनुपम की मृत्यु हो जाने पर अनुपम के पिता

दीनानाथ को अपने पिता के रूप में मानकर, अपनी पूरी जिंदगी उनकी सेवा में लगा देती है। यह मानवता की एक अद्भुत मिसाल है। रमेश जी को सुविख्यात साहित्यकार भी बनाती है। यह कहानी कई सारी बातें एक साथ पाठक के मन–मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोड़ती है।इस घोर कलयुग में ऐसा भी होता है क्या? जहाँ लोग खून के रिश्तों को भी नहीं निभा पाते वहाँ दीनानाथ जी और सुलक्षणा ऐसे रिश्ते को निभा रहे थे, जो कभीबना ही नहीं। (पृष्ठ–20) यह कहानी अंतहीन चिंतन–मनन करने और स्वयं को देखने परखने को मजबूर करती है। जहाँबेटे और बहू वृद्धों को वृद्धाश्रम छोड़ रहे हैं, उनका बुढ़ापा नरक बना रहे हैं। स्त्री विमर्श, वृद्ध विमर्श से भी ऊपर भारतीय संस्कृति में मानवता की विशद्व्याख्या है, जो आज अत्यंत आवश्यक एवं प्रासंगिक है, उसे लाने का प्रयास, उसकी बेचौनी साहित्यकार के साहित्य और आचरण में दिखलाई पड़ती है।यह कहानी विकलांग व्हीलचेयर पर बैठे ससुर की सबलता को दर्शाती है। उनकी मानवतावादी दृष्टिकोण, उनकी दूरदर्शिता को दर्शाती है।सुलक्षणा की दृढ़ता और प्रतिबद्धता से डरे दीनानाथ अपनी बिन ब्याही पुत्र वधू को अपनी बेटी की तरह आगे पढ़ाकर प्रोफेसर की नौकरी तक पहुँचा देते हैं। यह अद्भुत कहानी समाज में रिश्तों की ताजगी, पवित्रता, कर्तव्यनिष्ठता, परायणता का संचार करती है। यह कहानी विकलांग विमर्श की अद्भुत कहानी भी कही जा सकती है। विकलांग की छठी इंद्रिय का प्रभाव और उनकी जिजीविषा को यह दर्शाती है।

संपत्ति कहानी में नालायक पुत्र की नालायकी और भू–माफिया की चालबाजी देखने को मिलती है।प्रॉपर्टी के लिए नकली वसीयतनामें, फर्जी प्रमाणपत्र लगाकर भी लोग संपत्ति हस्तांतरण को चले आते.... प्रॉपर्टी का तो चक्कर ही ऐसा है ये तो मुर्दे को भी कब्र से उठाकर खड़ा कर देता है और जिंदे को भी कब्र में गाड़ देता है।(पृष्ठ–21)कहानीकार अगर कहानी को यहीं तक दिखाता तो कहानी सामान्य बन कर रह जाती। कहानीकार का उद्देश्य तो पति–पत्नी के झगड़ों से पुत्र की बर्बादी का रास्ता दिखाना मात्र भी नहीं है।अपने पुत्र के लिए रिटायरमेंट के बाद भी जमा पूँजी लगा देने वाला प्रशांत संबंधों की एक नई पकड़, एक नई राह में बंधकर सुमंगला नामक नारी के नारीत्व और प्यार को भी दिखाना चाहता है। शायद विवाह के बंधन में ना बंधकर भी एक साथ रहने वाली सुमंगला को प्रशांत का बेटा घर से निकाल देता है। सुमंगला को ढूँढते हुए प्रॉपर्टी अधिकारी जब वृद्धाश्रम पहुँचते हैं, तब सुमंगला कहती है,श्वो प्रशांत का बेटा है और प्रशांत मेरे लिए सब कुछ था। जो कुछ प्रशांत ने मुझे दिया वह मेरे लिए अमृत के समान है। उसी अमृत के प्रभाव और उनके साथ बिताये समय के सहारे मैं अपना शेष जीवन गुजार लूँगी। प्रशांत की हर चीज मेरी अपनी है, इसलिए बेटा और बहू भी मेरे अपने हैं। अपनों को कुछ देकर बहुत संतोष मिलता है बेटा।श(पृष्ठ–33)संपत्ति प्रशांत के नाम हो गई।भारतीय समाज में नारीत्व की पराकाष्ठा को दर्शाती यह कहानी आज के समय में और भी अधिक उपयोगी लगती है। जैसा नाम वैसा गुण, सुमंगला अर्थात्सुमंगल की कामना धारण करने वाली सावित्री, सीता जैसी नारियों के देश को गौरवान्वित करती है। लगभग 11 साल से प्रशांत के साथ रहने वाली सुमंगला प्रशांत को ही नहीं उसके बेटे को भी अपना मानती है। अपनी जमा पूँजी भी प्रशांत के लिए अर्पित कर देती है। भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कृति के चितेरे कहानीकार के द्वारा ऐसे समय में ऐसी नारी पात्र की संकल्पना गढ़ कर समाज को दिशा देते नजर आते हैं। खून से भी बढ़कर ममता का, मानवता का संबंध होता है। साथ ही साथ माँ, माँ होती है। वह कभी भी कुमाता नहीं बन सकती, पुत्र कुपुत्र हो सकता है। कहानीकार ने यहीं तक दम नहीं लिया, वह तो इस कहानी के साथ–साथ सरकारी कार्यालयों में होने वाली बकरा हलाल की रस्म को भी दर्शातें हैं। संपत्ति ट्रांसफर होने वाले कार्य की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। साथ ही साथ कुछ ईमानदार लोगों के कारण दुनिया चल रही है, यह भी दिखता है। प्रॉपर्टी विभाग में महिला अधिकारी की सजगता, कहानी को ही आगे नहीं बढ़ाती है, वह उस संवेदना की मूर्ति है, जो गलत होते हुए को देखना पसंद नहीं करती है। उसकी संवेदना हकदार के पक्ष में है, यह बहुत बड़ी बात है। एक महिला अधिकारी का सच्ची हकदार को ढूँढना, उससे वृद्धाश्रम में जाकर मिलना, कर्तव्य बोध की पराकाष्ठा है।

बदल गई जिंदगीश्फ्यूँली नामक पात्र की कहानी है, जिसका पति बकरियाँ चराते–चराते स्वयं खाई में गिर कर मर गया। बदलते समय में भी हिम्मत न हारने वाली फ्यूँली पहाड़ों की मूसलाधार बारिश में गाँव के स्कूल में फँसे अपने छोटे बच्चों को भी खो देती है। सरकार द्वारा दिए गए पैसों को न लेकर उसने सरकार से कहा, मुझे पैसा नहीं चाहिए साब, बच्चों के स्कूल में नौकरी दे दो, मेरी दो वक्त की रोटी भी चल जायेगी और स्कूल के बच्चों में अपने बच्चों को ढूँढ लूँगी।(पेज–39)आया की नौकरी में दूसरों के बच्चों में खुश होकर वह अपनी खुशी ढूँढती है, उन्हें अपना समझती है।यह एक ऐसेनारी पात्र की कहानी है, जिसने अपना सब कुछ खोकर इस पूरे संसार को पा लिया था।त्रासदी से भरी कहानी में भी सकारात्मक सोच को दर्शाना साहित्यकार की दिव्य दृष्टि होती है। अपना सब कुछ खो जाने के उपरांत दूसरों के बच्चों में अपने बच्चों की झलक पाकर आनंदित होना नारी के देवी रूप को दर्शाता है।फ्यूँली दूसरों के बच्चे की जी जान से स्कूल में देखभाल करती है। कहानीकार ने फ्यूँली के माध्यम से कार्य की महत्ता, उसके कर्तव्य बोध से होती है, यह संदेश भी दिया है। साथ ही साथ जीवन के विषम दिनों में धैर्य रखना मानव का धर्म होना चाहिए। दिल को छू लेने वालीआया समुदाय का प्रतिनिधित्व यह कहानी करती है।

श्बच्चे तो भगवान का रुप होते हैं मैडम वह सबके होते हैं। (पृष्ठ–35)

गेहूँ के दानेश कहानी कालाहांडी की याद दिलाते उन निर्धन लोगों की दास्तां है, जो कूड़े करकट को बीन कर जीविका चलाते हैं। दूसरी ओर काला बाजारी के कारण सड़ा गेहूँ भी शराब की फैक्ट्रियों में बेचकर धन कमाया जाता है। यह कहानी एक विनायक की नहीं, उन युवकों की है, जो यह सब देखकर आग बबूला होते हैं, समाज जिन्हें पागल कहता है। उड़ीसा से पलायन करके आए मजदूर विनायक की ही यह कहानी नहीं है, यह कहानीगाँवों से पलायन करने वाले किसान, मजदूर के विमर्श को भी चित्रित करती है। गरीबी, भुखमरी के कारण कीड़े–मकोड़ों की तरह जिंदगी जीने वाले इंसानों की यह कहानी है। अंतहीन लालच, जमाखोरी का भयावह चित्र मस्तिष्क पर अपने आप ही उभर आता है।

पूँजीपतियों द्वारा जमाखोरी की स्थिति का चित्रण इस कहानी में देखने को मिलता है। समाज मूक बना हुआ केवल और केवल इसके बारे में सोचता है, यह अति निंदनीय है। कहानीकार ने बरसात के कारण उच्च मध्यम वर्ग और मजदूर वर्ग के घर की स्थिति का मर्म स्पर्शी चित्रण किया है।श्पानी बरस रहा है तो सब कुछ बंद है। ना दूध की सप्लाई न सब्जी की। उच्च और मध्यम वर्ग को तो इस बारिश से बहुत अधिक असर नहीं हुआ। इतना जरूर हुआ कि चारदिन से वही आलू, प्याज और दालें खाकर वह ऊब जरूर गए थे। लेकिन एक ऐसा तबका भी था, जो रोज कुआँ खोदकर पानी पीता और येवे लोग थे जो दिहाड़ी मजदूरी कर रोज कमाई करते और उसी से इनका चूल्हा जलता। लेकिन इस बारिश ने तो इन झुग्गियों को पूरी तरह तबाह कर दिया था। जगह–जगह इन झुग्गियों से बिखरा हुआ सामान तैर रहा था।(पृष्ठ–40)

कैसे संबंध लिव इन रिलेशनशिप पर केंद्रित कहानी है।कहानीकार की दृष्टि पाश्चात्य संस्कृति के भारत में पसरते पाँवों की ओर भी है। किस प्रकार इस संस्कृति ने स्वतंत्रता की आड़ में विकृति फैला दी है। हमारे महानगरों में युवा इसमें फँसते जा रहे हैं अर्थात् इससे प्रभावित भी हो रहे हैं। माता–पिता के लिए ऐसे रिश्ते गले की फाँस या हड्डी बन गए हैं। यही कारण है कि पलक की माँ स्वप्ना को यह सब अच्छा नहीं लगता है।श्बेटा इसे कोर्ट ने मान्यता दी है पर क्या समाज ने भी मान्यता दी है इसे।कोर्ट चाहें कुछ भी कहे, आखिर रहना तो इसी समाज में है ना। क्या करेंगे उस कानूनी मान्यता का जिसे समाज नहीं मानता?..... कानून में न्याय मिल सकता है, प्यार और अपनापन नहीं।कानून जबरन यह नहीं कह सकता कि माँ–बाप बच्चे को प्यार करें या बच्चे माँ–बाप की भावनाओं का ध्यान रखें।(पृष्ठ–50)

पिछले कई वर्षों से सिद्धार्थ के साथ रह रही बेंगलुरु में पलक डिप्रेशन में आकर नींद की गोलियाँ खा लेती है। कारण सिद्धार्थ ने दूसरी जगह शादी तय कर ली। अब वह केवल दोस्त बन कर रह सकता है। पलक के नॉर्मल होने पर स्वप्ना उसके लिए एक रिश्ता ढूँढती है। सिद्धार्थ को जब पलक देखती है कि वह दूसरी शादी के लिए आया है, उसकी पत्नी मर गई है। वहाँसे पलक उठ कर चली जाती है।श्सिद्धार्थ को उसके द्वार पर एक बार फिर भेज कर ईश्वर ने उसके साथ न्याय किया है। ईश्वर की सत्ता पर विश्वास होता दिखा उसे, अब ना बोलने की बारी पलक की थी।(पृष्ठ–56)

कहानीकार की दृष्टि में या फिर भारतीय संस्कृति में नारी–पुरुष के संबंध का मतलब उसके लिए पिता–पति या भाई का संबंध है। मित्रता के नाम पर, दोस्ती के नाम पर, मौज मस्ती के नाम पर लिव इन रिलेशनशिप की व्याख्या नारी का अधिकांश रूप से शोषण ही है। जिम्मेदारी ना उठाने का प्रतिफल भोगना पड़ता है, जिसे युवा भोग भी रहा है। भारतीय संस्कृति में विवाह दो व्यक्तियों के बीच रिश्ते का ही नहीं, दो परिवारों का मेल है।यहाँपर पति–पत्नी की प्रतिबद्धता, लगाव, एक दूसरे के प्रति बना रहता है। दोनों अपनी–अपनी जिम्मेदारी समझते हैं। हमारे यहाँ मित्रता का बोध खजाने, औषधि के रूप में होता है,दोहन के लिए नहीं।

अंतहीन कहानी गरीबी, मजबूरी, लाचारी की विशद् गाथा है। ना जाने कितने वर्षों से दूसरों के घरों में काम करके जीविका चलाने वाली पावन महिलाओं के अथक परिश्रम और यातना का दस्तावेज है यह कहानी। गरीबी,मजबूरी की मार के साथ–साथ लुभायाराम जैसे पति पाकर झुमकी कीमाँ जैसी औरतों को शराब के नशे में मार–पीट की यातना भी झेलनी पड़ती है। इस वर्ग की विकट जिजीविषा और संघर्षरतनारी का प्रतिनिधित्व करती झुमकी को इस कहानी की नायिका या केंद्रित पात्र कहा जा सकता है। कीचड़ में कमल की तरह खिली झुमकी को घर की परिस्थिति के कारण विद्यालय देखने का मौका तक ना मिला।श्अपने चार भाई–बहनों में सबसे बड़ी झुमकी के कंधों पर अपने भाई बहनों की देखरेख का भार पड़ गया यूं तो झुमकी की उम्र अभी 15 वर्ष की ही थी लेकिन ईश्वर ने कद काठी कुछ ऐसी तराशी थी कि वह अपनी उम्र से दो–तीन वर्ष बड़ी ही लगती।(पृष्ठ–60)

लाला सुखराम गरीबों को ब्याज पर उधार पैसा देता और सामान भी उधार देता। जो केवल अपना स्वार्थ खोजता है। लालची प्रवृत्ति का यहइंसान झुमकी जैसी लड़कियों को आपना शिकार बनाता है। यह कहानी अनमेल विवाह, ऋण की समस्या, दहेज प्रथा, नारी शोषण, रिश्तों की अमानवीयता, कामुक पुरूष की लालसा को दर्शाती है। साथ ही साथ गरीब महिलाओं की जिजीविषा को भी दर्शाती है। यही अनमेल विवाह निर्मला उपन्यास

में देखने को मिलता है। वहाँ दहेज न दे पाने के कारण निर्मला की आहुति होती है। इस कहानी में झुमकी अपने माता–पिता का उधार चुकाती है। वह एक साधन के रूप में दिखलाई पड़ती है। झुमकी भी एक पात्र न रहकर मजबूरी का प्रतिनिधित्व करती है। झुमकी का बचपन, यौवन सब स्वाहा हो जाता है। लाला की ही बेटियों के साथ वह खेल नहीं सकती, केवल लाला की हवस और लाला के शंकालु स्वभाव के कारण पिटने का माध्यम मात्र रह जाती है। झुमकी के शरीर के प्रति लाला की दानवी भूख ने झुमकी का हर दृष्टिकोण से शोषण किया, दैहिक भी और मानसिक भी। झुमकी वारिस लाला को देती अवश्य है, उसके रोगी शरीर को देखकर लाला का प्रेम झुमकी के प्रति कपूर बनकर काफूर हो जाता है।लाला फिर से कर्जदार की तलाश में है जहाँ कोई बेटी हो और लाला बाप बेटी दोनों का उद्धार कर सके।(पृष्ठ–65)

कहानीकार ने सैकड़ों वर्षो से चली आ रही मजबूरी में किए गए विवाह को संस्कार न मानकर शोषण–यातना की जीती जागती फिल्म के रूप में चित्रित किया। इस कहानी को पढ़कर रोटी, कपड़ा और मकान फिल्म याद आती है। यह विवाह नहीं बल्कि शारीरिक शोषण किए जाने जैसी ही घटनाओं को दर्शाती है। यह अंतहीन कहानी है लाला के द्वारा सताए गए कर्जदार की कुर्बानी की, झुमकी का ललाईन की तेरहवीं पर अच्छा भोजन मिलेगा यह सोच कर जाना।श्झुमकी ने ऐसा स्वादिष्ट खाना पहले कभी नहीं खाया था, बड़े मनोयोग से यह रायते की पत्तल चाट रही थी।रायता तो खत्म हो ही चुका था, साथ ही पत्तल पर पड़े उसके निशान भी झुमकी के उदर में समा चुके थे। लेकिन उसका मन नहीं भरा, ललचाई हुई आँखों से वह लाला के कारिंदो की ओर देख रही थी।श(पृष्ठ–60)कुपोषण, आधा पेट भोजन, उदर पूर्ति की भीषण समस्या और फिर स्वादिष्ट भोजन और मीठे की ललक मंदिरों के, गुरुद्वारों के आगे मंगलवार या पर्व के समय पर, लंगर के समय पर देखी जा सकती है। तमाम लोगों के बीच झुमकी जैसे कितने ही पात्र बैठे नजर आयेगे। अकर्मण्य, नशाखोर, अमानवीय पिता अपने कर्ज के लिए अपनी बेटी की देह का भी सौदा कर देता है अर्थात् लाला के साथ झुमकी का विवाह होना। भरपेट भोजन ना पाने वाली बेटी अपने पिता का कर्जचुकाने का साधन बनती है। यह भयंकर शर्मनाक समस्याहै। अंतहीन कहानी में मानवीय रिश्तें तार–तार होते नजर आते हैं।

कतरा कतरा मौतश पलायन से जुड़ी कहानी है। एक तरफ गाँव से शहर की ओर भागते युवाओं का आकर्षण है, तो दूसरी ओर मंगसीरू की पत्नी कुंती का ग्रामीण जीवन के प्रति लगाव आकर्षण और संघर्ष है। पलायन का मर्मस्पर्शी चित्रण देखिए–पिछले कुछ वर्षों से जो पलायन का दौर आरंभ हुआ उसने पूरे गाँव को सूना कर दिया। अच्छे पैसे वालों के बच्चे जो एक बार पढ़ाई के बहाने शहर गए फिर गाँव ना लौटे। वृद्ध माता–पिता जब असहाय हो गए, तो वह भी बच्चों के साथ चले गए।(पृष्ठ–67) विवशता और लाचारी के कारण मजदूरों–कृषकों का पलायन उन्हें शहरी षड्यंत्र का शिकार बना लेता है। बड़ी कोठी पर मंगसीरू चौकीदारी की नौकरी करके खुश है। उसे नहीं पता किस प्रकार झुग्गियों की जवान बेटियों को उठाकर, फुसलाकर व्यभिचार भी होता है। पुलिस की जाँच पड़ताल में मालिक और नौकर दोनों पकड़े जाते हैं। मालिक तो धन के बल पर छूट जाता है और मंगसीरू को दोषी घोषित कर दिया जाता है। कुंती और उसके बच्चे तो अब घर से बाहर नहीं निकलना चाहते।जहाँ जाओ एक ही बात कुंती को सताती है, जैसे गुनाह उसके पति ने नहीं बल्कि स्वयं उसने किया है। ...निरपराध कुंती को किस बात की सजा मिल रही है। यह सोचने समझने को कोई तैयार नहीं है और कुंती है कि तिल–तिल मरने की सजा भुगत रही है।(पृष्ठ–75)यह कहानी पौराणिक पात्र कुंती की तरह संघर्षमयी और ताने–बानों से भरी जीवन जीती दिखलाई पड़ती है।

इसी प्रकार रामकली कहानी भी निरपराध भोली–भाली ग्रामीण महिला की कहानी है। जिसका पति सुमेरु एड्स की बीमारी से मर जाता है। अशिक्षित ग्रामीण रामकली का लोग बहिष्कार कर देते हैं। एड्स को छूत की बीमारी समझने के कारण रामकली का बहिष्कार उसकी जान ले लेता है। उसने भी कोई अपराध नहीं किया, परंतु समाज उसे दोषी मानकर सजा देता है।श्अरे बाहर करो इसे कोई। अपने पति का रोग लेकर घूम रही है। हाँ इतना ध्यान सबने रखना है कि कोई उसे छू ना पाए। रामकली का अनपढ़ होना इस समय उसके लिए वरदान बन गया। पढ़ पाती तो यहपीड़ा प्रसव पीड़ा से कहीं अधिक होती। जब पढ़े–लिखे ही इसे पढ़कर समझ ना पाये तो अनपढ़ रामकली की क्या समझ में आता।(पृष्ठ–113,114) कहानीकार ने बुद्धिजीवियों पर भी चोट की है। पढ़ना और पढ़ कर उसे जीवन में उतारना अलग अलग बात है।

दहलीज कहानी संबंधों की महत्ता को दर्शाती है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता क्षमा करना है। क्षमा करने से भूला–भटका घर आता है तो संबंध टूटते नहीं है। सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो उसका स्वागत करना यह कहानी सिखाती है। गरीब परिवार की अनुराधा के सौंदर्य और नृत्य से प्रभावित अनुकूल पिता से कहकर अनुराधा से शादी कर लेता है। अनुराधा कीजिद से वह घर से भी अलग हो जाता है। एक दुर्घटना में घायल हो जाने के कारण अनुकूल का व्यापार ठप्प होने लगता है, ऐसे समय में अनुराग के मित्र अभिषेक का आना और अनुराधा के साथ अधिक रहना, अनुराधा का घर, बच्चों और पति अनुकूल की ओर ध्यान न देना। अभिषेक के प्रति अंधा विश्वास रखकर धोखा खाना इत्यादि घटनाएँ अनुराधा को मायूस बना देती हैं। एक कटिबद्ध, सच्चा पति होने के कारण अनुकूल टूटी हुई अनुराधा को सहारा, अपनापन देकर फिर से जीवितकर देता है।यह कहानी एकल परिवार की त्रासदी और संयुक्त परिवार की विशेषताओं पर ध्यान आकर्षित करती

है।फिर जिंदा कैसे पहाड़ी नारी के संघर्षमयी जीवन की गाथा है यह कहानी।बिंदिया भोली भाली अल्हड़ पहाड़ी झरनों की तरह इठलाती खिलखिलाती पहाड़ी सेब की सी लालिमा धारण किए हुए पति सुनील के साथ टिहरी गढ़वाल में आशियाना बनाती है। पति की बढ़ती आमदनी, पैसों की चकाचौंध से देहरादून में रहकर दाम्पत्य जीवन जीने लगते हैं। बढ़ती आमदनी से पनपे शराब पार्टी के कारण सुनील ने बिंदिया को मित्रों के सामने गँवार, अनपढ़ कहकर जलील करना शुरू कर दिया। यातना से कराहतीबिंदिया एक दिन अपने जीवन को समाप्त कर लेती है।वह लड़का बताता है कि सुनील कभी–कभी चिल्लाता है कि उसने बिंदिया का खून कर दिया है। उसने मारा है उसे, हत्यारा है वह। पत्नी की असमय मौत ने उसे पागल कर दिया है। लेकिन यह तो सुनील जानता है या बिंदिया की आत्मा की कौन सी व्यथा ने सुनील को पागल किया है।(पृष्ठ–105)अपराध बोध से ग्रस्त सुनील की कहानी ही नहीं यह तो भारतीय नारी के समर्पण की कहानी है। ग्रामीण और शहरी संस्कृति को यह कहानी दर्शाती है। यह कहानी गलत तरीके से कमाए धन के प्रभाव को चित्रित करती है।

एक थी जूही की नायिका अपाहिज पिता, घरों में काम करने वाली माँ की बेटी जूही है। जूही भी झुमकी की तरह कीचड़ में खिले कमल की तरह सुगंधित और पावन है। शारीरिक सौंदर्य की स्वामिनी और उस पर सरस्वती की कृपा भी है। अपने भाई बहनों की देखरेख करने वाली जूही को निम्मो आंटी के यहाँ काम करने का मौका मिलता है। वहीं आगे बढ़ने के लिए सुमित के नौकरी दिलवाने, अंग्रेजी–हिंदी टाइप सिखाने के मकड़जाल में पड़कर उसका शारीरिक शोषण, उसके साथ सुमित व्यभिचार कर बैठता है। उसे इस कार्य में आने का निमंत्रण देकर वह पैसा कमाने का सबसे आसान और उत्तम साधन बताता है। कहानीकार की विशिष्टता यहीं स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। गरीबी मजबूरी है, लेकिन व्यभिचार द्वारा पैसा कमाना अपराध है,पाप है। यही कारण है कि जूही आने के बाद निम्मो आंटी को सब कुछ बता कर पुलिस की सहायता से सुमित को पकड़वा देती है।

आज के समय में जहाँ अपने शौक पूरा करने के लिए अच्छे घरों की लड़कियाँ इस देह व्यापार में नजर आती हैं। इसे कहानीकारअपसंस्कृति कहता है। साथ ही साथ धोखे में, मजबूरी में, लाचारी में किया गया कार्य पाप नहीं होता है। यह कहानी भोली–भाली लड़कियों के मर्दन की पीड़ा को बताती है। साथ ही साथ यह कहानी जीवन की जिजीविषा को भी दर्शाती है। कहानीकार ने दूसरों को धोखा ना मिले, उनको बचाना भी नागरिक का कर्तव्य बताया है, यह लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण ही है।
रमेश जी की कहानियाँ मानवतावादी सोच को दर्शाती है। कहानी की विशेषता का प्रथम गुण जिज्ञासा, निरंतरता होता है। जिज्ञासा के कारण नीरसता कहीं भी नहीं आती है। अंत भी कथानक की चरम सीमा पर होता है। पाठक चिंतन मनन करता है। इनकी कहानियों में चित्रात्मकता और सौंदर्यबोध का प्रभाव देखने को मिलता है। यह कहानीकार के कवि हृदय का प्रभाव कहा जा सकता है। चित्रात्मकता का एक उदाहरण देखिए, गुलाबी होंठ, काली और बड़ी–बड़ी आँखें, तीखी नाक, बचपन से ही वह गोल मटोल गुड़िया सी लगती थी।(पृष्ठ–115)

कहानियाँ पहाड़ी परिवेश के लोकतत्व को उजागर करती हैं। खासतौर पर पौड़ी गढ़वाल का परिवेश है। जहाँ उमड़ती नदियों का वेग, साँप की भाँति लहराती पहाड़ी सड़कें और ग्रामीण समाज में संतों का प्रभाव देखने को मिलता है। नारी को शोभायमान करने–मानने वाले कहानीकार ने अपनी संस्कृति का प्रमाण नारी पात्रों के नाम से व्यक्त किया है। यथा नाम तथा गुण वाले पात्र भागीरथी, सुमंगला, सुलक्षणा, सुरभि, झुमकी अनुराधा जूही आदि हैं। कहानीकार ने विवाह को संस्कार और लिवइन रिलेशनशिप को स्वच्छंदता और फन बताया है। कहानीकार युवाओं को बिन उपदेश के सहज, सरल भाषा में जीवन के प्रति आस्था, कर्म के प्रति लगाव और बुराइयों से बचना सिखाता है। इन कहानियों की श्रेष्ठता त्रासदी में भी सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ना है। समाज में हाशिए पर आए लोगों के जीवन की संघर्षमयी गाथा के साथ–साथ उनकी पावनता को चित्रित करना कहानीकार का उद्देश्य है। सहज सरल देशज शब्दों के साथ मुहावरों का प्रयोग चार चाँद लगा देता है जैसे– पत्थर होना, बदहवास स्त्री, कहर टूटना, आसमान की ओर ताकना, चील की मानंद झपटना, हृदय फटना, ऊँट के मुँह में जीरा, आसमान से आग बरसना, सब्जबाग दिखाना आदि।

निशंक जी की कहानियाँ काव्यशास्त्रीय दृष्टि से साधारणीकरण का निर्वाह करती है। संवेदना के भाव को उजागर करती हैं। इनके पात्र पाठक को अपने इर्द–गिर्द मिल जाएँगे। इनकी कहानियाँ पठनीय ही नहीं संग्रहणीय भी हैं। अमेरिकन साहित्यकार डेविड फ्राउले इनकी कहानियों को समस्त विश्व के पिछड़े वर्ग के संघर्ष की जीती जागती मिसाल कहते हैं। युगांडा के प्रधानमंत्री रूहकाना मानवीय संवेदनाओं की अतुलनीय मीसल कहते हैं। ये कहानियाँ लोगों को आईना दिखाने का काम करती हैं।अंतहीन की अंतहीन गूँज पाठक के मानसपटल पर अंकित होती है। विश्व साहित्यकारों की गरिमा को शोभायमान करती है। जो वास्तविकता के धरातल को साथ लेकर चल रही हैं। कहीं भी पाठक टूटता या ऊबता नहीं है। शब्दों की बयार, वाक्य संरचना, पाठक में नई ऊर्जा पैदा कर देती हैं।

डॉ0 सुधांशु कुमार शुक्ला
चेयर हिंदी,
आई.सी.सी.आर.
वार्सा यूनिवर्सिटी,
वार्सा पोलैंड
.48579125129
327, डी0डी0ए0 फ्लेट
जगदेव पार्क, ईष्ट पंजाबी बाग
नई दिल्ली–110026

आधुनिक हिंदी काव्य में महिलाओं द्वारा महिला सशक्तिकरण

डॉ0 राहुल कुमार

सारांश —

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रची गई कृतियों में स्त्री, सृष्टि का आधार है। इसके बिना संसार की सभी रचनाएं अपूर्ण तथा रंगहीन है। वह शक्ति भी है, सम्मान भी है, गौरव एवं अभिमान भी है। पृथ्वी जैसी सहनशीलता, सूर्य जैसी ओजता तथा सागर जैसी गंभीरता धारण किए स्त्री मृदुल होते हुए कठोर भी है। वैदिक काल में महिलाओं को काफी सम्मान दी जाती थी। साथ ही कोई भी धार्मिक कार्य नारी के वगैरह अकल्पनीय थी। ब्राह्मणों में भी वर्णित है कि नारी नर की आत्मा का आधा भाग है। नारी के बिना नर का जीवन अधूरा है। परंतु इतना होने के बाद भी इस आधुनिकयुगीन पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के प्रति पौरूष वाली अहम, वासनात्मक एवं संकीर्ण मानसिकता के कारण स्त्रियों की स्थिति काफी दयनीय हो गई है। पुरुषों की संकुचित मानसिकता के कारण वे घरों के अंदर विवश होकर रहने को बाध्य है, जिसके फलस्वरूप भागीदारी के हर क्षेत्र में उनकी सहभागिता सीमित है। परंतु जैसे–जैसे समय बदल रहा है, उनकी स्थिति में निरंतर सुधार हो रही है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में महिला कवयित्रियों ने अपनी कृतियों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण आंदोलन को धार दी है। उन्होंने स्त्री अंतरमन की कोमलता, ममता, माया, करूणा, वेदना, चित्कार, आत्मपीडन के साथ–साथ उनकी चेतना, अस्मिता, स्वाभिमान तथा अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध अपनी मुखर अभिव्यक्ति दी है। स्त्री विमर्श के द्वारा स्त्री को मानवीय यातनाएं, दुख एवं कष्टों से मुक्ति दिलाकर समाज में सम्मान एवं आदर्श दिलाना ही उनका एकमात्र उद्देश्य रहा है।

बीज शब्द :– अधिकार, सम्मान, सशक्त, दबे–कुचले, शोषित, पीड़ा, यथार्थ।

प्रस्तावना :– भारत में प्राचीन काल से ही नारियों को देवी के रूप में पूजा की जाती रही है। दुनिया में अधिकांश धर्म जब पैदा भी नहीं हुए थे तब हमारी नारियाँ धर्म, विज्ञान, अध्यात्म, राजनीति एवं युद्ध कौशल में अपनी बराबरी की सहभागिता निभाती थी। पुराण, उपनिषद, ब्राह्मण, संहिताओं में नारी को सर्वोच्च, गरिमामय एवं उच्च स्थान प्रदान है। वेदों में नारी को सामाज्ञी, विदुषी, वीरांगना, वीरप्रसवा, सरस्वती, सुख–समृद्धि लाने वाली एवं ज्ञान देने वाली के रूप में चित्रित किया गया है। अन्य ऋषिकाएं जैसे– अदिति, अपाला, अरुंधति, आत्रेयी, मैत्रेयी, सरस्वती, विद्योतमा, गार्गी, लोपामुद्रा आदि वेद मंत्रों की द्रष्टा रही है। वेदों में नारियों को समान शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार, वेदों को पढ़ने एवं सुनने का अधिकार, शासक चुने जाने का अधिकार, विवाह के लिए मनोनुकूल वर चुनने का अधिकार, पुत्रों की भांति पिता की संपत्ती में समान रूप से उत्तराधीकारीणी का अधिकार एवं युद्ध में सहभागिता का अधिकार था। वर्तमान के इस महिला सशक्तिकरण के दौर में जहां न्यायालय को हस्तक्षेप कर पिता की संपत्ती में पुत्री का अधिकार संबंधी फैसला देना पड रहा हैं, वही वैदिक समय में उन्हें यह अधिकार स्वतः प्राप्त था। स्त्रियों की दयनीय स्थिति मध्यकाल से आरंभ हुई। विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण एवं स्त्रियों के प्रति उनकी वासनात्मक एवं ललचाई नजर के कारण स्त्रियों की स्थिति काफी दयनीय हो गई। स्त्रियां घर के अंदर कैद होती चली गई जिसके कारण भागीदारी के हर क्षेत्र में उनकी उपस्थिति कम होती गई। परंतु रानी दुर्गावती, रानी लक्ष्मीबाई, चांद बीबी, रानी चेन्नम्मा, अहिल्याबाई, मीराबाई, मुक्ताबाई, जीजाबाई, अक्का महादेवी जैसी कई ऐसी कवयित्री, वीरांगना, विदुषी, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी, भी इस काल में हुई जिन्होंने अपनी प्रभावों से समाज के हर एक वर्ग को प्रभावित किया। स्त्रियों को लेकर जितनी भी कुप्रथाएं जन्मी है, वह इसी मध्यकाल की देन है। इसी समय के काव्यों में नारी को मुक्तिमार्ग का बाधक, विष का अंकुर, विष की बेलरी, [1] सर्पिणी, नर्क का द्वार, योग साधना में बाधक एवं पशु तुल्य जैसे कई उपमानों से अलंकृत करने का चित्रण आरम्भ हुआ। वर्तमान समय में सशस्त्र बलों में महिलाओं को स्थाई कमीशन देने और युद्ध क्षेत्रों में अग्रिम पंक्ति पर लड़ने का अधिकार देने की बात आज की जाती है, परंतु प्राचीन काल से लेकर अन्य कालों में भी कई ऐसी वीरवधूटियां हुई जिन्होंने अपने कौशल से दुश्मनों को पटखनी देते हुए वीरगति को प्राप्त हुई। एरावतेश्वर मंदिर में महान महिला सेना को समर्पित नक्काशियां बताती है कि भले ही दुनिया ने महिला सशक्तिकरण की बातें कुछ सालों पहले शुरू किया हो लेकिन हमारे देश में नारियां हजारों साल से सामाजिक उत्थान में भूमिका निभाती रही है और वर्तमान में तो अच्छे तरीकों से मुखर होकर हर क्षेत्र में निभा रही है। परंतु आबादी के अनुसार उनके हक, अधिकार एवं समाज में समानता अभी भी नहीं मिल पाई है। अभी भी वे उत्पीड़न एवं अत्याचार की दंश झेल रही है। आज भी उन्हें अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं है। इस पुरुष प्रधान समाज की सोच पर व्यंगय करते हुए रघुवीर सहाय अपनी कविता 'पढिए गीता' में नारी जीवन के यथार्थ एवं उसकी विवशता को इस प्रकार चित्रित करते हैं–

"पढ़िए गीता /बनीए सीता
फिर इन सब में लगा पलीता /किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर बार बसाईए
होय कँटीली, आंखें गीली
लकड़ी सीली /तबीयत ढीली
घर की सबसे बड़ी पतीली/ भरकर भात पकाईये" ।[2]

अंतिम दो दशकों में स्त्री विमर्श हिंदी काव्य साहित्य में सर्वाधिक लेखन का केंद्र बिंदु रहा है। सदियों से दबे कुचले एवं शोषित किए गए स्त्रियों की प्रताड़ना व्यथा को कई सारी कवयित्रीयों ने आधी आबादी के संघर्षमय जीवन को कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। हर एक स्त्री की इच्छा होती है कि वह उन्मुक्त एवं स्वच्छंद होकर हर एक काम को करें। उसके पैरों में किसी प्रकार की कोई बेड़ियां या बंदीशें नहीं हो। हेमलता यादव हर महिला के दिल में दबी इच्छाओं को अपने शब्दों में इस प्रकार बयां कर रही है–

"खून चूस पिशाचों की जाति/ तुम चमड़ी हमारी ही बजाते रहे
हडि्डयों के ढेर पर खड़े हो/ मूछों पर ताव दे इठलाते रहे
पृथ्वी के सकल संसाधनों पर/ अपना अधिकार जताते रहे
सुनो तुम्हारी अटठाहासों तले/ शिक्षा की गुनगुनाती हंसी
पपड़ाई होठों पर छा जाएगी/ काले अक्षरों की शक्ति
जंजीरों को पिघलाएगी/ स्वतंत्रता की नई फसल
धरती चीर लहराएगी/ क्षितिजों की मेढों तक
तम पीकर सरस्वती मुस्काएगी................
वक्त आ गया अब हम भी/ मन की तितलियां उड़ाएंगे ।" [3]

इनकी कविताओं में भोगे यथार्थ का आवेग, उमंग, उद्बोधन एवं तरंगित मन का उत्साह भर नहीं है बल्कि तत्कालीन विद्रूपताओं एवं युगीन यथार्थ का पीड़ा है और इस मानव निर्मित पीड़ाओं से दो–चार हाथ करने का चित्रण है। अब वे पर्दों के पीछे छिप छिपाकर रहने वाली स्त्रियां नहीं हैं। नारी शरीर, सहवास की इच्छा, देहवादी चिंतन आदि पर भी खुलकर बोलने की इच्छा रखने वाली आधुनिक भारत की नारी है। मुख्य धारा को अपनी उंगलियों पर नचाने का सामर्थय रखने एवं साहसिकता के कारण अन्य संकुचित महिलाओं को भी सशक्तिकरण की ओर पथ प्रदर्शन कर रही है। मनीषा कुलश्रेष्ठ की कविता 'संभोग' वर्तमान महिलाओं की निर्भीकता एवं साहसिकता को इस प्रकार दर्शा रही है –

"हे आदिम पुरुष !
अपनी सहचरी इस आदिम स्त्री की
एक जवाब दोगे?
भूख क्या सिर्फ तुम्हारी ही होती है?
क्यों भूल जाते हो तुम्हारी इस
भूख के समानांतर जगती
एक भूख उसकी भी होती है................
इक्कीसवीं सदी की/ यह औरत! हाड और मांस की नहीं रह जाती,
इस्पात में ढल जाती है,/ और समाज का सदियों पुराना
शोषण का इतिहास बदल डालती है/ रौंदती है उन्हें
जिनकी बपौती थी, इस खेल पर,
उन्हें लटटु सा हथेली पर घुमाती है /और जमीन पर चक्कर खाता छोड़
बंद होठों से तिरछा मुस्कुराती है।"[4]

शिक्षा ने महिलाओं को काफी सशक्त बनाया है। महिलाएं जहां शिक्षित हुई है, वहाँ सबसे तेज गति से सशक्तिकरण हुआ है। इससे महिलाओं को अपनी मनपसंद करियर चुनने, नए जगह पर जाकर नौकरी करने, लिव–इन–रिलेशनशीप में रहने, विवाह एवं मातृत्व के बारे में फैसले लेने का अधीकार प्राप्त हुआ है। शिक्षा ने स्वयं के अलावे अन्य चीजों पर भी सही निर्णय लेने या देने की जागरूकता उत्पन्न की है। अब उसे घर या कार्यस्थल पर पहले की भांति मानसिक प्रताड़ना का शिकार नहीं होना पड़ता। जागरूकता और पहले से ज्यादा संवैधानिक अधिकार प्राप्त होने के कारण अब वह स्वयं के फैसले पर विवाह, गर्भधारण करने एवं अनचाही संतान की सूरत में गर्भपात कराने आदि के अधिकार में भी सक्षम है। निर्मला पुतुल की कविता 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा' हर एक महिला के ख्वाबों को प्रतिबिंबित करती है–

उसी के संग ब्याहना/ जो कबूतर के जोड़े और पंडूक पक्षी की तरह रहे हरदम साथ/ घर बाहर खेतों में काम करने से लेकर रात सुख–दुख बांटने तक/ चुनना वर ऐसा जो बजाता हो बांसुरी सुरीली और ढोल–मांदर बजाने में हो पारंगत वसंत के दिनों में ला सके जो रोज/ मेरे जुड़े खातिर प्लाश के फूल जिससे खाया नहीं जाए/ मेरे भूखे रहने पर उसी से बयाहना मुझे"। [5] नारी को 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' जैसे उपमानों से अलंकृत करने वाला भारत की अक्षुणता इसकी सामाजिक संरचना हैं। इस संरचना के निर्माण का पहला आधार घर होता है, जिसकी देखभाल करने वाली गृहलक्ष्मी रूपी महिला होती है जो अपने हाव–भाव एवं व्यवहारों से घर को अच्छे बुरे हर समय सिंचती रहती हैं। परिवार के हर एक सदस्यों के सुख–दुख के आगे अपनी ख्वाहिशों एवं उम्मीदों को भी तिलांजलि दे देती हैं। शांति सुमन अपने नवगीत के माध्यम से नारी के द्वारा परिवार के प्रति किए गए समर्पण को इस प्रकार अभिव्यक्त करती है–

"गहना बनने वाले दिन में/ खेत खरीद लिए
बाबूजी के कहे हुए/ सब अपने संग लिए
सह न सकी जब/ खूंटी पर से गया बैल जोड़ा
इसीलिए अम्मा ने अपना गांव नहीं छोड़ा" । [6]

आधुनिक समाज की सशक्त नारियां चूड़ी –बिंदी और साज –श्रृंगार –पहनावा से मुक्ति का अधिकार नहीं मांगती बल्कि बेखौफ होकर

समानता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, अभिव्यक्ति का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार के साथ उन्मुक्त होकर जीवन जीने का अधिकार का मांग करती हैं। उन्हें भी इस समाज में उन्मुक्त होकर जीवन जीने की लालसा हैं। आज की महिलाएं काफी जागरूक हैं। हर एक समस्याओं पर खुलकर बोलने, सोचने एवं कर गुजरने के लिए भी उत्सुक हैं। अब वह चाहती हैं कि उनका अपना वजूद हो, उनकी अपनी पहचान हो और अपनी इस पहचान के लिए उन्हें किसी सहारे की जरूरत नहीं हैं। कामना सिह की 'नारी' कविता महिला सशक्तिकरण को इस प्रकार जागृत कर रही है–

"नारी पर लिखा उन्होंने एक काव्य
बिंब उनके / उपमान उनके / कागज उनका / कलम उनकी
इस में नारी का अपना क्या है?पता नहीं
नहीं जरूरत नारी को ऐसे पहचान की
कि जिससे वह अपनी पहचान भूल जाए
एक तन / एक मन / अपना एक वजूद लिए नारी
अपनी परिभाषाएं खुद गढ़ लेगी
अपना महाकाव्य वह खुद रच लेगी"।[7]

नारी की अवधारणा जहां अबला के रूप में आंचल में दूध और आंखों में पानी लिए त्याग की भावना एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित है, अब वह इन प्रतिमानों से ऊपर उठते हुए दस द्वार के पिंजडें को तोड़ कर खुले गगन में उड़ान भरने के लिए उन्मुक्त हैं। वह न केवल भारतीय धरा पर सफलता के झंडे गाड़ रही है बल्कि चांद–मंगल पर भी परचम लहरा रही हैं। देश के प्रति बलिदान होने की बात हो या आतंकवाद– नक्सलवाद की कमर तोड़ने की बात हो, नारीयां भी इसमें सहभागिता निभा रही है। सुभद्रा कुमारी चौहान की यह पंक्तियां केवल एक कविता नहीं, अपितु हर एक नारी के लिए उद्‌बोधन है। इसे उन्होंने असहयोग आंदोलन के समय उस वक्त रची जब महिला सशक्तिकरण का ऐसा अधिक प्रभाव नहीं था–

"सबल पुरुष यदि भीरू बने, तो हमको दे वरदान सखी
अबलाएँ उठ पड़े देश में, करें युद्ध घमासान सखी
पन्द्रह कोटी असहयोगनियाँ, दहला दे ब्रह्मांड सखी
भारत लक्ष्मी लौटाने को रच दे लंका कांड सखी"।[8]

वे अपने नवीन जोश, अदम्य उत्साह, वीरता और उत्कट राष्ट्र भावना से ओत–प्रोत होकर राष्ट्र पर सर्वस्व न्योछावर होने के लिए भी तैयार हैं। आज की महिलाएं पुराने जमाने से काफी आगे निकल गई हैं। इनकी सोच एवं कार्यशैली कुछ क्षेत्रों तक सीमित न रहकर विस्तृत होती जा रही हैं। पुरुष वर्चस्व वाले मीडिया क्षेत्र में आज से कुछ वर्ष पूर्व तक उँगलियों पर गिनी जाने वाली महिलाएं थीं लेकिन वर्तमान में स्थिति काफी भिन्न है। वर्तमान दौर में मीडिया के कई प्रारूप है जिसके माध्यम से स्त्री मुखर होकर अपनी अभिव्यक्ति को व्यक्त कर रही हैं। आज समाचार मीडिया, मनोरंजन मीडिया, विज्ञापन मीडिया, सोशल मीडिया, आदि कई ऐसे मंच है जहां स्त्री अपनी योग्यता, आत्मविश्वास और दक्षता की बदौलत नेतृत्व कर रही हैं। सोशल मीडिया के कई मंचों जैसे यूट्यूब, फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप आदि एवं टीवी के कई कार्यक्रमों पर वर्तमान कवयित्रियां अपनी कविताओं द्वारा महिलाओं की आवाज को उठा रही हैं। टीवी पर चलने वाले 'वाह –वाह क्या बात है, कवि गोष्ठी, कवि सम्मेलन आदि कार्यक्रम है, जिसमें कवयित्रियों ने अपनी कविता के माध्यम से नारी की आकांक्षा, स्वाभीमान, अभिरूचि, सपने, मनोभावों आदि को यथार्थ एवं प्रमाणीक रूप से व्यक्त कर महिला सशक्तिकरण की आवाज को प्रमुखता से बुलंद की हैं। महिला सशक्तिकरण में मीडिया की इन हिंदी कवयित्रियों के योगदानों को उपेक्षा या भुलाया नहीं जा सकता। कवि सम्मेलन कें मंच से उदबोधित कविता तिवारी की कुद्द पंक्तियां दृष्टव्य है, जो महिला सशक्तिकरण का पंथ कुछ इस प्रकार प्रशस्त कर रही है –

"जिम्मेदारियों का बोझ परिवार पे पड़ा तो / ऑटो, रिक्शा, ट्रेन को चलाने लगी बेटियां
साहस के साथ अंतरिक्ष को भेद डाला / युद्धक विमान भी उड़ाने लगी बेटिया और कितने उदाहरण ढूंढ कर लाउ / हर क्षेत्र शक्ति आजमाने लगी बेटियां वीर की शहादत पे अर्थी को कांधे देकर / अब शमशान तक जाने लगी बेटियां घर में बटाके हाथ / रहती है मां के साथ पिता की समस्त बाधा / हरती है बेटियां ....
प्रश्न यह ज्वलनशील सबके लिए है आज / नित्य प्रति कोख में क्यों मरती है बेटीयां?"[9]

निष्कर्षता–: आधुनिक स्त्री अपने जीवन से जुड़ी यातना और संघषों से आज भी पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो सकी है। उनके अंदर आज भी छटपटाहट एवं कसक है। आज नारी पूर्णत्व चाहती हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण उदय तभी संभव है जब नारी स्वच्छंद वातावरण में उन्मुक्त होकर जी रही हो। जिस प्रकार वैदिककालीन महिलाओं ने नारी एवं मातृशक्ति के स्वाभीमान और पुरुषत्व को जागृत करते हुए उसका कार्यान्वयन सही एवं सकारात्मक दिशा में कर हर क्षेत्र में अपना परचम लहराई, उसी प्रकार सात्विक आचार–विचार, संयम– संस्कार आदि से मजबूत होकर निर्भयता और स्वावलंबन के पथ पर चलकर ही महिला सशक्तिकरण आंदोलन को मजबूत किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. सुंदर ग्रंथावली– सुंदर दास, पृष्ठ–434, राधा पबलिकेशन, नई दिल्ली, संस्करण –1977
2. सीढियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृष्ठ संख्या– 149.
3. तितलिया– हेमलता यादव, आजकल, जनवरी– 2018, पृष्ठ –43.

4. संभोग कविता, मनिशा कुलश्रेश्ठ
5. उतनी दूर मत ब्याहना बाबा, नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ– 52
6. भीतर–भीतर आग, शांति सुमन, पृष्ठ– 89
7. आधी आबादी– सं. डॉ. संदीप श्रीराम पाइक राव, भूमिका– उषा यादव, पृष्ठ–22
8. विजयादशमी कविता, सुभद्रा कुमारी चौहान
9. #KaviSammelan नारी शक्ति को समर्पित कविता, कविता तिवारी के यूटयूब से

डॉ0 राहुल कुमार,
सहायक आचार्य,
हिंदी विभाग,
रामगढ़ महाविद्यालय,
रामगढ़ कैंट, झारखंड,
rahuljmt79038@gmail.com
मो, न.–7903891901

पृष्ठ.27 का शेष

निकालने नहीं जाती थी। तुम वहाँ इश्क लड़ाने जाती थी। अब समझा! नयी–नयी साड़ी और श्रृंगार का सामान कहाँ से आता था? मेरे पूछने से कहती, कभी मेरा भाई खरीद दिया है तो कभी महिला समिति के पैसा से...... सब यही रंडा भाई लोग खरीद दे रहे थे। तुमको उन्हें भाई कहते शरम नहीं आ रही थी। भाई–बहन का रिश्ता कितना पवित्र होता है। तुमने भाई के रिश्ता का कत्ल किया है.........। तुम्हें इश्क की बहुत गरमी है। अभी उतार देता हूँ रंडी!.....'' अरुण गाली–गलौज के साथ मार–पीट भी किया।

शायद अरुण के मारने–पीटने की सूचना उन लड़कों को दी। वे अगले दिन सूर्यास्त के समय दो बाइक में चार लड़के आ गये और सीधे घर के अंदर घुस कर बैठ गये। अरुण भी घर के अंदर था। बाहर रम्भा खड़ी आदमी पर नज़र गड़ायी है। उन लड़कों ने शायद अरुण के मुँह को कपड़ा से बंद करके गला दबाया हो या कुछ दवा मुँह में डाल दिया। लड़कों के जाने के आधे घंटे के बाद आवाज़ आने लगी, ''देखिए न! सागर के काका को क्या हो गया?क्या हुआ? क्या हुआ?.......'' जिसमें रम्भा रोती कम है, ज्यादा रोने का नाटक करती बोल रही है, ''देखिए न! सागर के काका को ....''

अठारह साल का सागर अपनी विधवा माँ के साथ पहुँचा। सागर का चार बरस हुआ था और पिता की अकाल मृत्यु हुई थी। आस–पास के आदमी आ गये। एक आदमी ने कहा, ''हो न हो अरुण को डायन ने खायी है। सागर के पिता भी खेत से घर आया था और अचानक मर गया। मेरे संपर्क में एक ओझा है। वह इस तरह की अकाल मृत्यु होने वाले अनेक आदमी को पुनः जीवित कर चुके हैं।''

''वह कहाँ का है?आप उससे बुलाकर ला सकते हो?'' सागर ने धीरे से कहा''हाँ! मैं अभी फोन से बुला देता हूँ।'' कहता फोन किया।

ओझा भोर पाँच बजे पहुँच गया। अरुण का हाथ पकड़कर कहा, ''यह तो मर चुका है। इनका जीव शरीर के किसी अंग में भी रहता, तब मैं देवी शक्ति से जीवित कर देता। डायन ने कलेजा को पानी कर दिया है..........।''

अरुण का बाल–बच्चा नहीं था। सागर ने काका की मुखाग्नि दी। सागर दस दिन काकी के घर ही नियम के अनुसार सोया। फिर अपने घर सोने जा रहा। तभी रम्भा रोती हुए सागर की माँ का पैर पड़ती, ''दीदी मुझे बहुत डर लगती है। कुछ दिन सागर बेटा को मेरे घर ही सोने बोल दो न! मैं बोल रही हूँ लेकिन नहीं मान रहे हैं।''

माँ की बात मानकर सागर काकी के घर ही सोने लगा। काकी रात को डर से चिल्लाती सागर को पकड़ लेती। एक–दो रात छोड़कर बराबर करती। फिर धीरे–धीरे गलत तरीके से सामने आने लगी। तभी सागर कहता, ''आप रात को ऐसी स्थिति में क्यों आ जाती हैं? आप मेरी काकी हैं। मैं ....।'' काकी की हरकत से तंग आकर

शेष पृष्ठ.45 पर

9

डॉ0 राधेशयाम शुक्ल के साहित्य में पारिवारिक सम्बन्धों का ताना–बाना

शारदा कुमारी

सारांश –

डॉ0 राधेश्याम शुक्ल हरियाणा के प्रमुख गीतकार एवं साहित्यकार है जिन्होंने अनेक भावपूर्ण, नवगीतों, गजलों तथा दोहों की रचना करके साहित्य–जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। शुक्ल जी ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित रचनाकार हैं तथा ग्राम्य परिवेश के प्रति इनका प्रेम एवं लगाव अतुलनीय है। इन्होंने अपने साहित्य में न केवल ग्राम्य संस्कृति, रीति–रिवाज, रागात्मक परम्पराओं, त्यौहारों एवं रहन–सहन का ही विस्तृत वर्णन किया है बल्कि भारतीय समाज की पारिवारिक परम्पराओं को आदर्श रूप में प्रस्तुत करते हुए पारिवारिक सम्बन्धों का ऐसा ताना–बाना बुना है जो वर्तमान में भी अत्यधिक प्रासंगिक है।

भारतीय संस्कृति में घर, परिवार एवं पारिवारिक रिश्तों का बहुत अधिक महत्व है जो विश्व की अन्य किसी संस्कृति में दुर्लभ है। एक संयुक्त परिवार जहाँ घर के सभी सदस्य एक दूसरे को समझते हों तथा एक–दूसरे की भावनाओं को महत्व देते हों, वह घर 'मन्दिर' की प्रतिष्ठा पाने योग्य है। वहाँ बच्चे आस्था और विश्वास के प्रतीक पूजा के फूलों की तरह होते हैं जहाँ मन को परम शान्ति मिलती है। शुक्ल जी के शब्दों में,

''घर–मंदिर बच्चे सभी हैं पूजा के फूल।
गात परस पावन करे, ये तीरथ की धूल ।।''[1]

परिवार में दादा–दादी, माता–पिता, भैया–भाभी, बहन–भाई, बेटा–बेटी के साथ–साथ रहने से पारिवारिक परिदृश्य बहुत ही वात्सल्यपूर्ण, सात्विक एवं ममत्वपूर्ण बन जाता है। माता का जो पारम्परिक बिम्ब, भारतीय संस्कृति में उकेरा गया है वह स्नेह, त्याग एवं वात्सल्य की जीती जागती तस्वीर है। इसे शुक्ल जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

''अम्मां भाब्दों से परे, संज्ञा एक अनाम।
उसके आँचल में बँधे चारों पावन धाम।।''[2]

माँ का साकार, शब्दातीत, पावन एवं आत्म बलिदानी स्वरूप सार्थक बन पड़ा है। अम्मा परिवार की आधारभूत इकाई है जो पूरे परिवार को जोड़ कर रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। माता अपने जीवन की तपस्या का फल अपनी सन्तान को देने में अपनी सार्थकता समझती है तथा अपने बच्चों को उच्च–संस्कारयुक्त बनाने के लिए अपना पूरा जीवन न्यौछावर कर देती है। अतएवं माँ की ममता को शब्दों में नहीं मापा जा सकता।

परिवार में पिता का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। 'पिता' को परिवार का कर्ता कहा जाता है। वह धरती और आकाश को नापते हुए सरलता एवम् दृढता से युक्त स्नेहिल महक द्वारा सब कुछ समेटे हुए रहता है। पिता का कार्य परिवार का भरण पोषण एवम् रक्षा करना है। पिता की स्नेहमयी गोद बच्चों के लिए वट एवं पीपल की छाँव के समान सुखदायी एवं आनन्ददायी होती है। उसे बच्चों को पढाने लिखाने तथा परिवार को प्यार और स्नेह की डोर में बाँध कर रखने के लिए कई–कई क्षितिज नापने पड़ते हैं। शुक्ल जी ने पिता के लिए भाव व्यक्त किए हैं –

''पिता चन्दनी पालना वट पीपल की छाँव।
दूर क्षितिज को नापते धुलि धुसरित पाँव।।''[3]

पिता की पूरी उम्र इसी प्रकार संघर्ष करके व्यतीत हो जाती है। वह बच्चों को जीवन की हर परिस्थिति के लिए तैयार रहना एवं संघर्ष करना सीखाता है।

परिवार को बाँध कर रखने में तथा प्रेम एवं खुशहाली के लिए पत्नी की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह अपनी तमाम आवश्यकताओं की कटौती करके, परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने में अपना कर्तव्य समझती है। इसलिए पत्नी को शुक्ल जी ने 'आँगन की नदी' तथा 'चादर छाँव' की कहकर सम्बोधित किया है। पत्नी, पति के साथ कड़ी मेहनत करती है तथा परिवार की खुशहाली की मंगल कामना के साथ विविध अनुष्ठानों में शामिल होती है।

''पत्नी आँगन की नदी बिरवा है घर बार।
सींच–सींच कर सूखती ढोती रेत अपार।।''[4]
''पत्नी चादर छाँव की मैली पर उजियार।
खींच तानकर स्वयं को ढके सकल परिवार।।''[5]

पत्नी पारिवारिक स्नेह, प्रेम और त्याग की साक्षात् तस्वीर है। वह बिरवा घरबार को सींचती आँगन की नदी है जो स्वयं रेत की भाँति सूख जाती है परन्तु घर परिवार को सींचने का अपना धर्म नहीं छोड़ती।

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में भाई बहिन के रिश्ते को

सबसे पवित्र माना गया है। भाई, बहन का रिश्ता अनेक भावनाओं एवं सौहार्दता तथा ममत्व से पूर्ण होता है। यथा –

''बहिना धागा नेह का पोर पोर बधँ जाय।
हरदम छलकी आँख है उसे कौन बिसराय।।''[6]

''बेटी वेदों की ऋचा बहुत मौन गंभीर।
खुलकर कभी न कह सके मन की पूरी पीर।।''[7]

शुक्ल जी ने बेटी के लिए बहुत सी व्याख्याएँ प्रस्तुत की है जो अप्रतिम हैं।

''बेटी मैना दूर की चहके करे मिहाल।
वक्त हुआ लो उड़ चली तज पीहर की डाल।।''[8]

गहन गंभीर वेदों की ऋचा, जैसी बेटी गहरी मन की पीर को अभिव्यक्त करने में सकुचाती है। बेटी के प्रति शुक्ल जी का गहरा लगाव है। बेटी के पराये हो जाने के पारम्परिक भाव को कवि ने अछूते ढंग से दोहों में प्रस्तुत किया है। आज के आधुनिक समाज में बेटियों ने परनिर्भरता की प्राचीन अवधारणा को बदल दिया है। आज महिला सशक्तिकरण के युग में बेटियाँ हर रोज आसमान की उचाईयों को छू रही हैं तथा घर एवं बाहर दोनों को संभाल रही हैं। कवि ने भी बेटियों के बारे नवीन अवधारणा प्रस्तुत की है –

''बेटी के संबंध में है धारणा नवीन।
हाथों में आकाश है पाँवों तले जमीन।।''[9]

''आज बेटियाँ मुल्क की है बन गई जमीर।
कुब्बत से है रच रही खुद अपनी तकदीर।।''[10]

बेटियाँ अब किसी से कम नहीं है तथा वे अपना भाग्य स्वयं लिखेंगी। वे अपना कर्तव्य निभाने में पीछे नहीं हटेंगी।

''मैं छोटी सी चिनगारी हूँ मुझमें है ज्वाला का वास।
मेरे पाँव बंधी है धरती मेरे हाथों में आकाश।।''[11]

बेटा माँ बाप के लिए वंश परम्परा का गाहक एवं बिरवा आस का कहा जाता है। बेटे को घर का चिराग तथा पिता का उत्तराधिकारी माना जात है। हिन्दू शास्त्रों में कहा है जब तक मनुष्य पुत्र प्राप्त न करे वह पितृ ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। शुक्ल जी पुत्र को माँ बाप की इच्छा का आकाश मानते हैं

''बेटा है, माँ बाप की इच्छा का आकाश।
वक्त पड़े भूगोल है वक्त पड़े इतिहास।।''[12]

''बेटा बिरवा आस का फूले फले अनन्त।
अनुभव है संज्ञा नहीं सीमातीत दिंगन्त ।।''[13]

बेटे को भूगोल एवं इतिहास कहकर कवि ने उसे समस्त घर के वात्सल्य का पूरा इतिहास कह दिया है।

परिवार में ननद भाभी का रिश्ता भी प्रेम युक्त एवं मित्रवत् होता है। उनका संबंध अन्य परिवार के संबंधों से कहीं अधिक गहरा होता है। भाभी अपनी बात किसी को न बतलाकर अपनी ननद को अवश्य बताती है। उनमें किसी प्रकार का दुराव–छिपाव नहीं होता है।

''भाभी पीली रोशनी करती घर उजियार।
सोन चिटैया थी मगर उड़ी न पंख पसार।।''[14]

ननद जब परदेस में जाती है तो वह भाभी से अपना विशिष्ट स्नेह भेजती रहती है तथा भाभी से अपने पूरे परिवार के कुशल मंगल की कामना करती रहती ह

''भाभी मुझे न भूलना रखना सदा दुलार।
मैं पंछी पिंजरे बसी सात समन्दर पार।।''[15]

परिवार में देवर–भाभी का रिश्ता बड़ा नाजुक होता है। वे कभी हास परिहास करते हैं तो कभी नोंक झोंक की स्थिति होती है। परन्तु भाभी का देवर से प्रेम अपने बहन भाई के समान होता है। कभी कभी देवर भाभी से अधिक छोटा हो तो भाभी को उसका पालन पोषण भी पुत्रवत करना पड़ता है तथा देवर भाभी के धर्म का निर्वहन भी करना पड़ता है –

''सास ससुर पति के सहित देवर भी थे तीन।
खर्च बहुत था माँ हुई थोड़े जल की मीन।।''[16]

शुक्ल जी के काव्य में पारिवारिक परिवेश का सुंदर चित्रण किया है। ये रिश्ते–नाते मरूस्थल की नदी के समान हैं जो हमारी तपन एवम् 'पियास' को हरने में पूर्ण समर्थ हैं। **डॉ0 शौल चतुर्वेदी** के शब्दों में – **''यह मरूथल जनित तपन और प्यास है जिसे जिन्दगी के मरूस्थल में प्रवाहमान रिशतों की स्नेहिल नदियाँ ही हर सकती हैं। रिशतों की ग्रहवाटिका में यहाँ अम्मां भाब्दों से परे एक अनाम संज्ञा है, पिता चन्दनी पालना है, पत्नी आँगन की नदी है, छाँव की चादर है, भैया परदेस का खत है, तो भाभी पीली रोशनी जो घर को उजियार करती है। इसी सन्दर्भ में बहिन, बेटी, बेटा, घर जन्मभूमि सरिकी वत्सल एवं रागवती कल्पनाएँ की गई है।''[17]**

डॉ0 देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के शब्दों में– ''**डॉ0 राधेशयाम शुक्ल के दोहों में उपस्थित रिशतों की यह बेमिसाल पवित्रता और आत्मीयता उन्हें अद्वितीय बना देती है .... रिशतों की यह रंग बिरंगी बेल संयुक्त परिवार के गाझिन गाछ पर ही लहरा पाती है और जब यह संयुक्त परिवार की व्यवस्था छोटे स्वार्थों के आघात से विघटित होती है तो राधेश्याम भाुक्ल**

जैसे आपाद मस्तक संवेदनशील कवि का अनुभूतिप्रवण मन करूणा से द्रवित हुए बिना नहीं रह पाता।''[18]

कवि 'इन्द्र' ने ठीक ही कहा है। आधुनिक समाज में आज परिवारों के टूटन एवं विघटन से पारिवारिक रिश्ते तार–तार हो रहे हैं। समाज में प्रेम भाईचारा, सहिश्णुता, करूणा का स्थान ईर्श्या, कलह तथा लड़ाई झगड़ों एवं स्वार्थपरता ने ले लिया है। आज सामूहिक परिवारों की कल्पना, स्वप्न की भाँति होती जा रही है। भाई, भाई के तथा माँ बाप के प्रति ईर्श्या का भाव पनप कर मानवता भी खत्म होती जा रही है। सभी को अपने परिवार की अपेक्षा अपनी अपनी चिन्ता दिखाई दे रही है। **डॉ0 अनुराधा** ने 'दरपन वक्त के' दोहों के विशय में अपने उद्गार इस प्रकार प्रकट कर रही है– **''कवि शुक्ल जी के घर परिवार के ये दोहे भारतीय संयुक्त परिवार के आपसी प्रेम, लगाव, सहानुभूति और पारस्परिक सौहार्द की पुनः प्रतिश्ठा करने का शुभ संकेत देते और आग्रह करते हुए सहत्दय पाठकों को रसवन्ती गंगा में निमग्न कर देते हैं .... इनमें कवि ने आज के खंडित परिवेश में मानव मूल्यों को एक बार फिर से तलाशा है। आज सामूहिक परिवार विघटित हो रहे हैं तथा आपसी प्रेम व भाईचारा खत्म होता जा रहा है। कवि भाुक्ल जी ने इन दोहों के माध्यम से पारिवारिक रिशतों में आ रही दरारों को भरने का प्रयास किया है।''[19]**

निष्कर्ष–इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शुक्ल जी ने अपने काव्य कानन में रिश्तों के वट वृक्ष वपन किये हैं जो निश्चित ही आत्मिकता के धरातल पर फलीभूत होगें।

सन्दर्भ ग्रंथ –

1. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, एक बादल मन, पृ0 88
2. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, एक बादल मन, पृ0 87
3. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, एक बादल मन, पृ0 87
4. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, दरपन वक्त के, पृ0 17
5. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, दरपन वक्त के, पृ0 17
6. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, दरपन वक्त के, पृ0 17
7. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, दरपन वक्त के, पृ0 18
8. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, एक बादल मन, पृ0 87
9. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, देशराग, पृ0 79
10. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, देशराग, पृ0 80
11. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, देशराग, पृ0 24
12. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, दरपन वक्त के, पृ0 18
13. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, दरपन वक्त के, पृ0 18
14. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, एक बादल मन, पृ0 87
15. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, देशराग, पृ0 85
16. डॉ0 राधेश्याम शुक्ल, दरपन वक्त के, पृ0 79
17. डॉ0 शैल चतुर्वेदी, समीक्षात्मक लेख दोहा काव्य संग्रह
18. डॉ0 देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', दरपन वक्त के (भूमिका) पृ0 11
19. डॉ0 अनुराधा, शोध प्रबन्ध, डॉ0 राधेश्याम शुक्ल : व्यक्ति वस्तु और कला, पृ0 216

शारदा कुमारी
घर का पताः– 357–58,
विकास नगर,
भिवानी, हरियाणा

समूहगान और समूहवादन का आपसी सम्बन्ध

10

रविन्द्र कुमार

सारांश –

समूह गान और समूह वादन दोनों ही एक दूसरे के सहायक है। समूह गान में जब वाद्य यंत्र मिल जाते हैं तो समूह गान का प्रभाव और भी अधिक हो जाता है हालांकि समूह गान और समूह वादन दोनों का अपना अपना अस्तित्व है अपना–अपना महत्व है परंतु फिर भी समूह गान की प्रस्तुति के समय अगर वाद्य यंत्र भी सहायक रूप में कार्य करें तो समूह गान का प्रभाव और भी बढ़ जाता है क्योंकि समूह गान में कई प्रकार के उतार–चढ़ाव बड़े प्रभावी सिद्ध होते हैं इसीलिए समूह गान में वृंद वादन का बहुत महत्व है। वृंद वादन को स्वतंत्र रूप से भी प्रस्तुत किया जाता है किंतु जब उसको समूह गान जैसी शैली मिल जाती है तो वह अपना प्रभाव और भी अधिक दिखा पाता है। इसलिए समूहगान और समूह वादन का बहुत गहरा संबंध है।

भूमिका

वृन्द शब्द की 'व धातु में 'दन् प्रत्यय को जोड़ने से हुई है तथा इसका शाब्दिक अर्थ 'समूह से लिया जाता है। इसी संदर्भ में वादकों के सामूहिक वादन को वृन्दगान कहा जाता है। चूँकि वृन्द शब्द का अर्थ समूह से लिया जाता है अतः सामूहिक रूप से गाये जाने वाले गीत को 'वृन्दगान'अथवा 'समूह गान' कहा गया। यद्यपि वृन्दगान का अर्थ निश्चित रूप से सामूहिक गायन से ही लिया जाता है किन्तु सभी सामूहिक रूप से गाये जाने वाले गीतों को वृन्दगान नहीं कहा जा सकता। वृन्दगान का अपना एक पृथक स्वरूप होता है जिसमें सब कुछ पूर्व निश्चित होता है। शब्द,स्वर, लय, ताल, यहाँ तक कि कौन सा अंश किसको गाना है यह तक निश्चित होता है।

वृन्दगान से अभिप्राय

वृन्दगान के अन्तर्गत गाये जाने वाले गीतों में देशगान, स्तुतिगान, वंदनाएँ, रवीन्द्र संगीत तथा समाज के अनेक पहलुओं जैसे मानवतावाद, नैतिकता, जागरूकता जैसे विषयों का वर्णन रहता है। किन्तु देशभक्ति से सम्बन्धित गीतों का सर्वाधिक समावेश रहता है। देशभक्ति परक गीतों को यदि वृन्दगान का पर्याय कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वृन्दगान के अन्तर्गत ध्रुपद, धमार, तराना, त्रिवट, चतुरंग व सरगम गीत जैसी शास्त्रीय गायन की रचनाएँ भी आ जाती हैं किन्तु इनका गायन मुक्त न होकर पूर्व निर्धारित तथा सामूहिक रहता है। इस प्रकार की रचनाओं में पं0 विनय चन्द्र मौदगल्य जी का नाम सर्वोपरि है।

इस प्रकार उपरोक्त प्रकार के समूह गीतों को वृन्दगान अथवा समूहगान की श्रेणी में रखा जा सकता है किन्तु जहाँ सामूहिक गायन की बात है वहाँ कव्वाली, कीर्तन, हवेली संगीत, समाजगायन, नाट्यगीत, कीर्तनम्, वेद, मंत्रपाठ आदि जैसी गायन शैलियाँ भी समवेत गायन की शृंखला में ही आती है। लोकसंगीत भी सामूहिक गायन की श्रेणी में ही आता है किन्तु अब इसको एक पृथक विधा के रूप देखा जाता हैद्य

वृन्दगान की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि इसका गायन खड़े होकर ही किया जाता है। यद्यपि खड़े होकर गायन का चलन पाश्चात्य संगीत में है किन्तु हमारे यहाँ भी खड़े होकर गाने की परम्परा रही है।ग्रन्थों में संगीत सम्राट तानसेन के खड़े होकर गाने का उल्लेख मिलता है। मंदिरों में आज भी अनेक स्थानों पर खड़े होकर कीर्तन गाने की परम्परा है।

समूहगान का अर्थ और परिभाषा

समूह में गायन अर्थात् वृन्दगान भारत प्राचीन परम्पराओं के अंतर्गत माना जाता है। प्राचीन समय में देव स्तुति के लिए वैदिक मंत्रों का उच्चारण सामूहिक रूप में किया जाता था। समूह का अर्थ है इक्कट्ठ। जब किसी गीत को इकटट्ठे मिलकर गाया जाता है अर्थात् समूह में गाया जाता है जैसे वृन्दवान, क्वायर सिंगिग, ग्रुपसांग इत्यादि। चूंकि वृन्द शब्द का अर्थ समूह से लिया जाता है अतः सामूहिक रूप से गाए जाने वाले गीत को वृन्दगान अथवा समूहगान कहा गया है। समूहगान से मिलती जुलती विधा की अगर बात की जाए तो वह विधा है वृन्दवादन या समूहवादन। किसी गीत को जब समूह में गाया जाता है तो इसका एक अलग प्रभाव पड़ता है। जैसे मंदिर में आरती या कीर्तन करना किसी स्कूल में प्रार्थना करना आदि। इससे सभी ओर भक्तिमय वातावरण बन जाता है। संगीत कक्षा में भी समूह में गायन करने पर अलग ही माहौल बनता है। इसी प्रकार से लोकगीत और कव्वाली भी समूह में गाई जाने वाली विधाएँ हैं।

दूसरे अर्थ मे समूहगान को "वृन्दगान" भी कहा जाता है। जिसे आकाशवाणी में "कोरल" नाम दिया गया है। कोरल का सहित्य अलग–अलग विषयों पर हो सकता है। जैसे देश भक्ति गीत, ऋतुगीत, संदेशवाहक गीत इत्यादि।

वृन्द का शाब्दिक अर्थ समूह तथा गायन का तात्पर्य गाने से है। जो समूह में गाया जाए वही समूहगान है। "शास्त्र दृष्टि से भी 'मातृवादक संधानों वृन्दमित्यभिधीयते" कहा

गया है अर्थात् जहाँ गायकों और वादकों का समूह हो, उसे वृन्द कहते हैं और जब ये सम्मिलित होकर गायन करते हैं, तब इसे वृन्दगान कहा जाता है। अतः वृन्दगान ऐसा गान है, जो एक से अधिक गायकों द्वारा समूह में गाया जाता है। "सामूहिक गायन संगीत कला के गीतं वाद्यं च नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते के तीनों आधारों की पूर्ति करताहै।"

"वृन्द शब्द की उत्पत्ति 'वृ धातु में द्न प्रत्यय लगाने से हुई है, जिनका शाब्दिक अर्थ है 'समूह। अतः वृन्दगान ही समूहगान है। भरत के नाट्य–शास्त्र में वृन्दवादन तथा समूहगान के लिए 'कुतप शब्द का प्रयोग किया गया हे। समूह का लक्षण 'गायक वादक संघात कहकर दिया है। समूह के भेदों व लक्षणों का वर्णन भी किया गया है। भरत मुनि ने कहा है "कुतुपानाममीषां तु समूहो वृन्दमुच्यते अर्थात् विभिन्न कुतपों का समूह वृन्द अथवा समूह कहलाता है।" अभिन्व गुप्त ने कहा है– 'समूहाः कुतपशब्द वाच्याः (ना0 शा0 अ0 28, पृ0 2) अर्थात् कुतप शब्द का अर्थ समूह है। "नाट्य के साथ ध्रुवा नामक गीति–विशेष का भी उल्लेख आया है। ध्रुवा गीतियों का गान प्रायः वृन्द–संगीत के साथ होता था।"

यह सत्य है कि वैदिक काल में ऋग्वेद की रचनाओं का शास्त्रीय एवं परम्परागत गायन करने के लिए इन्हीं रचनाओं को संकलित करने से सामवेद का निर्माण हुआ और इसी सामवेद को दो प्रधान अंगों में से "गान" को हजारों की संख्या का जनसमूह एक साथ मिलकर इसका गायन करते थे। यही गान की क्रिया वृन्दगान का मूल रहा है। वैदिक काल के पश्चात् भरतकाल में नाट्य संगीत के अन्तर्गत "वाद्यवन्द एवं गायकवृन्द" का महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता था।

नाट्यशास्त्र के अनुसार वाद्यवृन्द का सम्यक् संयोजन नाटक की सफलता के लिए आवश्यक है। ऐसे वाद्यवृन्द अथवा आतोद्य विन्यास के लिए "कुतुप" संज्ञा दी गई है। नाट्य ग्रह की रचना में भी वाद्यवृन्द तथा गायकवृन्द की सुविधा का पर्याप्त ध्यान रखा जाता था।

वृन्दगान का वर्तमान स्वरूप

वृन्दगान का वर्तमान में जो रूप निखर कर आया है उसमें हार्मनी, मैलोडी का प्रयोग करते हुए राग–रागिनियों के दर्शन भी होने लगे हैद्य इसके साथ ही इसमें पाश्चात्य संगीत एवं वाद्यों का प्रभाव भी बहुत अधिक दृष्टिगोचर होने लगा है। पहले वृन्दगान मैलोडी प्रधान होते तथा, उनके संगीत में भी मूलवाद्यों का प्रयोग होता था परन्तु अब वृन्दगान में हार्मनी तथा पाश्चात्य वाद्यों का प्रयोग खुलकर होने लगा हैद्य वृन्दावन मे अनेक रचनाएँ ऐसी भी होनी लगी हैं जिनमें शास्त्रीय एवं पाश्चात्य दोनों प्रकार के संगीत का मिश्रण मिलता है। वृन्दगान का स्वरूप कैसा भी हो उसके प्रदर्शन में श्रेष्ठता एवं सम्मिलित रहता है।

"वृन्दगान के साथ वृन्दवाहन की परम्परा की विशिष्ट जानकारी गुफाओं के चित्रों से भी मिलती है। मध्य–प्रदेश की सीतावेंगा गुफाओं में, जिनका समय दूसरी शताब्दी माना जाता है, इनमें उल्लेख मिलता है, जिसमे गायकों एवं वादकों के बैठने का स्थान भी है। अजन्ता गुफाओं में भी ऐसे भित्ति चित्र प्राप्त होते हैं जिनमें गायक और वादक चित्रित किए गए हैं। इसी प्रकार दूसरी से सातवीं शताब्दी तक की अन्य गुफाओं के भित्ति चित्रों में वृन्द–वाहन, वृन्द–गान तथा नृत्यों का चित्रण है। इनमें से मुख्य गुफाएँ भुवनेश्वर स्थित कपिलेश्वर तथा उड़ीसा का परमेश्वर मन्दिर, जिनका समय छठी–शताब्दी माना जाता है तथा स्तूप जिसका समय ईसा से दो शताब्दी पूर्व माना जाता है इस बात के प्रमाण हैं कि वृन्दगान अर्थात् समूहगान एवं वृन्दवादन की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन है।

17वीं शताब्दी में औरंगजेब के काल में फकिरूल्ला कृत 'राग–दर्पण में समूहगान की चर्चा की गई है जो इस प्रकार है – "जब गायक समूह और वादक समूह एक साथ प्रदर्शन करें तो उसे वृन्द कहते हैं।"

"सिंह भूपाल'के अनुसार जब उत्तम, मध्यम तथा अधम अथवा कनिष्ठ इन तीनों ही प्रकार के कुतपों को सम्मिलित किया जाए तो 'वृन्द कहलाता है।

"मुगलकाल में कुतप के स्थान पर 'नौबत शब्द का प्रयोग होने लगा था। 'रोशन चौंकी' भी मुगलकाल का एक छोटा–सा वाद्यवृन्द था जिसमें गायक भी आवाज की चलत फिरत और गले का कमाल दिखाता था।"

"मध्यकाल का 'नौबत वाद्यवृन्द राजमहल की दिनचर्या का परिचायक था। मुगलकाल में 'आईने अकबरी' में नौबत का बड़ा सम्मान था। वाद्य वृन्दों के वादन के पश्चात् विभिन्न प्रार्थना करने वाले गायक बादशाह का गुणगान किया करते थे।" मुगल संस्कृति और कलाओं का प्रभाव, हिन्दुओं पर पड़ा और हिन्दुओं का प्रभाव मुगलों पर पड़ा। परिणामस्वरूप सामूहिक रूप से मनाया जाने वाला प्रत्येक उत्सव संगीत नृत्य के संयोग से सरस बना लिया जाता था। इसका प्रमाण यही है कि हमें सामूहिक गान तथा सामूहिक नृत्य व रास के अवसर पर गाए जाने वाले गीत प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं।

उपरोक्त सभी बातों पर दृष्टिक्षेप करने से यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में वृन्दवादन के साथ–साथ वृन्दगायन भी सामाजिक रीतिरिवाजों का अहम् हिस्सा था, इसी कारण समाज में इसे प्रतिष्ठा प्राप्त होने के पीछे वृन्द या समूहगायन–वादन का महत्व, उसकी समाज के विकास में आवश्यकता इत्यादि बातें महत्वपूर्ण थीं।

वृन्दगान में वृन्दवादन का महत्त्व

वृन्दवान के साथ वृन्द वादन की परम्परा की विशिष्ट

जानकारी गुफाओं के चित्रों में भी मिलती है। मध्य प्रदेश की सोतावेंगा गुफाओं में जिन का समय दूसरी शताब्दी माना जाता है। संगीतगार मिलता है जिसमें गायकों एवं वादकों के बैठने के स्थान भी है। अजन्ता गुफाओं में भी ऐसे भिति चित्र प्राप्त होते हैं जिनमें गायक व वादक भी अंकित है। वाद्यों में मुख्य रूप से, वीणा, पुस्कर तथा झांझ का चित्रण मिलता है। इसी प्रकार दूसरी से सातवीं शताब्दी तक की अन्य गुफाओं के भिति चित्रों में वृन्द वादन वृन्द गान तथा नृत्यों का चित्रण है। इनमें से मुख्य गुफाएं भुवनेश्वर स्थित कविलेश्वर तथा उड़ीसा का परमेश्वर मन्दिर जिनका समय 6–7 शताब्दी माना जाता है तथा बरहुत स्तूप जिसका समय ईसा से दो शताब्दी पूर्व माना जाता है। इस बात का प्रमाण है कि वृन्द वादन एवं वृन्दगान की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन है।

निष्कर्ष

शोध पत्र को लिखने के उपरांत यह बात भी पता चलती है दके समूह गान और समूह वादन दोनों ही अपने आप में अलग–अलग विधाएं किंतु जब दोनों का सम्मिश्रण होता है तो यह दोनों विधाएं और भी अधिक प्रभाव डालते हैद्य समहू वादन को ऑर्केस्ट्रा के नाम से भी जाना जाता हैद्य और उसका स्वतंत्र रूप से भी प्रयोजन रहा है किंतु समूह गान के साथ जब वह सहायक के रूप में कार्य करता है तो इससे दोनों का ही महत्व बढ़ जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 162
2. विजय भारती, वृन्दगान डॉ सिया बिहारी शरण, पृ0 11
3. संगीत कला विहार, जुलाई 1989, डॉ मनोरमा शर्मा, पृ0 253
4. लक्ष्मीनारायण गर्ग, निबन्ध संगीत, पृ0 187
5. रवि शंकर, रवि शंकर के आर्केस्ट्रा, प्रकाशन प्रभुलाल गर्ग
6. श्रीमती पुष्पा बसु, संगीत कला विहार, पृ0 14

Ravinder Kumar S\O Sitaram
VPO Siwani Bolan
The & District Hisar(Haryana)
Pin Cod 125047
Mob& 9416455319

पृष्ठ.39 का शेष

सागर रात को सोने नहीं जाता। उसी रात रम्भा डर से चिल्लाती हुए सागर की माँ को पुकारती है। और सागर को सोने भेज देने की ज़िद की। सागर फिर माँ की आज्ञा मानकर चला गया। रम्भा समझ गयी कि अब प्रेमजोड़ा का उपयोग किये बिना यह नहीं मानेगा।

शायद इससे पहले भी सुभाष, झोला छाप डॉक्टर आर0 के0 प्रसाद और अन्य लड़कों को प्रेमजोड़ा से ही वश में की थी। मुझे पड़ोस के दादाजी ने प्रेमजोड़ा के बारे बतलाया था, ''बाबू प्रेमजोड़ा एक ऐसी औषधि है, जिससे पति–पत्नी में प्रेम नहीं होता हो, दोनों एक दूसरे से नफरत करता हो या दोनों में एक नफरत करता हो। ऐसी स्थिति में प्रेमजोड़ा के उपयोग से दोनों के बीच प्रेम स्थापित होता है। इतना ही नहीं, यदि कोई लड़का या लड़की किसी को पाना चाहता हो और वह मान नहीं रहा। तब भी प्रेमजोड़ा के माध्यम से उसे वश में किया जाता है। फिर वह लड़का हो या लड़की हो। उसके बिना एक पल नहीं रह पायेगा।''

एक–दो रात आराम से सोती है। फिर एक दिन रात को सोने के समय एक गिलास दूध पीने दी। दूध में पहले ही प्रेमजोड़ा डाल दी थी। फिर रम्भा अपने बेड में सागर के साथ। सागर की कमाई से नयी–नयी साड़ी, कंगन, चप्पल–जूती आदि आने लगा। यह ख़बर गाँव में महामारी की तरह फैल गयी।

सम्पर्क सूत्र
डॉ0 मृत्युंजय कोईरी
द्वारा,
कृष्णा यादव
करम टोली (अहीर टोली)
पो0 – मोराबादी
थाना – लालापूर
राँची, झारखंड–834008
चलभाष – 07903208238
07870757972
मेल– mritunjay03021992@gmail.com

11

हिंदी भाषा और राष्ट्र निर्माण

अनु इन्दौरा

सारांश –

मानव द्वारा अर्थपूर्ण प्रतीकों के माध्यम से संवाद करने की क्षमता भाषा है। यह मानव समाज की एक अद्भुत क्षमता है। भाषा मनुष्य के भीतर एक सम्भावना है, क्योंकि भाषा हमारे विचारों को आकार देती हैद्य हमारे बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी भारत देश में तो अनेक भाषाएँ हमारे जीवन का हिस्सा बनती हैंद्य अतरू पहचान के विभिन्न आयामों (जैसे धर्म, लिंग, स्थान, जाति, वर्ग, भाषा) में से भाषा किस प्रकार हमारी अस्तित्त्वगत पहचान को आकार देकर उसका प्रतिनिधित्त्व करती रही है, इसे समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है। भाषा का चूँकि अस्तित्व से सम्बन्ध है, इसलिए यह सदैव एक संवेदनशील मुद्दा रहा हैद्य भाषा एक ओर जहाँ समाज का सबसे मुखर स्वरूप और चेहरा रही है, वहीँ दूसरी ओर भाषा द्वारा ही किसी देश के समाज, संस्कृति, सभ्यता, परम्परा और इतिहास को परिभाषित किया जाता रहा है अर्थात् किसी समाज का आत्मसाक्षात्कार अपनी भाषा में ही सबसे बेहतर ढंग से संभव होता हैद्य अतरू लिपि चिन्हों और हवा में ध्वनियों की लहर से आगे भाषा क्या कुछ अपने में समेटे हुए है, इसे जानने के क्रम में प्रस्तुत लेख में कुछ प्रश्नों की पड़ताल करने का प्रयास किया गया है जैसे विविध भाषाई अस्मिताओं के बीच हिंदी भाषा कैसे राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का आधार बनकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करती है, हिंदी भाषा और राष्ट्रीय पहचान के बीच किस प्रकार के समीकरण रहे हैं, ये दोनों कैसे एक दूसरे से अंतर्संबंधित हैं आदि द्य इसी के साथ यहाँ राष्ट्र व् राष्ट्र निर्माण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए हिंदी भाषा की ऐतिहासिक भूमिका, वर्तमान परिदृश्य पर प्रकाश डालते हुए भविष्य की संभावनाओं के अंतर्गत समावेशी नजरिया अपनाने की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है, ताकि भाषाई विविधता सामाजिक खाई का साधन ना बनने पाये।

भूमिका

भाषा हमारे विचारों, विश्वासों को अभिव्यक्त करने की प्रतीक व्यवस्था है, जिसे समाजीकरण के महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में देखा जाता हैद्य भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा हम प्राथमिक तौर पर खुद की और दूसरों को लेकर अपनी समझ विकसित करते हैंद्य भाषा ज्ञान प्राप्ति का स्वाभाविक माध्यम होने के साथ दृ साथ देश के मूल विचार और संस्कृति से जुड़ने का साधन भी हैद्य एक समाज भाषा के कारण ही आत्मविश्वास, भावनात्मक एकता और सामूहिकता के भाव की अनुभूति करता है, क्योंकि उस समाज के लोगों के कुछ निश्चित साझे विश्वास, विचार, परम्पराएं, संस्कृति, पूर्वाग्रह, रूढ़ियाँ और सोचने के तरीके होते हैंद्य भाषा समाज की आकांक्षाओं को स्वर देती है और उनके सामाजिक संबंधों को आकार भी देती हैद्य भारत खान–पान, रहन–सहन, परम्पराओं और संस्कृतियों की विविधताओं से भरा एक बहुभाषी देश हैद्य यही कारण है कि भारतीय समाज की विविधता में एकता की संकल्पना सदा से ही विश्व के लिए आश्चर्य और जिज्ञासा का विषय रही है। अनेक बोलियों और भाषाओँ के अस्तित्व के कारण ही भारत के लिए कहा गया है कि "चार कोस पर वाणी बदले, छरू कोस पर पानी" वास्तव में एक राष्ट्र के निर्माण में बहुत से कारक भूमिका निभाते हैं किन्तु उन सब में भाषा की केन्द्रीय भूमिका रहती है। राष्ट्र निर्माण में भाषा कैसे सबसे शक्तिशाली और प्रभावी कारक है इसे समझने की लिए आगे राष्ट्र ,राष्ट्रीय पहचान और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया जैसी संकल्पनाओं को समझाने का प्रयास किया गया है।

राष्ट्र व राष्ट्र निर्माण की अवधारणा

सर्वप्रथम द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् राष्ट्र शब्द की अवधारणा का जन्म हुआ और यहीं से राष्ट्रीय भाषा के चयन का प्रश्न भी महत्तवपूर्ण बनाद्य राष्ट्र अर्थात लोगों का ऐसा समूह जिनकी साझी संस्कृति, इतिहास, परम्परा, धर्म, मिथक, मूल्य, प्रतीक और भाषा हैं, जिसकी अपनी भौगोलिक सीमा और राजनैतिक सत्ता होने के साथ– साथ अपने कुछ राष्ट्रीय प्रतीक भी हैं जैसे राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय गीत, राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय दिवस, राष्ट्रीय भाषा आदि जिसके माध्यम से एक राष्ट्र अपनी साझी राष्ट्रीय पहचान को अभिव्यक्त करता हैद्य साझी पहचान बनाना राष्ट्र निर्माण का ही हिस्सा हैद्य साझी राष्ट्रीय पहचान नागरिकों में राष्ट्र के प्रति लगाव,जुड़ाव, समर्पण और सुरक्षा का भाव पैदा करती है। राष्ट्र निर्माण देश को विकसित करने की एक लोकतान्त्रिक प्रक्रिया है जिसके तहत लोगों को एकता के सूत्र में बांधना, राजनीतिक स्थिरता लाना, सामाजिक दृआर्थिक विकास करना, समान कानूनी अधिकार और कर्तव्य, सभी प्रकार के भेदभावों को समाप्त करना, शहरीकरण, राष्ट्रीय जनशिक्षा का कार्यक्रम, सामाजिक गतिशीलता,

सतर्क जिम्मेदार सरकारी तंत्र, संसाधनों के संतुलित बंटवारे को उचित कानूनों के माध्यम से सुनिश्चित करना आदि शामिल है। कुछ लोगों द्वारा धारा 370 के हटाये जाने को भी एक एकीकृत राष्ट्र बनाने की ओर बढ़ाए गए कदम के रूप में देखा गया।

राष्ट्र निर्माण में भाषा की भूमिका

वास्तव में, भौगोलिक पहचान तो देश की सीमाएं बना देती हैं किन्तु सांस्कृतिक पहचान भाषा ही संभव बनाती है। हमारे देश में भाषाई विविधता सांस्कृतिक विविधता का प्रतीक हैद्य भाषाओँ और बोलियों की यही विविधता हमारे देश की ताकत भी है किन्तु भाषाओँ की इसी बहुतायत के कारण कोई एक राष्ट्रीय भाषा का चयन हमारे देश में विवाद का विषय बन जाता हैद्य राष्ट्र निर्माण में भाषा क्यों इतना महत्तवपूर्ण स्थान रखती हैं और कैसे वह राष्ट्र निर्माण में बाधा बन सकती है, इसकी समझ हमें विभिन्न शिक्षा नीतियों के प्रारूपों पर (हिंदी भाषा को पढ़ने की अनिवार्यता की स्थिति को लेकर) दक्षिण भारत में उठे विवादों से मिल जाती है। इससे स्पष्ट है कि भाषा सबसे अधिक प्रभावशाली प्रतीक है। भाषा लोगों पर अधिक मजबूत विचाराधात्मक बल के रूप में काम करती है। वास्तव में राष्ट्र निर्माण में सहयोग देने वाले अन्य कारक भी महत्तवपूर्ण हैं किन्तु लोगों द्वारा खुद को अभिव्यक्त करने का साधन भाषा ही वह केन्द्रीय तत्त्व है जो एक राष्ट्र के सदस्य के रूप में लोगों को सामूहिक एकता की अनुभूति करवाती है, उनमें नागरिक चेतना का निर्माण करती है और विभिन्न समूहों के बीच में सहयोग के भाव को जाग्रत करती हैद्य इस प्रकार भाषा राष्ट्र के लोगों को एकीकृत करने का काम करती हैद्य भाषा राष्ट्र निर्माण का मुखर तत्त्व है। अतरू राष्ट्र निर्माण मात्र राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में किसी एक भाषा का चुनाव ही नहीं है बल्कि एक ऐसी भाषा का चयन करना है जो बड़े स्तर पर समझी, बोली और सुनी जाती हो, जिसमें पर्याप्त मात्रा में लिखित मौलिक साहित्य उपलब्ध हो, जो समाज में एक ऐसा माहौल विकसित कर पाती हो, जिससे हमारा सामाजिक तानाबाना मजबूत हो सके, जिससे समाज में स्थिरता और शांति बने, और देश विकास की राह पर अग्रसर रह सकेद्य देश में हिंदी भाषा के प्रचार प्रसार और ख्याति को ध्यान में रखते हुए 14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने अग्रेजी के साथ हिंदी भाषा को भी राजभाषा का दर्जा दिया थाद्य हिंदी के साथ अग्रेजी को राजभाषा के रूप में अपनाने के पीछे का कारण यह है कि दक्षिण भारत में विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओँ के अतिरिक्त अग्रेजी बड़े स्तर पर एक संपर्क भाषा के रूप में व्यवहृत हैद्य यह दिखाता है कि किसी देश में राष्ट्रभाषा एक ही होती है(इस सम्बन्ध में हमारे देश में "हिंदी ही क्यों कोई अन्य भाषा क्यों नहीं" के नाम पर चर्चायें और विवाद होते रहे हैं)किन्तु राजभाषा एक से अधिक हो सकती हैंद्य राजभाषा से तात्पर्य शासन के कामकाज की भाषा से है। हमें हिंदी भाषा को राजभाषा के रूप को समझना जरुरी है इसका अर्थ है, संसदीय और राज्य स्तरीय चर्चाओं में, सरकारी निर्णयों में, सभी सरकारी दस्तावेजों में इसका प्रयोग किया जायेगाद्य हमारे संविधान में अनुच्छेद 343–351 तक राजभाषा सम्बन्धी प्रावधान दिए गए हैं। भारत के राष्ट्रपति ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 344 (1) में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए 7 जून 1955 को श्री बी.जी. खेर की अध्ययक्षता में राजभाषा आयोग का गठन कियाद्य 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित किया गया, 1968 राजभाषा सम्बन्धी प्रस्ताव पारित हुए और 1976 में राजभाषा नियम बनाया गयाद्य इसके अनुसार तमिलनाडु के अतिरिक्त सम्पूर्ण देश अपना काम हिंदी में कर सकता हैद्य निसंदेह राजकाज यदि जनमानस की भाषा में हो तो यह राष्ट्र निर्माण की गति को तीव्र करने में मदद करता हैद्य इस लेख में आगे राजभाषा के रूप में और एक व्यापक जनसमुदाय की भाषा के रूप में हिंदी भाषा की ऐतिहासिक,भौगोलिक, सामाजिक और वैश्विक स्थिति को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

राजभाषा हिंदी का फलक

सैकड़ों बोलियों और भाषा वाले इस देश में हिन्दी का स्थान अद्वितीय है। हजारों साल पुरानी इस भाषा ने न केवल पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का काम किया बल्कि आजादी की लड़ाई के दिनों में सबसे मुखर और मजबूत सम्पर्क सूत्र के रूप में भी काम किया है।हिंदी के इसी महत्तव को समझते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ने 1918 में दक्षिण हिंदी प्रचार सभा की स्थापना कीद्यआज दुनिया की चौथी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा हमारी राजभाषा हिंदी ही हैद्य हिंदी हमारी संस्कृति को परिभाषित करती है, हिंदी देश को एकता की डोर में बांधने का काम करती है। फिजी, पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, न्यूजीलैंड, संयुक्त अरब अमीरात, युगांडा, गुयाना, सूरीनाम, त्रिनिदाद, मॉरिशस और साउथ अफ्रीका समेत कई देशों में हिन्दी का बोला जाना इसे एक अन्तराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करता है। फिजी में हिन्दी को अधिकारिक भाषा का दर्जा भी दिया गया है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार हिन्दी विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश के 42 करोड़ 20 लाख भारतीयों की पहली भाषा हिंदी हैद्य लगभग 165 देशों में हिंदी को विश्व की आधुनिक भाषा के रूप में पढ़ाया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि हिंदी का फलक काफी व्यापक है। हिंदी का सोशल मीडिया से लेकर हर नई तकनीक में नए नए ढ़ंग से प्रयोग बढ़ा है। राजभाषा के रूप में हिंदी भाषा का जो पारिभाषिक शब्दावली वाला रूप हमारे

बीच है उसकी क्लिष्टता व दुरुहता को भी दूर करने के प्रयास जारी हैं ताकि इसे हिन्दीभाषी सहित गैरहिन्दीभाषी लोगों के लिए भी सहज और ग्राह्य बनाया जा सकेद्य जमीनी सच्चाइयों को देखते हुए कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा न सिर्फ राजभाषा के रूप में और मजबूत हो रही है बल्कि अखिल भारतीय स्तर पर एक बड़ी सम्पर्क भाषा के रूप में उभरने के कारण भारत की राष्ट्र भाषा (हमारा संविधान राष्ट्र भाषा के सम्बन्ध में मूक है) बनने की सबसे प्रबल दावेदार है। वास्तव में हिंदी की संवैधानिक स्थिति इसे विशेष दर्जा देती है जिसने इसकी राजनैतिक भूमिका को भी बढ़ा दिया है। राजनेता स्वयं प्रयास करते हैं कि अपनी योजनाओं, नीतियों और कार्यक्रमों को नागरिकों के बीच ले जाने के लिए जनता से संवाद का ऐसा साझा माध्यम अपनाए जिसके द्वारा एक ही समय में एक बड़े नागरिक समूह तक अपनी पंहुच को सुनिश्चित किया जा सके वहाँ व्यापार जगत भी इसी लीक पर है। हिंदी चूँकि भारत में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली समझी जाने वाली भाषा है। इसलिए राजनैतिक सत्ता के लिए जरुरी है कि राजभाषा के रूप में हिंदी भाषा के महत्तव तथा उपयोग को बढ़ाने के साथ एक कदम और आगे बढ़कर देश के लोगों से हिंदी भाषा मे संवाद करे सरकारें अपनी नीतियों के माध्यम से राष्ट्र निर्माण के लिए राजभाषा और राष्ट्रभाषा दोनों ही रूपों में हिंदी भाषा को प्रमुखता दे रही हैं। राजभाषा हिंदी को सरकारी स्तर पर ही नहीं बल्कि देश और विदेशों में भी प्रचारित व प्रोत्साहित किया जा रहा ह। दुनिया भर में रह रहे भारतीय मूल के प्रवासी, विज्ञापन और फिल्म जगत इसमें विशेष भूमिका निभा रहे हैं। आज सभी सरकारी विभागों की वेबसाइट्स पर हिंदी भाषा में जानकारी उपलब्ध हैद्य सरकारों को अपनी योजनाओं को सफल और सुचारू रूप से लागू करने के लिए नागरिकों से संपर्क साधना बहुत जरुरी है और यह संपर्क नागरिकों की भाषा में ही अधिक प्रभावी ढंग से साधा जा सकता है। जब सत्ता पक्ष ऐसी भाषा को प्रोत्साहन देता है जो उस देश की राजभाषा भी है और जिससे अधिसंख्य लोग अपनी राष्ट्रीय पहचान भी जोड़ते हैं तो उनमें देश के प्रति नागरिकता का बोध दृढ होता है।

वास्तव में भारत में पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक अधिसंख्य लोग हिंदी भाषा से अपनत्व के भाव को अनुभव करते हैं, क्योंकि हिंदी की आंतरिक बुनावट ही ऐसी है कि अनेक बोलियों से मिलकर बना हिंदी का मानचित्र अपनी प्रकृति में समावेशी है। हिंदी एक ऐसा भाषा परिवार है जिसमें बहुत सी भाषाएँ समाहित हैं भोजपुरी, अवधी, ब्रज जैसी अनेकों बोलियाँ हिंदी से अलग नहीं हैं, बल्कि ये सब हिंदी जैसे विशाल वृक्ष की मजबूत डालें हैं, इसलिए रामचन्द्र शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य के इतिहास में डिंगल से लेकर मैथिली तक को हिंदी साहित्य का अभिन्न अंग माना है। अतरू ऐसे बहुभाषिक परिवेश का संतुलित प्रबंधन कर राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को हिंदी भाषा के माध्यम से ही अधिक स्वाभाविक ढ़ंग से संभव किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्र निर्माण के लिए यह जरुरी है कि देश में किसी को यह अनुभूति न हो कि बड़े भाषाई समुदाय को ही संरक्षण मिल रहा है, क्योंकि यह भाषाई अल्पसंख्यकों में असुरक्षा का भाव पैदा करता है। दक्षिण और पश्चिम भारत के कई राज्य भाषा आधारित विवादों के परिणाम हैं। ये भाषाई विवाद निसंदेह राष्ट्र निर्माण की गति को धीमा करते हैं। प्रत्येक सांस्कृतिक समूह का अपनी भाषा बोलियों से भावनात्मक लगाव स्वाभाविक है, क्योंकि उनकी धार्मिक, सामाजिक, सांकृतिक परम्पराएं और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ भाषा विशेष से जुड़ी होती हैं। नागरिक चाहते हैं कि ऐसी भाषा को राजभाषा के रूप में अपनाएं जिसमें उनकी आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक आकांक्षाएं पूरी हो सके राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में जरुरी है कि हमारे यहाँ विजातीय धर्म या भाषा की विरासत से संबद्ध रखने वाली जनता के लिए सरकार सामाजिक हित में निर्णय लें, सभी नागरिकों को न्याय का बोध हो भारत जैसे लोकतान्त्रिक बहुभाषी देश में सभी लोगों की आकांक्षाओं को ध्यान में रखना बहुत जरुरी है। वास्तव में,भारत एक ऐसी कालीन के समान है जिसकी बुनावट में विभिन्न भाषाएँ, बोलियाँ और संस्कृति निहित हैं तथा इसके राष्ट्रीय मिजाज की पूरी खूबसूरती को इसकी विविधता में ही अनुभव किया जा सकता है।

निष्कर्ष

कह सकते हैं कि भाषा अस्तित्वगत आकांक्षाओं को व्यक्त करने का सबसे मजबूत साधन है और विभिन्न भाषाओँ, बोलियों को बनाये रखते हुए भाषाई एकता की स्थापना करना राष्ट्रीय एकीकरण और समावेशन की और बढ़ाया गया एक कदम हैद्य हिंदी हमारी राष्ट्रीय पहचान की प्रतीक है बावजूद इसके यह समझना आवश्यक है कि भारत की हर भाषा हमारी सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है। हमारा उद्देश्य समानुरूप देश की अपेक्षा एकीकृत भारत बनाना होना चाहिएद्य भारत देश के लिए कहा जाता है कि यहाँ अनेकता में एकता है इसका अर्थ है कि हम तभी तक एक हैं जब तक हम इस अनेकता को स्वीकार करते हैं। हम सबका कर्तव्य है कि सभी भाषाओँ के प्रति सम्मान का भाव रखते हुए सभी भाषाओँ को पुष्पित पल्वित होने के अवसर देकर प्रोत्साहित करें हमारे देश में एक राष्ट्र एक भाषा का समाधान कभी कारगर नहीं हो सकता है तथा समावेशी विचार को अपनाकर ही राष्ट्र निर्माण के लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. अग्निहोत्री आर. के. और खन्ना ए. एल. "भारत में अग्रेजी की समस्या", एकलव्य प्रकाशन, 2011.
2. नया ज्ञानोदयरू भारतीय ज्ञानपीठ की मासिक साहित्यिक पत्रिका, 2015.
3. बयारू साहित्य, संस्कृति और विचार का त्रैमासिक, पूर्णांक, अंतिका प्रकाशन, 2017.
4. मदान,अमन, शिक्षा और आधुनिकतारू कुछ समाज शास्त्रीय नजरिये, एकलव्य प्रकाशन, 2018.
5. चंद्र, विपिन, "आधुनिक भारत का इतिहास" ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, 2019.

Anu Indora
D\O Raj kumar Indora
VPO & Dhani Mirdad
Teh District – Barwala Hisar Haryana-
Pin Code & 125121
Mob-& 9971324947

12

दिनेश चमोला के काव्य में मानवतावाद

सलमा असलम

सारांश –

वर्तमान युग भूमंडलीकरण, औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, वैज्ञानिकता और तकनीकी का युग है। इस आधुनिक युग में व्यक्ति कहीं न कहीं मानव मूल्यों को खोता जा रहा है। दिनोंदिन मनुष्य स्वार्थ, लोभ और भौतिक सुख–सुविधाओं की ओर अग्रसर हो रहा है। आज मनुष्य अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए मानव–मूल्यों का हनन करने लगा है। समकालीन समाज में व्यक्ति के लिए धन, सम्पति, यश आदि ही महत्वपूर्ण हैं। जिसे पाने के लिए वह अपना घर–परिवार–समाज–संस्कृति को भी त्याग सकता है। समाज में फैली विभिन्न समस्याओं और मानव मूल्यों के कारण हो रही बर्बरता का उल्लेख कवि चमोला ने अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। जिसमें मुख्य रूप से समकालीन समय में मानव के द्वारा मानवीय–मूल्यों के हनन को रोकने और मनुष्य को लोभ और स्वार्थ को त्याग कर जीवन को सफल बनाने का प्रयास किया गया है।

मानवतावाद

मानव–गौरव एवं मानव मूल्यों का निर्माण करने वाली विचारधारा मानवतावाद कहलाती है। इस विचारधारा का केन्द्र बिन्दू ईश्वर या कोई और देव शक्ति नहीं होती, अपितु मनुष्य स्वयं है। मानवीय उच्चतर मूल्यों को मानवतावाद कहा जाता है। इस मानवतावाद के अंतर्गत व्यक्ति की संवेदना, ममता, दया, करुणा आदि भावों का विस्तार होता है। मानवतावाद में मानवमात्र के लिए क्षमा, दया की भावना और समाज तथा प्रकृति सभी के कार्यों में मानवीय बोध की ही प्रतिष्ठा की गई है। पश्चिमी आलोचकों ने अदृश्यवाद तथा दिव्यवाद से अधिक महत्व मानवतावाद को ही दिया है।

मानवतावाद के संबंध में भारतीय चिंतकों का मानना हैं कि मानवतावाद विचारधारा में, मानवतावाद उनके लिए मनुष्य ही नहीं अपितु जीव तथा जीवेत्तर की रक्षा के संबंध वह विचारधारा है, जिसमें दया, करुणा, ममता, पीड़ा से मुक्ति पर दुःखकातरता तथा मानवोदयम को उच्च श्रेष्ठ माना गया हो, वही मानवतावाद है।

हिन्दी साहित्य में मानवतावादी आदर्शों की प्रतिष्ठा आदिकाल से ही मिलती है। मानवतावाद का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि जिसमें मानव सभी प्राणियों में समानता तथा एकता की भावना को महत्त्व देता है। वह इसलिए कि सभी प्राणियों में मानव ही बौद्धिक क्षमता रखते हुए सभी जीवों के प्रति अपनी संवेदनाएँ प्रकट करता है। मानवतावाद और मानववाद दोनों विचारधाराएँ मानव कल्याण की कामना करती हैं। समानता एवं स्वतंत्रता का प्रतिपादन करते हुए वे एकता, समन्वय, संतुलन, एक सूत्रता आदि को स्वीकार करती है। यह दोनों विचारधाराएँ सहिष्णुता, सहानुभूति और परमार्थ से प्रभावित हैं। यदि इनके अन्तर पर विचार–विमर्श किया जाए तो इस बात से अवगत होते हैं कि इन दोनों विचारधाराओं में विचार तथा प्रक्रिया संबंधी पर्याप्त अंतर है। मानववाद में बुद्धि का प्राधान्य है, जबकि मानवतावाद समता, ममता, दया, न्याय, एकता, प्रीति अहिंसा, सत्य, कल्याण पर बल देता है।

सम्पूर्ण विश्व में मानव को ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। अपनी बुद्धि की गुणवत्ता के कारण वह अन्य प्राणियों से अलग है। मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए मनुष्य को केन्द्र में रखकर साहित्य में मानवतावाद की स्थापना की गयी है। मानव–मूल्यों की स्थापना करने के प्रयास में अनेकों साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मुख्य रूप से आधुनिक कवियों की बात की जाए तो उनमें निराला, महादेवी वर्मा, नागार्जुन, धूमिल, मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह आदि सैकड़ों कवि हैं। जिनके काव्य में समकालीन समाज की छवि, मानव–मूल्यों की स्थापना तथा मानवतावाद की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। इसी क्रम में आधुनिक कवि डॉ. दिनेश चमोला का काव्य भी सार्थक है।

कवि का मानव प्रेम देशकाल की सीमा का अतिक्रमण कर विश्व मानवता से जोड़ता है। कवि के विचार एवं दृष्टिकोण वसुधैव कुटुम्बकम् और विश्व–बंधुत्व के प्रति प्रतिबद्ध हैं। साथ ही सामाजिक जीवन–यथार्थ से गहरा संबंध रहा है। समाज में व्याप्त अनेक रूढ़ियों, विसंगतियों, विषमताओं, शोषण–अत्याचार आदि का कवि ने अपने काव्य में मुखरता से विरोध भी किया है।

समाज में मनुष्य का व्यक्तित्व उसके कर्मों से जाना जाता है और व्यक्ति को महान बनाने में उसके कर्म, विचार, समाज के प्रति योगदान आदि मुख्य भूमिका में होते हैं। जिसका चित्रण कवि चमोला के काव्य में मिलता है। व्यक्ति मर कर भी अपने कर्मों से युगों तक अमर रह सकता है। इसलिए मनुष्य को हमेशा अच्छे कर्म करने चाहिए। भौतिक सुख–सुविधाओं में स्वयं के जीवन को व्यर्थ न करके वास्तविक सुख–शान्ति को प्राप्त करना चाहिए। कवि चमोला ने अपनी कविता जीवन की सार्थकता में व्यक्ति को स्वयं से अधिक दूसरों के दुःख को दूर करने के लिए प्रोत्साहित किया है, जिससे उसका जीवन भी सफल हो जाए। जीवन को सार्थक और सफल

बनाने के लिए निस्वार्थ भाव से कर्म करना चाहिए। इस सन्दर्भ में कवि चमोला की कविता जीवन की सार्थकता की निम्न लिखित पंक्तियाँ प्रासंगिक हैं–

"कितने बरस जीता है आखिर एक स्वस्थ,
दुरस्त और तंदुरुस्त आदमी बहुत हुआ तो
वही कोई सत्तर, अस्सी या पूरे सौ बरस ...
अठ्ठाइस–तीस बरसों में से बीत जाएं
कोई अट्ठारह दृबीस बरस पढ़ाई,
नौकरी, जीवन की रोटी व निरर्थक
अधूरे सपनों की चिंता में...
लगता है नहीं जी गई सौ बरसों की
निरर्थक जिंदगी में
दो बरस भी जीवन की सार्थकता के ।"

अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए और समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए व्यक्ति को अच्छे कर्म करने की आवश्यकता है। मनुष्य अपने जीवन में जैसा कार्य करता है, वैसी ही उसे पहचान भी मिलती है।

साहित्यकार दिनकर का मानवतावाद के संदर्भ में कहना हैं कि – "संपूर्ण मानवता का भाग्य एक है, सारी सृष्टि की नियति एक है, अतएव, सच्चा धर्म यह है कि प्रत्येक व्यक्ति सारे जगत के क्लेश को अपना क्लेश समझे।" वर्तमान समय में व्यक्ति मानव–मूल्यों तथा मानवता को खोता हुआ दिखाई दे रहा है। वह अमानवियता के मार्ग को सही मानकर उसी दिशा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है। आज व्यक्ति केवल स्वयं में ही सिकुड़ कर रह गया है। जिसका कवि चमोला ने अपनी कविता आज का आदमी में उल्लेख किया है। सामाजिक परिवेश में मनुष्य की मानसिकता एवं उसका व्यवहार दूसरों को क्षति पहुंचाने में लगी रहती है। अपने स्वार्थ के लिए किसी अन्य को कष्ट देना समकालीन मनुष्य के स्वभाव में मुख्य रूप से दिखाई देता है। समाज में ऐसी प्रवृत्ति मनुष्य को अमानवियता के मार्ग पर ले जा रही है। ऐसी प्रवृत्ति एवं स्वभाव का खंडन कवि चमोला ने अपनी कविता की निम्न लिखित पंक्तियों में किया है। साथ ही कवि ने मानवतावादी गुणों को स्पष्ट करते हुए मनुष्य के व्यवहारिक रूप का भी चित्रण किया है। जिसमें दूसरों के हितों को प्रमुखता दी गई है। वर्तमान समय में मनुष्य का सर्वप्रथम लक्ष्य स्वहित है, जो स्वयं के लाभ के लिए किसी को भी कष्ट पहुँचा सकता है। जैसे–

"ब्रहमांड की व्यापकता से
अपने ही में सिमटता हुआ आदमी ...
आदमी जो कभी ब्रहमांड था य
जो सोचा करता था कभी
अपने से प्रारंभ होकर उस अनंत तक
किन्हीं परायों का भी भला
स्वयं को दुःख दे कराता था
औरों को नित नवीन गहरे सुखों का अहसास
आज पाता है महज एक टुकड़ा सुख
ब्रहमांड भर दुःख दे औरों को ।"

कवि चमोला की सच्चा मानव कविता वर्तमान समय और समाज को रेखांकित करती है। जिसमें मनुष्य, मनुष्य नहीं बल्कि एक हिंसक भेड़िया बन चुका है। जिसमें मानवता और समाज के प्रति कोई संवेदनाएं नहीं हैं। उसके भीतर केवल पशुता पनप रही है। जिसके कारण वह अपना दायित्व एवं कर्तव्य भूल गया है। मानवता धर्म यह है कि मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्वीकार करें। साथ ही मानवीय के सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध रहें। लेकिन समाज की कड़वी सच्चाई यह है कि मनुष्य से मानवीय गुण धीरे–धीरे समाप्ति की ओर अग्रसर हैं। इसीलिए समाज में बर्बरता, मानवीय मूल्यों का हनन, शोषण–अत्याचार आदि तत्व उभर रहे हैं। इन तमाम परिस्थितियों एवं यथार्थ को देखकर कवि का मन विचलित है। इसीलिए कवि कहता है–

"आज आदमी को,
हिंसक भेड़िये या चीते से नहीं
आदमी से डर लगता है
जो दिन दिहाड़े टूट पड़ता है
जाने कब किसी पर
भयावह कहर की तरह
जिसे देख घिग्गी बंध जाती है
हिंसक से हिंसक बघेरे की भी ..
सचमुच आदमी एक गजब का
खुंखार जानवर हो गया है ।"

मानवदमूल्यों के साथ–साथ हम आज लोभी व्यक्ति एकता और भाईचारे को भी खो रहे हैं। समकालीन समाज में मनुष्य ने स्वहित के लिए पशु का रूप ले लिया है, उसका केवल एक ही कार्य है दूसरों को दर्द देना। मानव की इस अमानुषिकता से विश्व–बंधुत्व, एकता और भाईचारा भी विलुप्त हो रहा है। आज आस–पास तो क्या हम किसी मासूम बच्चे को मदद की गुहार लगाते देखते हैं तो मुंह फेर लेते हैं। वर्तमान समाज में लोग स्वयं में इतना व्यस्थ हो गए हैं कि उनके पास किसी और के लिए समय ही नहीं है। आज लोग मानवता को भूलकर अमानवीयता की ओर बढ़ रहें हैं। उन्हें दूसरों के दुःख–दर्द व तकलीफ की कोई चिंता नहीं होती। इस सन्दर्भ में कविता की निम्न पंक्तियाँ प्रासंगिक हैं। जिसमें कवि चमोला ने एक बच्चे के माध्यम से मानवता की जर्जर स्थिति को चित्रित करने का प्रयास किया है। जिसमें एक मासूम बच्चा जो मदद के लिए रो रहा है तडप रहा है और प्रत्येक व्यक्ति की ओर अपनेपन से देखते हुए मदद

की गुहार लगा रहा है, परन्तु उसकी कोई सहायता नहीं कर रहा। क्योंकि सभी लोग अपने आप में व्यस्त हैं। स्वहित और स्वार्थ में विलुप्त लोगों को इस छोटे से बच्चे का रोना–बिलखना सुनाई नहीं देता। अतरू जीवन में उलझे लोगों और मानवता की हत्या कर रहे अमानवीय व्यवहार का चित्रण कवि चमोला की कविता खोया बच्चा की निम्न पंक्तियों में हुआ है–

"दौड़कर हाथ फैलाता
खिड़की के समीप जाता
परन्तु अपनेपन से हीन आँसू पोंछता
कभी बैठकर सिसकियाँ लेता
कोई ठिकाना नहीं पाता
जोर से चीखता
क्या स्टेशन की इस भीड़ में कोई भी
उसके रोने की आवाज नहीं सुनता ?"

डॉ. गुलाबराय ने मानवता की परिभाषा देते हुए मानवता के दस उपकरणों का उल्लेख किया है– "ये क्रमशरू सत्य, दूसरे के दृष्टिकोण का महत्व देना, अहिंसा, परस्वाभिमान रक्षा, शिष्टता, सहिष्णुता, आत्मौपम्यदृष्टि, निर्बल पर बल प्रदर्शित न करना, अधिकार भावना का त्याग तथा पर गुण–ग्राहकता है।" वर्तमान समय में बहुत कम लोग होंगे जिनमें यह उपकरण विद्यमान हैं। आज का मानव अपने स्वार्थ में इन उपकरणों को खो रहा है। वह अपने नैतिक मूल्यों को भूलता जा रहा है। आज केवल झूठ, अमानवीयता, बेईमानी, अन्याय का ही बोलबाला है। समकालीन समाज में व्यक्ति के लिए स्वार्थ, अन्याय, झूठ, लोभ आदि अमानवीय उपकरण अधिक महत्वपूर्ण हैं न कि सत्य और न्याय। जिसका उल्लेख कवि चमोला की निम्न पंक्तियों में हुआ है–

"शून्य होते मूल्य दर–दर हैं भटकते
चेतना भी हाँफती संवेदना बिन
स्वार्थ में मन काठ होता जा रहा है
न्याय, दर्शन सच्च घुटता पात्र के बिन...
बहुत चेहरे भीड़ में हैं उभरते हर रोज
किंतु हैं बेमौत मरते सत्यता के बिन..
झूठ का संसार जो पल–पल सजाते हैं
स्वयं फंसते जाल में है, सत्यता के बिन ।"

आज का मानव अपने रिश्तों को धन की तुलना में खो रहा है। धन के लोभ ने आज मानव को मानव का शत्रू बना दिया है। वर्तमान समाज में धन के लोभ में एक भाई दूसरे भाई की हत्या करने से नहीं चूकता। इतिहास साक्षी है, इस बात का कि सत्ता पाने के लिए पुत्र अपने पिता की भी बलि चढ़ाने में पीछे नहीं हटा। आज भी ऐसा हो रहा है। पहले गद्दी को पाने के लिए यह संहार होता था आज उसने धन, यश का रूप धारण कर लिया है। आज धन के लोभ में व्यक्ति कुछ भी करने को तत्पर रहता है। समकालीन समय में मानवता की हत्या करने वाले इन लोभी लोगों का चित्रण करते हुए कवि चमोला की निम्न पंक्तियाँ प्रासंगिक है–

"भाई–भाई ना रहा, टूट गया संबंध
पद, धन, मद में डूबता, रिश्तों के पैबंध ।...
ठेंगे पर रिश्ते गये, ठेंगे पर विश्वास
स्वार्थों की बलि चढ़ गई,
ममता भरी उजास ।"

सच्चाई, प्रेम, एकता, भाईचारा, ईमानदारी जैसे शब्द आज निरर्थक हो चुके हैं। धन का राज आज मनुष्य की भावनाओं और मानवीय मूल्यों को खोखला कर रहा हैं। आज सत्य, विश्वास, ईमानदारी, एकता, आदर्श आदि केवल नाम मात्र रह गए हैं। आज व्यक्ति झूठ की तराजू में स्वयं को बेच रहा है। जिसका चित्रण कवि चमोला ने अपनी कविता ईमान के माध्यम से किया है। समाज में गिरते मानव मूल्यों के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कवि चमोला ने समाज में फैले झूठ, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, प्रलोभन आदि अमानवीय विचारधारा के प्रति लोगों को सचेत करने का प्रयास किया है। जिस प्रकार से मानव–मूल्य नष्ट हो रहें हैं, वह चिंता का विषय है, जिसके सन्दर्भ में कवि चमोला की निम्न पंक्तियाँ प्रासंगिक है–

" झूठ दुष्ट सीने, सत्य, हांफता आज
लोक कथा बन रह गया, वही राम का राज
विचित्र भ्रष्टाचार के, रहे फैलते पंख
आस्था या विश्वास पर, ये नित मारें डंक...
मानवता दम तोड़ती, गहरे भर–भर श्वास
स्वयं पिता से उठ रहा, घर का ही विश्वास ...
मूल्य जहाँ गिरवी पड़े, सिसक रहे आदर्श
जीवित भी कैसे रहें, पुरखों के प्रतिदर्श ?"

समाज में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो सामाजिक विषमताओं को समाप्त करने की बड़ी–बड़ी बातें तो करते हैं लेकिन अपने निजी जीवन उन्हीं विषमताओं का पालन करते हैं। उनकी कथनी और करनी में अंतर दिखाई देता है। आज व्यक्ति ने सच्चे मानव की परिभाषा को ही बदल दिया है। आज व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए वही करता है, जो उसके लिए लाभदायक हो। समाज में ऐसे लोगों के प्रति कवि दिनेश चमोला ने अपनी चिंता जताई है। अपने काव्य के माध्यम से उनहोंने व्यक्ति के दोहरे व्यक्तित्व का चरित्र चित्रण करने का प्रयास किया है। जिसमें व्यक्ति समाज में व्याप्त बुराईयों पर तो टिका टिपण्णी करता है, लेकिन अपने व्यवहारिक जीवन में उन बातों, उपदेशों, विचारों आदि का अनुपालन नहीं करता। इसीलिए कवि ने ऐसे लोगों की कथनी और करनी के अंतर को समाज के विनाश का कारण माना है। कवि ने अपनी कविता कथनी और करनी के माध्यम से समाज को विखंडित करने वाले ऐसे लोगों को

मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाने के लिए उपदेश दिया है। इस सन्दर्भ में कविता की निम्न पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

"बार–बार विस्मय होता है
कितना अंतर होता है
मनुष्य की कथनी और करनी में
प्रायरू वह स्वयं वही करता है,
जो औरों को न करने की देता है सीख
जिसे औरों को कहता है करने के लिए
उसे भूल कर भी नहीं करता वह ...
उसके उपदेश व आचरणों के मध्य
फैली रहती है सदा गहरी खाई
मुझे बार–बार संदेह होता है
उसके प्याज से बहुपरती व्यक्तित्व पर जो
समय के साथ खुलता चला जाता है ।"

वर्तमान समय में समाज के हर क्षेत्र में व्यक्ति जी–हुजूरी, चापलूसी, झूठी प्रशंसा आदि करने में नहीं थकता। व्यवस्था में स्थितियां ऐसी बनी हुई हैं कि योग्यता के बावजूद भी व्यक्ति अपने आलाधिकारियों की चापलूसी करने के लिए विवश है। जिसमें वह अपने मानवीय गुणों, ईमानदारी, निष्ठा, मेहनत को किनारे रखता है। कवि चमोला ने अपने काव्य में ऐसे ही लोगों का चरित्र चित्रण किया है, जिनके लिए मानवता से बढ़कर पद, पैसा, यश, लाभ, प्रगति आदि मुख्य होती है। समाज में व्याप्त इस भयंकर माहामारी पर कवि ने अपनी कविता अनिवार्य योग्यता के माध्यम से प्रश्न उठाया है। जिसमें चाटुकारिता, झूठी प्रशंसा और चापलूसी के आधार पर व्यक्ति अपने आत्मसम्मान और अपने भीतर के मानवीय गुणों की बलि चढ़ाकर सफलता प्राप्त करने की कोशिश करता है। समाज में ऐसे व्यक्ति के लिए कोई योग्यता, ईमानदारी, निष्ठा, डिग्रियां महत्त्व नहीं रखती यदि कुछ महत्वपूर्ण है तो वह है धन, यश आदि। ऐसी मानसिकता पर कवि सीधे प्रहार करते हुए कहतें हैं –

"आज मायने गुणता के नहीं होते स्वाध्याय,
मौलिक योग्यता या कमरतोड़ मेहनत
इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ होता वह
जिसे कह सकते हैं अनिवार्य योग्यता
आज की मूलभूत सफलता की ...
जिसके पास होती है वह तो उसे
आवश्यकता नहीं होती प्राप्त करने की
कोई अन्य मान्य डिग्री...
यह डिग्री न तो किसी ज्ञान या विज्ञान की
ईमानदार इन्सान या भगवान की कला,
वाणिज्य, चिकित्सा तथा पत्रकारिता की
यह तो है केवल चमचागिरी और चाटुकारिता की
जो है मूलभूत सोपान आज की सफलता की ।"

समकालीन समाज में हम शिक्षा के माध्यम से ही लोगों को मानव मूल्यों, ज्ञान और जागरूकता की तरफ ले जा सकते हैं। यदि हमारे देश में शिक्षा व साहित्य ही बिक गया तो मानवता का कोई भी पाठ न तो स्वयं पढ़ पाएँगे और न ही किसी और को पढ़ा पाएँगे। हम शिक्षा के माध्यम से ही समाज में मानवता का ध्वज फैला सकते हैं और प्रत्येक बुराई और बुरे लोगों का सामना कर सकते हैं। परन्तु जब किसी देश में अमानवियता और भ्रष्टाचार का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में भी होने लगता है तो उस देश से मानव–मूल्य धीरे–धीरे समाप्त होने लगते हैं, जिसका उल्लेख कवि चमोला की निम्न पंक्तियों में भी हुआ है–

" कलम बड़ी बलवान है, इसका राज न पाठ
अमर किन्तु युग–युग रहे, इसका वैभव–ठाठ...
कलम यदि जो बेच दे, बचा कहाँ ईमान ?
ज्ञान–कोष से जा गिरा, ऐसा वह इन्सान...
कलम बिकी तो बिक गया, तन, मन का संसार
ज्ञान, तमस में कर सके, फिर कैसे उजहार ?
कलम सुरक्षित अगर रही, अमर रहे फिर ज्ञान
फैल भला कैसे सके, जगत में फिर अज्ञान ?"

मानवतावाद के मूल्यों का हनन करके आज व्यक्ति अपने प्रलोभन या अपने पद प्राप्ति की लालसा में अपने उच्चाधिकारि की जी–हुजूरी कर रहा हैं। अपनी मर्यादा, आदर्शों, आत्मसम्मान आदि को बेचकर वह केवल एक ही कार्य करना जानता है, वह है– अपने मालिक की गुलामी। ऐसे लोगों के व्यर्थ जीवन और गुलामी पर निर्भर उनकी उपलब्धि का चित्रण कवि चमोला ने अपनी कविता धिक्कार में किया है। जैसे–

"हमारे एक मित्र हैं गुमनाम
करते हैं बस एक ही काम है
मर्यादा, आदर्शों की गठड़ी बेच
बॉस के आगे–पीछे हिलाते हैं दुम
पालतू जानवर की तरह आठों याम ...
जिन्होंने मानवता को चाट डाला है
कलंकित किया है नैतिकता को
धिक्कार है उनका जीवन व मान
धिक्कार है उनका ऐसा निरर्थक काम ।"

कवि चमोला ने नई सदी नामक कविता में समकालीन समाज में फैली अमानवीयता का चित्रण किया है। आज समाज में चारों ओर मानव–मूल्यों का हनन हो रहा है। लूठ, चोरी, झूठ, भ्रष्टाचार, भेद–भाव, स्वार्थ, क्रूरता, बर्बरता आदि ने हमारे समाज को खोखला बना दिया है। आज एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ प्रेम और स्नेह से नहीं रहता बल्कि वह एक दूसरे के दुश्मन हो गए हैं। मनुष्य ही मनुष्य का संहार कर रहा है। कवि ने मानव के इस व्यवहार का

कारण नई सदी को माना है। जिसके आते ही मानव ने अपना रूप ही बदल दिया और वह एक पशु से भी अधिक क्रूर हो गया है। जो बर्बरता से लोगों का संहार करने लगा है। मानव की बर्बरता और क्रूरता का उदाहरण काव्य की निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

"नई सदी तूने किये, सपने चकनाचूर
अपना, अपनों से हुआ सौ–सौ मीलों दूर...
मूल्य तडपते हैं यहां हर चौराहे बाट
चोर–उचक्के कर रहे, हैं घर–घर में ठाठ..
देश, न पुण्य, न ज्ञान ही, है चारों दिशि लूट
मूल्य भवन जर्जर हुये, जब–तब जाते टूट।"

मानवतावाद मानव की समृद्धि और सुख का परिपोषक होता है, जिसका कार्य समाज में सामंजस्य, समता और समरसता को स्थापित करना होता है। डॉ. सरयूकृष्ण मूर्ति के अनुसार "मानवतावाद साहित्य की वह विचारधारा है जिसमें मानव का प्रमाण मानव माना जाता है अर्थात् मानव की स्थिति, घृति, मति, गति एवं कृति के मूल्यांकन का आधार धर्म, दिव्य–जाति, वर्ग या अन्य कोई बाह्य तत्व नहीं वरन स्वयं मानव ही होता है।" मानव का मानव के प्रति प्रेम–स्नेह की भावना रखना, पीड़ित प्राणी के प्रति करुणा, सहानुभूति, सहकार, स्नेह आदि जैसी विचारधारा रखना ही एक व्यक्ति को पूर्ण रूप से मानव की श्रेणी में रखता है और उसके जीवन को सार्थक बनाता है। समकालीन समाज में मानव मानवता को भूलकर अमानवीय व्यवहार कर रहा है, जिसे देखकर समकालीन कवि दिनेश चमोला भी चिंतित है। समाज में इस अमानवीय व्यवहार और जीवन को निर्थक बनाने वाली विचारधारा का उल्लेख करते हुए कवि चमोला ने अपनी कविताओं के माध्यम से मानव जीवन को सार्थक बनाने और उसे अपनी विचारधारा और व्यवहार को सुधारने के लिए प्रोत्साहित और उतेजित किया है। मानव का मानव के साथ बर्बरता का व्यवहार करना, स्वार्थ, झूठ, बेईमानी, चोरी, घृणा की भावना रखना उसे मानव होने की श्रेणी से अलग करता है। कवि का विचार है कि अपने जीवन को सफल और सार्थक बनाने के लिए व्यक्ति को ऐसा कर्म करना चाहिए जो उसे मरने के बाद भी अमर रखे। इसलिए व्यक्ति को अमानवियता को छोड़ कर मानवीय विचारधारा को अपनाना चाहिए। तभी मानव जीवन और इस सृष्टि का कल्याण हो सकता है। व्यक्ति के जीवन की सार्थकता और अमरता का उल्लेख करते हुए कवि चमोला ने अपनी कविता जीवन में व्यक्ति को मानव– मूल्यों को ग्रहण करने और अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए जागरूक किया है।

"जीवन का होना गुणता व आकार में
कुछ तो हो ऐसा कि जो जीवित रहे
मरने या विलुप्त होने के बाद भी
मानव होना जीवन का, जीवन के बाद भी
जीवन को होता है सार्थक करना ...
भौतिक व्यक्तितत्व के न रहने पर भी यदि
जीवित रहता है कृतित्व तो वही है
दुर्लभ मानव जीवन और वही है उसकी सार्थकता ।"

रविन्द्रनाथ टैगोर का मानवता के सन्दर्भ में कथन है– "मेरा धर्म मानव धर्म है जो असीम मानवता में परिभाषित होता है।" कवि दिनेश चमोला ने भी अपनी कुछ कविताओं अपने दोहों के माध्यम से मनुष्य को सतर्क करने का प्रयास किया है। उन्होंने मानव को इस बात से सचेत किया है कि स्वार्थ और लोभ से मानव कल्याण नहीं हो सकता। उसके लिए मानव को अपने कर्मों को सुधारना होगा और न केवल अपने अपितु दूसरों के दुःख–दर्द और समस्याओं में उनकी सहायता करनी होगी तभी मानव का कल्याण हो सकता है।

"नहीं तो तुम्हारे कृत्यों का सर्पदंश
पंगु कर देगा तुम्हारी आने वाली पीढ़ियों को
धरा पर ज्ञान नहीं अज्ञानता की अमावस फैल जाएगी
अपार पीड़ा का राहु डसता रहेगा
तुम्हारे दिलो–दिमाग को
अभी भी
बहुत अधिक कुछ नहीं बिगड़ा है
चेतो मनुष्य ।"

निष्कर्ष–निष्कर्षतरू कहा जा सकता है कि समकालीन समाज में स्वहित के लिए मानव–मूल्यों का हनन हो रहा है। आज व्यक्ति के लिए धन, यश,भौतिक सुख–सुविधा आदि ही महत्वपूर्ण है। जिसे पाने के लिए वह अपने अन्तरूकरण, अपने आदर्श, आत्मसम्मान आदि को भी त्याग देता है। मानव के इस अमानवीय व्यवहार का चित्रण कवि चमोला ने अपने काव्य में किया है। साथ ही इस अमानवीयता को त्याग कर मानव को मानवीय–मूल्यों को अपनाने और अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से मनुष्य को प्रेरित किया है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ

1. चमोला, (डॉ.) दिनेश. स्मृतियों का पहाड़. अदिश प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2005. पृष्ठ 26.
2. व्यास, (डॉ.) रेणु. दिनकर रूसृजन और चिंतन. सिग्नेचर बुक्स इन्टरनेशनल, दिल्ली, संस्करण 2013. पृष्ठ 345.
3. चमोला, (डॉ.) दिनेश. स्मृतियों का पहाड़. अदिश प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2005. पृष्ठ 107.
4. चमोला, (डॉ.) दिनेश. स्मृतियों का पहाड़, अदिश प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2005. पृष्ठ 109.
5. चमोला(डॉ.) दिनेश. क्षितिज के उस पार, इरावदी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997. पृष्ठ 41.
6. शर्मा, डॉ. रामउदित. सुमित्रानंदन पंत के काव्य में युगबोध और

मानवतावाद, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009. पृष्ठ 50 .
7. चमोला,(डॉ.) दिनेश. क्षितिज के उस पार. इरावदी प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण 1997. पृष्ठ 73.
8. चमोला (डॉ.) दिनेश.कान्हा की बांसुरी, चीमादि प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2008. पृष्ठ 109.
9. चमोला,(डॉ.) दिनेश.कान्हा की बांसुरी, चीमादि प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2008. पृष्ठ 68.
10. चमोला, (डॉ.) दिनेश. स्मृतियों का पहाड़. अदिश प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2005. पृष्ठ 129.
11. चमोला, (डॉ.) दिनेश. स्मृतियों का पहाड़. अदिश प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2005. पृष्ठ 35.
12. चमोला,(डॉ.) दिनेश.कान्हा की बांसुरी. चीमादि प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2008. पृष्ठ 81.
13. चमोला, (डॉ.) दिनेश. स्मृतियों का पहाड़. अदिश प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2005. पृष्ठ 120.
14. चमोला, (डॉ.) दिनेश. कान्हा की बांसुरी. चीमादि प्रकाशन देहरादून. प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 117.
15. शर्मा, (डॉ.) रामउदित. सुमित्रानंदन पंत के काव्य में युगबोध और मानवतावाद. ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण 2009. पृष्ठ 59.
16. चमोला, (डॉ.) दिनेश. स्मृतियों का पहाड़. अदिश प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2005. पृष्ठ 22.
17. व्यास, (डॉ.) रेणु. दिनकररू सृजन और चिंतन. सिग्नेचर बुक्स इन्टरनेशनल, दिल्ली, संस्करण 2013. पृष्ठ 77.
18. चमोला, (डॉ.) दिनेश. स्मृतियों का पहाड़. अदिश प्रकाशन, देहरादून, प्रथम संस्करण 2005. पृष्ठ 82.

सलमा असलम
पीएच. डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर 06
ईमेल– salmaaslam59@yahoo-com
सम्पर्क 9682162934

मृच्छकटिकम् के कथानक पर अन्य कथानक का प्रभाव

13

डॉ0 कनक लता कुमारी

सारांश –

संस्कृत साहित्य में महाकवि शूद्रक की रचना 'मृच्दकटिकम्' प्रकरण के रूप में विख्यात है। यहाँ तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक , धार्मिक, राजनीतिक विषयों का अत्यन्त ही मनोरम चित्रण किया गया है जो सहृदय साहित्यकों के हृदय में अलौकिक आनन्दानुभूति उत्पन्न करता है। इसकी कथावस्तु पाश्चात्य नाट्यकला के अनुरूप प्रतीत होती है। पाश्चात्य समीक्षा के अनुसार नाट्यकथा विकास के पाँच सोपान होते है –आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। पश्चात्य कथा – विकास के ये सोपान मृच्छकटिकम् में भी देखा जा सकता है।

मृच्छकटिकम् का कथामक घटनाओं के घात – प्रतिघात से परिपूर्ण है। इसमें रोचकता एवं प्रवाह है । कवि ने घटनाओं की रोचकता का ध्यान रखते हुए अनावश्यक विस्तार नहीं किया है। केवल दो स्थलों पर ही वर्णन विस्तार दृष्टिगोचर होता है – पहला वसंत वर्णन में दूसरा वसंतसेना के अभिसरण के समय वर्षा– वर्णन में। ये कथा – वस्तु की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। महाकवि शुद्रक ने वसंतसेना और चारूदत्त के प्रणय – चित्रण में आर्यक की राजनीतिक कथाओं का इतना सुन्दर सामन्जस्य किया है कि पाठकों को दोनों कथाओं की भिन्नता का आभास ही नहीं होता ।

सामान्यतः मृच्छकटिकम् चारूदत्त और वसंतसेना का कल्पित प्रेम कथा पर लिखा गया प्रकरण है। चारूदत्त उज्जियनी का एक सम्मानित दरिद्र ब्राहमण है। वसंतसेन उज्जियनी की एक गणिका है जो रूपवती और गुणवती है तथा धन की अभिलाषा नहीं रखती है। वह चारूदत से प्रेम करती है। उक्त प्रकरण की मूल कथा का आधार अभी तक सवसम्मति से निश्चित नहीं हुआ है क्योंकि इस संवंध में विद्वानों ने तरह – तरह की कल्पनायें की है। यथा महाकवि कालिदास की रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् से मृच्छकटिकम् में कुछ समानता है। क्योंकि अभिज्ञान शकुन्तलम् की नायिका शकुन्तला (स्वर्गलोक की) गणिका की पुत्री है। तो मृच्छकटिकम् की नायिका वसंतसेन भी (भूलोक) की गणिका की पुत्री है। शाकुन्तल की नायिका दुर्वासा को कुपित कर कष्ट भोगती है तो वसंतसेन भी शकार को कुपित कर कष्ट पाती है। किन्तु ऐसी समानताओं के आधार पर एक दूसरे का मूल आधार निरूपित करना तर्कसंगत नहीं है।

इसी प्रकार विशाखदत के मुद्राराक्षस के अंतिम अंक का वह दृश्य जिसमें चन्दनदास को चाण्डाल वन्ध्स्थल ले जाता है, जो मृच्छकटिकम् के अंकित अंक के दृश्य जैसा ही है। इस आाधार पर कुछ विद्वान मुद्राराक्षस को मृच्छकटिकम् का मूल आाधार मानते हैं। परन्तु यह भी उचित प्रतीत नहीं होता । एक तो दोनों की कथाओं में बहुत अंतर है और दूसरा मुद्राराक्षस को मृच्छकटिकम् के बाद की रचना माना जाता है।

सोमदेव के कथासरित्सागर में रूपणिका और एक निर्धन ब्राह्मण के प्रणय कथा वर्णित होने से तथा दण्डी के दशकुमारचरितम् में एक ब्राह्मण के साथ रागमंजरी के प्रेम का वर्णन होने से उक्त दोनों काव्यो को मृच्छकटिकम् की कथा का मूल आधार नहीं माना जा सकता क्योंकि सोमदेव का समय एकादश शतक है और दण्डी का सप्तम शतक । मृच्छकटिकम् के कर्ता इन दोनों से अवश्य ही प्राचीन है। हाँ यदि यह माना जाय कि सोमदेव का कथासरित्सागर गुणाढ्य की बृहत्कथा का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है तो मृच्छकटिकम् की कथा का मूल श्रोत बृहत्कथा को ही माना जा सकता है अथवा बृहत्कथा की कहानियों के समान ही कुछ लोककथायें भी प्रचलित रही होगी, वे लोक कथायें ही मृच्छकटिकम् की कथा वस्तु का मूल श्रोत मानी जा सकती है। राज्य विपल्व वाले कथांश का मूल श्रोत भी वृहत्कथा को ही माना जाता है। मृच्छकटिकम् की कथा – वस्तु के दो अंश हैं एक तो चारूदत और वसंतसेना का प्रणय, और दूसरा आर्यक की राज्य प्राप्ति । भास के चारूदत्तम् नाटक की प्राप्ति होने पर विद्वानों ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया कि शुद्रक ने कथावस्तु का प्रथम अंश चारूदत्तम् से लिया है। चारूदत्तम् एवं मृच्छकटिकम् के कथानक में अधिक समानता है। यहाँ शब्दतः और अर्थतः दोनों की समता है। चारूदत्तम् में चार अंक है। नाटक के आरंभ में नन्दी पाठ नहीं है। सूत्रधार और नटी के संवाद से ही नाटक आरंभ होता है। इसके चार अंको की कथा प्रायेण मृच्छकटिकम् के आरंभ के चार अंको की कथा से मिलती है। दरिद्र चारूदत्तम् में चारूदत्तम् विदूषक ,शकार, विट , चेट , संवाहक , वसंतसेना, रदनिका और मदनिका नाम के पात्र वही है जो मृच्छकटिकम् में है। केवल मृच्छकटिकम् के दो पात्र – धूता और शर्विलक दरिद्रचारूदत्तम् में क्रमशः ब्राह्मणी और सज्जलक के

नाम से आये हैं।

दरिद्रचारूदत्तम् के श्लोक और संवाद स्वल्प परिवर्तन के साथ मृच्छकटिकम् में वर्णित है । इसमें उसकी कथा को सुन्दर आकर्षक और वर्णनों को काव्यमय बना दिया गया है। शूद्रक ने इसमें राज्य विप्लव की कथा को जिसका आधार वृहत्कथा है को जोड़ दिया है। इसलिये मृच्छकटिकम् को दरिद्रचारूदत्तम् का परिवद्धित संस्करण कहा जा सकता है।

दरिद्रचारूदत्तम् और मृच्छकटिकम् की समानता में किसी को आपत्ति नहीं है। तथपि कुछ विद्धानों का विचार है कि दरिद्रचारूदत्तम् को मृच्छकटिकम् भी कथा का मूलाधार नहीं कहा जा सकता । इसका कारण यह है कि अभी तक यह संदेहास्पद है कि उपलब्ध नाटक दरिद्रचारूदत्तम् भास की कृति है या नहीं कुछ आलोचक दरिद्रचारूदत्तम् और मृच्छकटिंकम् दोनों को भास की ही रचनायें मानते है। यदि इन मतों को सत्य माना जाय तो चारूदत्तम् नाटक मृच्छकटिकम् की कथा का आधार नहीं हो सकता।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब दस अंकों में विनिर्मित मृच्छकटिकम् महाकाय है और चार ही अंको में रचित दरिद्रचारूदत्तम स्वल्वकाय है तो ऐसा क्यों न मान लिया जाय कि मृच्छकटिकम् के वृहत रूप से दरिद्रचारूदत्तम् का संक्षिप्त संस्करण कर लिया गया है। ऐसा ठीक नहीं प्रतीत होता क्योकि दोनो की भाषा – शैली का अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि दरिद्रचारूदत्तम् नाटक ही प्राचीन है। मृच्छकटिकम् में सर्वत्र ही दरिद्रचारूदत्तम् की अपेक्षा परिष्कृत भाषा शैली, उदात्त भावनायें और विकसित विचार है। मृच्छकटिकम् भी प्राकृत भी दरिद्रचारूदत्तम् की अपेक्षा अर्वाचीन है । दरिद्रचारूदत्तम् की अपेक्षा मृच्छकटिकम् में छन्दोरचना चारूतर है। नाटकीय घटना संयोजन भी मृच्छकटिकम् में अधिक सुन्दर है।

उपर्युक्त वर्णनों से यही सिद्वहोता है कि दरिद्रिचारूदत्तम् ही मृच्छकटिकम् की कथा का आधार है।

महाकवि शूद्रक ने कथानक में कुछ नवीन कल्पनायें भी की है। – (1) दरिद्रचारूदत्तम् नाटक में यह नहीं दिखलाया गया है कि विदूषक किस कारण से चारूदत्त के घर जाता है, किन्तु मृच्छकटिकम् में बतलाया गया है कि यह जूर्णवृद्ध से दिये हुए शाल को लेकर जाता है। (2) दरिद्रचारूदत्तम् में वसंतसेन विदूषक के साथ घर लौटती है किन्तु मृच्छकटिकम् में चारूदत भी वसंतसेना के साथ जाता है। (3) मृच्छकटिकम् में द्यूत का विशद वर्णन है वह दरिद्रचारूदत्तम् में उपलब्ध नहीं है। इससे शुद्रक की मौलीक प्रतिभा प्रकट होती है। इसके अतिरिक्त शुद्रक ने कुछ अन्य भी छोटे – छोटे परविर्तन किये है। शैली तथा नाटकीय रचना विधान में भी नवीनता दिखलाई है। उदाहरणार्थ दरिद्रचारूदत्तम् में सूत्रधार केवल प्राकृत भाषा में बोलता है किन्तु मृच्छकटिकम् में वह संस्कृत बोलना आरंभ करता है और कार्यवशात् प्राकृत में बोलने लगता है। आर्यक और पालक की कथा तो शूद्रक की नितान्त नवीन एवं मौलिक कल्पना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1. मृच्छकटिकम्
2. दरिद्रचारूदत्तम
3. संस्कृत – साहित्य का इतिहास
4. मुद्राराक्षस
5. संस्कृत नाटककार
6. महाकवि शूद्रक

डॉ0 कनक लता कुमारी

सहायक प्रोफेसर

संस्कृत विभाग

एस0 बी0कालेज, आरा

(भोजपुरी बिहार) 802301

मो0 7004898881

Dr. Kanak Lata Kumari

C/o Sh. Debbali Singh

A/4 Sachivalaya Colony

Kankabagh, Patna

Pin 800020

(Bihar)

14

कोरोना महामारी और मानव समुदाय की भागीदारी

डॉ0 ललिता कुमारी

सारांश –

ईश्वर प्रदत जीवन, प्रकृति द्वारा प्रदत स्वस्थ तन और मन ,संपूर्ण राष्ट्र में व्याप्त भीषण भयावह स्थिति ईश्वर की अनमोल कृति मानव समुदाय की सृष्टि जैसा कि हम सभी जानते हैं मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका जीवन ईश्वर द्वारा प्रदत है और मृत्यु के लिए वह स्वयं जिम्मेवार है इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि हम इन सब के लिए व्यक्ति को ही दोषी समझे जैसा कि हमें भी विदित है संपूर्ण मानव समुदाय स्वहित स्वक ल्यान से भरा है उसमें परहित का भाव का पूर्ण रूप से अभाव है ।व्यक्ति व्यक्तिगत स्वार्थ से जकड़ा हुआ है परमार्थ से कोसों दूर है। संपूर्ण राष्ट्र एक भयावह बीमारी की चपेट में आ गया है संपूर्ण सृष्टि काल के गाल में समाने के लिए विवश है ।पूरी कायनात इस संकट से त्रस्त है इससे निजात पाने का कोई राह दृष्टिगत नहीं हो पा रहा है आज जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है वह मानव समुदाय को धरातल से रसातल की ओर उन्मुख कर सकती है ।मानव जीवन ईश्वर का दिया हुआ वरदान है शरीर मंदिर और आत्मा भगवान है इस तथ्य से हम सभी अनभिज्ञ हैं और निरंतर प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं हम सभी सुविधा संपन्न बनते जा रहे हैं ।हमारी सभ्यता संस्कृति से स्वयं को कोसों दूर करते जा रहे हैं पश्चिमीकरण का अनुकरण करते हुए अपने संस्कारों की तिलांजलि देने को तत्पर हैं ।हमारा मन मस्तिष्क में सिर्फ अंधानुकरण आराम तलबी और विलासिता आदि दूर व्यसनों की गिरफ्त में जकड़ते जा रहा है सुविधा संपन्न होने के साथ–साथ हम शारीरिक मानसिक रूप से विपन्न होते जा रहे हैं ।प्राचीन काल से बहुजन हिताय बहुजन सुखाय वसुधैव कुटुंबकम अतिथि देवो भव का भाव जन ऋजन के मन –मन में व्याप्त था परंतु अब लोगों का नजरिया ही बदल गया है सोचने समझने की। परिणाम स्वरुप मनुष्य पहले की भांति जीवन को आनंद पूर्वक व्यतीत करने के बजाए अपने ही उधेड़बुन में जीवन को रस हीन बनाकर व्यतीत करने को विवश होता जा रहा है ।मनुष्य की इच्छाएं अनंत है उन्हें पूरा करने के लिए अथक प्रयास कर रहा है परंतु इच्छाएं पूर्ण होने का नाम नहीं ले रही है वह दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

तुलसीदास की,युक्ति स्मरणीय

है–गोधन,वाजी धन, और रतन धन खान, जब आए संतोष धन, सब धन धूरि समान।

अर्थात संतोषम परम सुखम संतोष ही परम सुख है ।जिसे अपनाकर मनुष्य असंतोष के भाव से बचा रह सकता है जीवन सार्थक हो सकता है।

कोरोनावायरस जो आज भयावह रूप धारण किए हुए हैं उसे पल्लवित पुष्पित करने में हम सभी का सहयोग है जैसा कि हमें ज्ञात है कि आज हम सभी प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं ।सुविधा संपन्न बनने की होड़ में प्रकृति को विपन्न करते जा रहे हैं चाहे वह किसी भी माध्यम से होअसर तो प्रकृति पर ही पड़ रहा है हमारे चारों ओर अंधाधुंध पेड़ों की कटाई हो रही है जिसका सीधा असर प्रकृति और पर्यावरण पर पड़ रहा है ।परिणाम स्वरूप वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण ,ध्वनि प्रदूषण ,की मात्रा में दिनोंदिन बढ़ोतरी हो रही है भूमि की, उर्वरा क्षमता नष्ट हो रही है उर्वरक क्षमता को बढ़ाने के लिए रासायनिक खादों का इस्तेमाल किया जा रहा है परिणाम स्वरूप खाद्य सामग्री जो निर्मित हो रही है वह मानव व मानव जीवन के लिए हितकर नहीं बल्कि स्वास्थ्य के लिए दुष्कर होती जा रही है पेड़ पौधों के निरंतर कमी होने से वर्षा भी प्रभावित हो रही है ।परिणाम हो रहा है अकाल सुखा का सामना संपूर्ण मानव समुदाय को करना पड़ रहा है आज वैज्ञानिकता हम पर इतना हावी है कि बिना मौसम के ही हम अपनी रोजमर्रा की वस्तुओं का उपयोग करने के लिए स्वयं को समर्थ पा रहे हैं। पहले मौसमी फल और सब्जियां उगाई जाती थी अब ऐसा कुछ शेष नहीं रहा आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल कर हम जब चाहे जिस मौसम में चाहे अपनी आवश्यकता पूर्ति हेतु सभी वस्तुओं को प्राप्त कर सकते हैं समय के अनुरूप हम नहीं हमारे अनुरूप समय ढल गया है दिन को रात रात को प्रभात करने की भी क्षमता हमारे वैज्ञानिकों ने हासिल कर ली है फलस्वरूप किसी वस्तु की प्राप्ति हेतु समय की महत्ता गौन हो गई मनकी महता और धन की अधिकता मायने रखती है ।मेरे विचार से जीवन में संयम और अनुशासन नितांत आवश्यक है यदि यह दोनों ना हो तो जीवन में अभाव और प्रभाव में अंतर का एहसास ही नहीं हो पाएगा जिस प्रकार सर्दी गर्मी वर्षा ऋतु ए हमें तीनों मौसम का आनंद देती हैं यदि हम अपनी क्षमता के बल पर सर्दी मे सर्दी का आनंद न ले और अपने आसपास का वातावरण बदल दे तो वह सर्दी के आनंद से वंचित रह जाएगा ।अर्थात खुशी की अनुभूति के

लिए गम के एहसास से भी रूबरू होना आवश्यक है तात्पर्य यह है कि –जीवन जीना भी एक कला है , जिसे बिनाजाने मनुष्य जी ने चला है, ऊष्मा कि ऊष्म प्रकृति से नहीं कोमल तुहिन से कमल गला हैं,

हमें जीवन की महत्ता को समझते हुए अपनी आवश्यकता के सीमितता कायम रखते हुए जीवन के यथार्थ से अवगत होकर जीवन पथ पर नित्य नूतन ढंग से अग्रसर होते रहना चाहिए ।इसी में जीवन की सरलता, सहजता और प्रासंगिकता छिपी हुई है इस रहस्य को समझते हुए जीवन यापन करना चाहिए ।कोरोना महामारी हमारे मानव जीवन में तबाही और बर्बादी का तांडव मचा रहा है इससे पूरी धरा धराशाई होने के कगार पर आ पहुंची है ।करोना में इतने अवगुणों के बावजूद भी एक गुण है जिससे मानव समुदाय वंचित है। इसमे समानता का गुण यह बीमारी बड़ा छोटा ऊंच–नीच जातिवाद आदि दोनों से मुक्त है उसकी नजर में संसार के सभी लोग बराबर हैं कोई भेदभाव नही नजर आएगी यह गुण हम सबों के लिए ग्राह्य है। जैसा कि हम सभी जानते हैं अच्छाई और बुराई का समावेश हर परिवेश में मौजूद है इसका जीवंत उदाहरण कोरोना है इसकीसमानता रूपी अच्छाई जो है वह सिर्फ ग्रहण के योग्य है बाकी सब कुछ त्याज्य है माना कि कोरोनावायरस का रा ज्य है फिर भी एक आस्था और विश्वास है इस पर विजय निश्चित है।

अंधेरा का चहू ओर है घेरा ,फिर भी उम्मीद है कि होगा रोशन सवेरा, जीवन में होगी खुशियों का डेरा, हमें अपनी गलतियों से सबक लेते हुए प्रकृति की महत्ता को समझते हुए जीवन की सार्थकता को जीवन में कायम कर मन को संयम कर जीवन का भरपूर आनंद लें अपने अपनों के साथ साथ पूरी सृष्टि के हित हेतु अपने विचारों की धारा को सही किनारा देने के लिए नित्य प्रति हो त त्पर ताकि किसी भी प्रकार का संकट न आने पाए भूपर ।जाति धर्म को लेकर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं पनपने चाहिए व्यक्ति आपस में एकता समानता सद्भाव भाईचारे के भाव से भरा रहे तनिक भी उसके मन में ईर्ष्या द्वेष ग्लानि का ना होने पाए प्रवेश, सादगी और ताजगी से परिपूर्ण हो जीवन तनिक भी दुखित ना हो तन मन प्रसनचीत प्रफुल्लित हो जनजीवन ऐसी स्थिति तभी उत्पन्न हो सकती है जब हम स्वयं मिलजुल कर प्रकृति के हित के लिए सदैव तत्पर रहें आधुनिकता की होड़ में सभ्यता संस्कृति को भूले नहीं वरन हमेशा स्मरण रहे कि इन्हीं से जीवन रूपी स्रोत प्रवाह मान होती है इनसे दूरी हमें अपने वजूद और अस्तित्व से कोसों दूर ले जा सकती है जहां हम अपनापन के अहसास से वंचित हो सकते हैं ।चाहे हमारा जीवन संपन्न ही क्यों ना हो उसके बावजूद भी हम स्वयं को विपन्न ही समझेंगे ऐसी नौबत न आने पाए जीवन में सबका साथ सबका विश्वास बना रहे ।हर जनमन नित्य प्रति ले प्रण मिलकर कोरोनावायरस का वजूद मिटा कर रहेंगे हम ।सब त्याग बलिदान के लिए तत्पर हैं इस महामारी से निजात पाना है अब।

,, कोरोना का कहर, भय आतंक ,संत्रास ,फैला इस कदर,
संपूर्ण विश्व गली मोहल्ला चौक –चौराहा और सुनी–सुनी है डगर।

21वी सदी जा रही रसातल में तबाही मची है पूरी धरातल में,कायनात में पहुंच चुके कयामत, हे मानव अब तुम न करो हिमाकत।सदियों पुरानी सभ्यता संस्कृति हर पल हर क्षण जिस से जुड़ी थी प्रकृति,आधुनिकता ,विकासवादी ता ,अहंकार मानवता स्वयं की श्रेष्ठता।अपना प्रभुत्व वर्चस्व पूरी सृष्टि पर आधिपत्य, इन भावों से ओतप्रोत मानव श्रृंखला टूट कर रही बिखर।नित नए अनुसंधान वैज्ञानिकों के बड़े–बड़े योगदान, ईश्वर रचित चांद ,सूरज ,तारे मनुष्य भी जब स्वयं निर्मित करने को विचारे।तो फिर कोरोना कयो न दिखाएं दिन में तारे, कोरोना से बिल्कुल भी ना डरो।अपने पूर्वजों के लक्षये कदम पर पग धरो। आधुनिकता की आंधी में न बहो, प्राचीन सभ्यता संस्कृति की शरण गहो। ब्रह्म मुहूर्त ,योग ,व्यायाम ,प्राणायाम, जलपान इन शब्दों के अर्थों से हो रूबरू, पुरानी लीक को अपनाकर नए जीवन को करो शुरू। स्वयं न बनो गुरु, शिष्य बन कर जीवन जीना, नदियों से सीखो निरंतर गतिमान रखकर स्वयं न जल पीनागति ही जीवन है ,स्थिर समंदर का पानी है खारा, गतिमान रहकर ही जीवन रूपी ना्वको मिलता है किनारा। अभी भी नहीं हुई है देर ले सबक करें हित, संपूर्ण मानवता का ।वरना को रोना कर देगा सर्वनाशये तो है पक्का। मानाप्रसिद्ध है लोकोक्ति जब जागो तब सवेरा, पर इसे भी ना भु लो भाई मेरा। अब पछतावा होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत, मानव निर्मित है यह कोरोनारुपी विपदा का संकेत, सजग हो जाओ चराचर जगत जड, चेतन प्रकृति कर रही सबको सचेत, ठान ले मन, फैला दें जन–जन में यह भाव अब न पड़ने देंगे किसी बीमारी का प्रभाव। अब न करेंगे नादानी प्रकृति से नहीं करेंगे छेड़खानी वरना आएगी बड़ी परेशानी। वृद्धावस्था प्रौढ़ावस्था युवावस्था किशोरावस्था से कोसों दूर बाल्यावस्था में ही देनी होगी कुर्बानी। अपने सपनों को करो पूरी इसी जन्म में, क्या पता पुनर्जन्म हो ना हो, ईश्वर मनुष्य की शृष्टि करने की दोबारा गलती करे ना करें,,।

निष्कर्ष–

2020 जीवन का एक ऐसा किस्सा है जो जीवन के प्रति प्रेम और मानव का मानव के प्रति सृष्टि की हर कृति चाहे वह सूक्ष्म हो या विशाल सबकी महता को समझाने का हिस्सा साबित हुआ प्राचीनता की महिमा प्रकृति की गरिमा को हृदय अंगम करते हुए सृष्टि के रंध्र रंध्र की कृतज्ञता मांगते हुए जीवन को यथार्थ से अवगत

कराते हुए हम सभी को जीवन रूपी पथ पर नित प्रति नूतन बंन कर्म पथ पर निरंतर वसुधैव कुटुंबकम के भाव से भरकर अग्रसर होना ही मानव जीवन की सार्थकता को दृष्टिगत करने में सहायक सिद्ध होगा और हम सभी को ईश्वर प्रदत मानव जीवन में मानवता के गुणों का समावेश करने का प्रयास ठीक उसी प्रकार से करना होगा जिस प्रकार एक चींटी अपने से कई गुना भारी वस्तु को उठाए अपने कर्म रद्द पथ पर निरंतर तल्लीन रहती है बिना किसी से शिकवा शिकायत किए हमें भी अपना जीवन आनंद पूर्वक जिए ऐसी प्रेरणा नन्हीं चींटी से ले सकते हैं क्योंकि हम सबको यह विदित है कि व्यक्ति कोई भी हो वह ज्ञान से परिपूर्ण नहीं हो सकता आदि से अंत काल तक अब देखते ही रहते हैं जीवन इसी का नाम है निरंतर बिना रुके झरने की तरह जीवन की गतिविधि अविरल पहाड़ की तरह अडिग अटल भूमि की तरह अचल सूर्य की तरह तेज से प्रखर चांदनी की तरह शीतल तारों की तरह झिलमिल चिड़ियों की तरह चहचहाहट से भरी भौरों की तरह हो गुंजायमान तितली की तरह सर्वत्र विद्यमान नदियों की तरह गतिमान मानव जीवन का सार इसी संसार रूपी उपमा ओ से शोभायमान तात्पर्य यह है मनुष्य धन से नहीं धनवान स्वस्थ तन सात्विक मन निस्वार्थ कर्म मानव का सबसे बड़ा है धर्म मनुष्य एक साधारण सा इंसान वह चाह कर भी नहीं बन सकता भगवान अपने कर्मों से ही हो सकता है वह महान।

डॉ0 ललिता कुमारी

सहायक प्राध्यापिका

आर0 के0 डी0एफ0 विश्वविद्यालय

गाँव कनदरी पी0 ओ0 मनडर

रांची (झारखण्ड)

15

'ममेतर को साधते आत्मान्वेशी अज्ञेय'

डॉ0 मनोज पण्ड्या

सारांश –

हिन्दी साहित्य पार्श्व में प्रयोगवाद और नई कविता के पुरस्कर्ता अज्ञेय निःसन्देह सर्वाधिक प्रखर व्यक्तित्व के हस्ताक्षर हैं। वे आधुनिक हैं, नए हैं, 'बीहड़ में चलने वाले' तथा 'अनुभव की भट्टी में अपनी अन्तर्दृष्टि को शोधित करने वाले कवि हैं। 'बिजली की सी त्वरा और अमोघ पंजे के समान बलिष्ठ जीवनानुभूतियों को उन्होंने भोगा है और पौधे की तरह कचरा–राख, अशुच आदि को अपने तक सीमित रखकर रूप–शिव तथा भाव–सत्य का सृजन किया है। कवियों में वे पूरब और पश्चिम के, पुरातन और अधुनातन के, सामाजिक यथार्थ–बोध और व्यक्तिगत अध्यात्म बोध के बीच 'सेतु' है।[1]

समस्त सृजन के उत्स में जीवन के प्रति अखण्ड आस्था है, चेतना के संस्कार की दिशा में प्रयाण है। उनकी स्वयं की स्वीकारोक्ति है कि जीवन–साधना की अवहेलना कर्मवीर का कर्म नहीं है। सृजन और प्रतिभा में उनकी निष्ठा है। अंतहीन तपस्यावत् जीवन में मृत्यु भी शिवमय है।

आत्मान्वेषण के शोधक

अज्ञेय की काव्य–यात्रा में आत्मान्वेषण और रहस्य चिंतन की प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही मिलती है। उनकी यह अन्तर्मुखता एवं आत्मान्वेषण की चेश्टा, जिज्ञासा स्वयं को जानने, जानकर अपने कर्तव्यों का निर्धारण करने की सायास चेश्टा है। यह स्वरूप ईश्वरोन्मुखी नहीं है, स्वयं स्पष्ट किया,

''मैं भी एक प्रवाह में हूँ
लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है।''[2]

उनकी समस्त प्रेरणाओं का मूल स्त्रोत 'शक्ति अणु', शक्ति–केन्द्र है जिसमें रहस्यात्मकता का पर्दा खोलकर उनमें मिल जाने की आकांक्षा ही अभीष्ट है। यह यात्रा न केवल अभय देती है बल्कि कर्तव्य–अकर्तव्य निर्धारण में भी सहयोग देती है।

अनेक स्थलों पर आत्म विश्लेषण प्रवृत्ति के कारण पराजय–अनुभूति एवं ठोकर खाने की मनःस्थिति दिखाई पड़ती है।

'वह ऐसा धनु है, जिसके साधने से प्रत्यंचा टूट गई है। किन्तु साथ ही यह भी जानना कि यह क्या टूट जाना ही हार जाना है। कवि का स्वयं से प्रश्नाकुल होना, भीतर झाँकना एवं पहचानना कि पीछे अहं छिपा है। इसी अहंकार के मारे अन्धकार के सागर के किनारे वह ठिठक गया होता है। इसी आत्म विश्लेषण की प्रवृत्ति से प्रसूत स्वाभाविक शक्ति से कवि द्रष्टा मात्र बन जाना चाहते हैं, मुक्त जीव की तरह,

''वह जो पंछी
खाता नहीं, तकता है
पहरे पर एकटक जागता है
होगा, होगा जन।
मैं वह पक्षी हूँ, जो फल खाता है...
पर एक
जागता है, ताकता है,
कौन ?
मैं हूँ, जागरूक पहरेदार।''[3]

इसी पहचानने की श्रृंखला में 'दर्द' को उपलब्धि रूप में पाया गया। कवि को लगता है, ''दर्द मानव और मानव के बीच की कड़ी है। इस दर्द के आधार पर दीन–दुःखी, पददलित और पराजित व्यक्तियों का 'मैं' हम हो जाता है।''[4]

निकट से दुःख को जानना–समझना–भोगना वस्तुतः समष्टि से जुड़ने की प्रक्रिया है और इस भावना का हृदय में दृढ़ होना ही पारस्परिक दुःख से मुक्ति का साधन है, यही जीवन का 'माँजना' है।

''दुःख सबको माँजता है। और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने,
किन्तु, जिनको माँजता है,
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।''[5]

अज्ञेय का आत्म विश्लेषण वस्तुतः जीवन के प्रति निष्ठा, सृजनात्मक आस्था, प्यार और दर्द की मानवीय चेतना पर आधारित हैं। कवि की प्रणति 'स्वयंभू आलोक मन' के प्रति है। इसमें असीम शक्ति से साक्षात्कार है, विराट में स्वयं को आत्मलीन करने की भाव निर्मिति है। अज्ञेय की प्रतिनिधि रचना 'नदी के द्वीप' आत्म संस्कार की भूमिका प्रस्तुत करती है, मिटकर भी नए अस्तित्व, व्यक्तित्व का आकार लेकर खड़े होने की आस्था प्रकट करती है। इसी भाँति

'मछली' जिजीविशा और आत्मान्वेषण का प्रतीक बनकर उभरी। विराट से घिरी रहकर भी वह उसकी अगाधता नहीं जान सकी।

''हम निहारते रूप। काँच के पीछे
हाँप रही है मछली। रूप तृशा भी
(और काँच के पीछे)। हैं जिजीविशा।''[6]

अज्ञेय ने 'अर्थहीन आकारों की भीड़ को अस्वीकृति देकर अँधेरे के सत्य और आत्म चिंतन की गहराईयों को नापा है। 'असाध्य वीणा' लंबी कविता 'स्वयं अपने को शोधने की प्रक्रिया का संकेत देती है। 'मेरी लय तेरी साँसें, भरे पूरे रीते, विश्रांति पाए' की याचना–प्रार्थना से प्रसूतः अवतरित हुआ संगीत स्वयंभू हैं जिसमें सोता है अखण्ड ब्रह्म का मौन अशेष प्रभामय, स्वयं का नहीं अपितु विश्व का है,

''श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था, स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था।'' [7]

वस्तुतः अथ के उद्धत विद्रोही अज्ञेय काव्य–यात्रा–क्रम की प्रौढ़ता पर अपने अहं को विगलित करते हुए आत्मचिंतन, विश्लेशण, अन्वेशण, साक्षात्कार, बोध और रहस्य की भूमिका पर दिखाई देते हैं।

ममेतर को साधती समष्टि मूल्य संपृक्त सृजन गाथा

घोषित सत्य, अज्ञेय का काव्य गहन एकांतिक और आत्यंतिक आत्मनिष्ठता का परिचायक है, के इतर उनका काव्य मानवीय अस्तित्व को केन्द्र में रखकर व्यक्ति की अद्वितीयता और गरिमा को सुरक्षित रखने का सचेत प्रयास साध्य भी है।

''एक बार वैयक्तिक जीवन की उदात्त और गंभीर अनुभूतियों का प्रत्यय हो जाने पर कोई भी कवि क्रमशः बहिर्मुख हो सकता है। आत्म परितोष का अर्थ केवल कवि व्यक्ति के परितोश से नहीं, वह एक वृहत्तर और व्यापक परितोष है।''[8]

अज्ञेय का राग तत्व समाज सूत्र से बँधा हुआ है। उनकी परवर्ती रचनाएँ विनयशील समर्पण और अहं विसर्जन का आभास देती है। वे व्यक्ति के केन्द्र से समाज की यात्रा करते है। उनकी यथार्थवादी दृष्टि 'ममेतर' संबंध दृष्टि को स्थापित करती है।

अज्ञेय में सामाजिक वैशम्य के प्रति गहरा क्षोभ है। यद्यपि कवि के लिए 'मौन भी अभिव्यंजना है' लेकिन युगीन यथार्थ से कवि ने मुँह नहीं मोड़ा है। वे स्वयं परिचय कराते हैं, ''यह युग संशय, अस्वीकार और कुण्ठा का है। अस्वीकार का व्यापक स्वर सर्वोपरि है।'' यही कारण है कि उनकी कविता किसानों की दुःसाध्य विषमता अभावों के चित्र उकेरती है, महाजनों के शोशण और मुफ्त की कमाई पर व्यंग्य करती है।''[9] दूसरी ओर खून–पसीना एक करके फसल उगाने वाले किसानों की फटेहाल ज़िन्दगी का विरोधाभासी चित्र भी उकेरती है,

''हरे–भरे हैं खेत मगर खलिहान नहीं
बहुत महतों का मान, मगर दो मुठ्ठी धान नहीं।''[10]

कहने को देश स्वाधीन हो गया, हरा भरा प्रतीत है लेकिन धरतीपुत्र

भरी हैं आँखें / पेट नहीं
भरे हैं बनिए के कागज़ / टेंट नहीं।''[11]

शोषक–शोषित भाव मात्र दिखावटी नहीं, नपुंसक नहीं है। यथास्थिति का वर्णन तीखे व्यंग्य के कारण पाठक की चेतना पर सीधा प्रहार करता है, महलों–ऊँची दुकानों पर गद्दीनशीन की अमानवीय कृत्य को ललकारते हैं,

''तुम सत्ताधारी मानवता के शव पर आसीन
जीवन के चिर–रिपु, विकास के प्रतिद्वन्दी प्राचीन
तुम श्मशान के देव! सुनो यह रणभेरी की तान
आज तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।।''[12]

कवि स्वतंत्रता के लिए ''पैंतीस कोटि शिखाएँ जलाने की बात करता है। उन्हें विश्वास है कि पद दलितों के डर से उठकर सारा नभ छा लेगी ज्वाला। इन रचनाओं में कवि की निर्बाध आतुरता, स्वातन्त्र्य आग्रह, दृढ़ संकल्प शक्ति अभिव्यक्त हुई है।

युगीन विचारधारा, सामाजिक, राजनीतिक चिंतन–दर्शन का प्रभाव अज्ञेय की वैचारिकी पर अवश्य पड़ा है पर वे किसी भी वाद, विचारधारा के प्रचारक नहीं बने हैं। मानवतावादी दृश्टि प्रेरित विचारधाराओं में विनोबा भावे, राममनोहर लोहिया, मानवेन्द्रनाथ राय, जयप्रकाश नारायण का प्रभाव देखा जा सकता है। उनकी दृश्टि जीवन के यथार्थ से अधिक संपृक्त है। यह यथार्थ बाह्य घटनात्मक कम, आंतरिक प्रभाव मूलक अधिक संवेद्य बना है।

विगत महायुद्घों, विशेषतः द्वितीय विश्व युद्ध में हुए आण्विक संहार पश्चात् मानव आस्था खंड–खंड हो गई। मानव की सर्जना मनुश्यता पर जब भारी पड़ी, मानवता त्रस्त हुई तब कहा जाता था कि प्रकृति का पालन और पोशण सूरज करता है, लेकिन

मानव का रचा सूरज,
मानव को भाप बनाकर सोख गया।
पत्थर की लिखी हुई यह
जली हुई छाया

मानव की साखी है।''[13]

महाविनाश की लीला से उपजी विभीशिका में मनस बाहर–भीतर चरमरा गया। इसने ईश्वर को भी नहीं बख्शा।

''ईश्वर रे, मेरे बेचारे
तेरे कौन रहे अधिक हत्यारे।''[14]

''ऐसे समय में जबकि हिन्दी का साहित्यकार अपने को खोया पाता है और जब वह अपने को ही केन्द्र बिन्दु मानकर मानवता की अखंडता खोजने और मानवता का पुनर्मूल्यांकन करने निकलता है, तो उसके 'साहस' की सराहना करनी पड़ती है।''[15]

अज्ञेय ने चापलूसी, भ्रष्टाचार, लबारिमत पर व्यंगय करते हुए प्रश्न किया, 'क्या तिकटी ढ़ोने वाला हर डोम, हर जल्लाद का हर पिट्ठू, सिर्फ ढुलाई के मिस मसीहा हो जाता है। अज्ञेय ने स्वतंत्र देश के शानदार शासकों, जन प्रतिनिधियों को भी नहीं बख्शा जिनमें राष्ट्रीयता रंच मात्र भी नहीं हैं,

''जियो मेरे आजाद देश के सांस्कृतिक प्रतिनिधियों
जो विदेश जाकर विदेशी नंगे देखने के लिए पैसे देकर
टिकट खरीदते है। पर जो घर लौटकर देसी नंगे ढँकने के
लिए
खजाने में पैसा नहीं पाते।''[16]

यांत्रिक सभ्यता और महानगरीय त्रास पर संभवतः सबसे पहले लिखने वालों में अज्ञेय अग्रगण्य हैं। मानव मूल्यों को सर्वोपरि मानने वाले अज्ञेय को सांस्कृतिक ह्रास स्वीकार्य नहीं। विद्यानिवास मिश्र समीक्षित करते हैं,

''पश्चिम की यांत्रिक सभ्यता की सिरजामी गिरोह संस्कृति के विरूद्ध उनकी कविता में जो तीव्र आक्रोश है, वह न तो जीवन के अनियंत्रित और उद्दात आमोद–प्रमोद की ओर तो जाने वाला है, न श्मशान में घर बनाकर अघोरी बनाने वाला है और न विकृतियों के बहाव में डूबने वाला ही है। उनका आक्रोश सनातन जीवन लोक की धूप को आमंत्रित करने वाला है।'' [17]

शहरों की स्थिति विसंगत, त्रासद है। एक तरफ अमीरों हेतु नई महानगरीय संस्कृति विकसित हो रही है किन्तु समाज का निम्न, निम्न मध्यमवर्ग लोगों का जीवन कचरे से भी बदतर है। उनकी पीड़ा कोई नहीं सुनता तब कार्यमन व्याकुल हो उठता है,

''बोलो, उसको देने को है
कोई उत्तर
क्या ये खेल तमाशे, ये सिनेमा–घर, थिएटर?
रंग बिंरगी बिजली द्वारा किए प्रचारित
द्रव्य जिन्हें वह कभी नहीं जानेगा?''[18]

इसी के प्रकारांतर अज्ञेय अन्तरराष्ट्रीय परिवेश में 'पश्चिम के समूहजन' की दोगली मानसिकता का उद्घाटन करते हुए शोषण–ध्वंस की चालाकियों का भण्डाफोड़ करते हैं। स्वातंत्र्य के नाम पर मारते है– मरते हैं, क्योंकि स्वातंत्र्य से डरते हैं।

वस्तुतः अज्ञेय के काव्य से मनुष्य मात्र की पीड़ाएँ, दुःख–दर्द यत्र–तत्र चित्रित हैं। कवि की सहानुभूति उन सब के प्रति हैं जो दीर्घकाल से भूखे रहने के कारण रोगग्रस्त हो गए, पत्ते खाए हों, कोड़े खाए हो,

''क्योंकि जिसने कोड़ा खाया है
वह मेरा भाई है
क्योंकि यों उसकी मार से मैं भी तिलमिला उठा हूँ
इसके लिए मैं उसके साथ नहीं चीखा–चिल्लाया हूँ
मैं उस कोड़े को छीनकर तोड़ दूँगा''[19]

अज्ञेय व्यक्तिवादी, आत्मेन्वेषी रचनाकार होने के बावजूद समग्र लोक कल्याण संपृक्ति भाव प्रेरित ममेतर शिव की रक्षा करने वाले सर्जक हैं। उनकी सृजित मानवता आरोपित नहीं सर्व ग्राहय, भावसिक्त, अनुभवजन्य संवेदना है, जिसका वरेण्य एकमात्र सही है,

''मेरे हर सुख में
हर दर्द में, हर यत्न, हर हार में
हर साहस, हर आघात के हर प्रतिकार में,
धड़के, नारायण। तेरी वेदना
जो गति है मनुष्य मात्र की।''[20]

समग्र साहित्य जगत को सत्यान्वेषी, ममेतर शुभ साधक अज्ञेय के युग बोध, सामाजिक चेतना का सर्व फलदायी प्रदेय सही है,

''मैं संघर्ष हूँ, जिसे विश्राम नहीं
जो है मैं उसे बदलता हूँ।
जो होगा उसे मुझे ही तो लाना है।''[21]

सन्दर्भ :

1. राजेन्द्र प्रसाद : 'अज्ञेय : कवि और काव्य' 2001, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, आमुख
2. अज्ञेय : पूर्वा रहस्यवाद
3. अज्ञेय : सागर मुद्रा पृ. 32
4. अज्ञेय : इत्यलम् पृ. 156
5. अज्ञेय : हरी घास पर क्षण भर, पृ. 55

6. अज्ञेय : अरी ओ करूणा, प्रभामय, पृ. 82
7. अज्ञेय : 'आँगन के पार द्वार' से 'असाध्य वीणा', पृ. 78
8. नंद दुलारे वाजपेयी : नई कविता, पृ. 131
9. अज्ञेय : बावरा अहेरी, पृ. 21
10. अज्ञेय : अरी ओ करूणा प्रभामय, पृ. 43
11. वही
12. अज्ञेय : पूर्वा, पृ. 49
13. अज्ञेय : अरी ओ करूणा प्रभामय, पृ. 156
14. अज्ञेय : कितनी नाँवों में कितनी बार, पृ. 78
15. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेयः द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 77
16. अज्ञेय : महावृक्ष के नीचे, पृ. 42
17. विद्या निवास मिश्राः आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि अज्ञेय, पृ. 29
18. अज्ञेय : इन्द्र धनुष रौंदे हुए से, महानगर, रात– 58
19. वही, पृ. 62
20. अज्ञेय : कितनी नाँवों में कितनी बार, पृ. 34
21. अज्ञेय : इंद्र धनुष रौंदे हुए ये, पृ. 21

प्रस्तुतकर्ता
डॉ. मनोज कुमार पंड्या
सहआचार्य 'हिन्दी',
श्री गोविन्द गुरू राज. महाविद्यालय,
बाँसवाड़ा (राज.) पिन – 327001
(पूर्व सहअध्येता, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला)
Email : krishnamurty28@gmail.com
mahisrijanmanjoosha2013@gmail.com
Mobile +91 - 9414308404, 8290126789

16

मधुकान्त जी की कहानियों में अध्यापक जीवन

बबली

अंग्रेजी माध्यम स्कूलों के कुपबन्धन से मोहभंग तथा सरकारी अध्यापकों का गैर–सरकारी अंग्रेजी माध्यम के प्रति आकर्शण , गैर–सरकारी स्कूलों में व्याप्त ''डोनेशन रूपी लूट'' मैनेजमेंट सीट के नाम पर भ्रश्टाचार और जन–साधारण का अपने बच्चे को अपनी आर्थिक सीमाओं को तोड़ कर उच्च वर्ग की होड़ करने की प्रवृति का खुलासा किया है ।

इस कहानी के माध्यम से मधुकान्त जी ने बताया है ि कइस समय लोग अन्धाधुंध अपने बच्चों को सरकारी स्कूल से निकाल कर प्राईवेट स्कूल में दाखिला करवाने के पक्षधर हो गए थे । इन विद्यालयों की भारी फीस, टैस्ट तथा अंग्रेजी सभ्यता से प्रेरित वेशभूशा सभी आकर्शण का केन्द्र थे । इसी विचारधारा से प्रेरित माता–पिता समाज में स्वयं को सम्मानित तथा स्टेटस वाला समझते थे ।

इसी परिप्रेक्ष्य में कहानी के मुख्य पात्र अध्यापक किताब सिहं स्वयं सरकारी विद्यालय में कार्यरत हैं, किन्तु गुणगान प्राईवेट स्कूलों का करता है । उनकी धारणा है कि प्राईवेट स्कूलों में ज्यादा पढ़ाई होती है, हालांकि स्वयं वहॉ पढ़कर जीविका अर्जन करता है । अध्यापक अपने बेटे का दाखिला प्राईवेट स्कूल में करवाना चाहता हे इसलिए वह प्रिंसीपल से मिलने जाता है प्रिंसीपल उसे अपने ही स्कूल में दाखिला करवाने की सलाह देता है क्योंकि उसने टैस्ट पास नहीं किया है सर में अध्यापक हूॅ अगर मेरे बेटे का दाखिला नहीं हुआ तो उसका एक साल बर्बाद हो जाए । प्रिंसीपल सर कहते हैं हमारी भी कुछ सीमाऐं हैं हमें इसे दाखिला नहीं दे सकते । किताब सिहं तथा प्रिंसीपल की छोटी सी नोक–झोंक होती हैं । प्रिंसीपल का अपने ही स्कूल में बेटे का दाखिला कराने की सलाह देने पर वह स्वयं ही अपने स्कूल की बुराई कर देता है लेकिन दबी जुबान से । किताब सिहं को प्राईवेट स्कूल में पुत्र के दाखिले का सपना टूटता नजर आता है । वह अपने स्कूल का सर्वशिक्षा अभियान और शिक्षा आपके द्वार जैसी सरकारी सुविधाओं की प्राईवेट स्कूलों से तुलना करता है वह स्वयं सोचता है कि आखिर निजी विद्यालयों में क्या विशेशताऐंह" जो सबको आकर्शित करती है । वह खुदबुदाता हुआ कार्यालय से बाहर आ जाता है । दीपक तले तो अंधेरा होता ही है । अन्न पैदा करने वाला किसान भी तो कभी–कभी आधा पेट खाली लेकर सो जाता है ।

तभी उसे परिचित अजीत मिलते हैं जो उसी विद्यालय में अध्यापक हैं । किताब सिहं उसे सारी बात देता है तथा अजीत भी उसे सहायता का आश्वासन देता है । अब दाखिले के लिए आशा की किरण दिखाई देती है । अजीत उसे मैनेजर के पास चलने का सुझाव देते हैं तथा उसे मिलने का समय तय कर किताब सिहं घर आ जाता हे । घर आते ही पत्नी भी दाखिले के विशय में प्रश्नों की झड़ी लगा देती है । वह हल्के मन से हॉ में नहीं अपितु 'हो जाएगा' कहकर पत्नी से पीछा छुड़ता है ।

निश्चित समय पर किताब सिहं और अजीत विद्यालय के मैनेजर से मिलने जाते हैं । अजीत मैनेजर का परिचित है । अतः मैनेजर उससे दोपहर में आने का कारण पूछता है । अजीत अपने मित्र के पुत्र की छठी कक्षा में दाखिला करवाने की कहता है । छठी में तो पहले ही ओवर लोड है – लाला जी ने गर्दन हिलाते हुए कहा । मैनेजमैंट कोटे की सीट पर बीस हजार डोनेशन चल रहा है । इच्छा हो तो मास्टर जी से पूछ लो– मैनेजर साहब ने पानी पीकर ऑख खोल दी ।

इतना सुनकर दोनों बाहर आ जाते हैं तथा अजीत उसे डोनेशन द्वारा दाखिले का मार्ग दिखा कर कक्षा में चला जाता है । किताब सिहं के मन में उथल–पुथल मच जाती है । डोनेशन के नाम पर रिश्वत तो क्या शिक्षा बिकाऊ हो गई है जहॉ विद्यालय में दाखिले की एवज में भारी भरकम राशी लूट ली जाती है । किताब सिहं स्वयं रिश्वत का पक्षधर नहीं है । वह अपने बारे तथा अपने विद्यालय के विशय में सोचता है जहॉ से प्रति वर्श कितने बच्चे शिक्षा ग्रहण कर चले जाते हैं किन्तु आज वह एक बच्चे की व्यवस्था करने में असमर्थ है । उसके अनुसार अध्यापक के बच्चे के लिए सीट पक्की होनी चाहिए । वह साईकिल चलाता हुआ विचार मग्न रहता है । अचानक उसकी दृश्टि उसके अपने सरकारी विद्यालय पर पड़ती है । बड़े–बड़े खेल के मैदान, आधुनिक प्रयोगशालाएं, खुले हवादार कमरे, योग्य अध्यापक उसे प्राईवेट स्कूल से बेहतर लगता है । वह विद्यालय के मुख्य द्वार पर खड़ा होकर आत्ममंथन करता है ।

हमारे मुख्य द्वार पर कोई टोकने वाला संतरी नहीं । शिक्षार्थी का सीधा प्रवेश तो फिर गड़बड़ कहॉ है ।

किताब सिहं समझ चुका है कि यह मात्र इच्छा शक्ति की कमी है । निःसंदेह सरकारी स्कूल प्राईवेट से बेहतर है ।

यह हमारे लिए लज्जा की बात है हम अपने बेटे को अपने विद्यालय में न पढ़ाकर प्राईवेट स्कूलों में पढ़ाते हैं । ''अपनी मां को काली समझ दूसरी मॉ की गोद में जा बैठते हैं ।''ही विद्यालय में छठी कक्षा में दाखिल करवाने का मन बना लेते हैं । इस कहानी में दो मुख्य बातें सामने आती हैं । प्रथम प्राईवेट विद्यालयों के प्रति आकर्शण, विद्यालयों द्वारा डोनेशन के नाम पर रिश्वत दूसरा आत्ममंथन द्वारा सरकारी विद्यालयों के गुणों को जानना । इस कहानी से सरकारी विद्यालयों के प्रति रूझान है ।

निश्कर्श यह है कि नाम बड़े दर्शन छोटे वाली कहावत निजी स्कूलों पर खरी उतरती है । आवश्यकता है मध्यमवर्गीय समाज के जागरूक होने की इसी प्रकार ''विद्यालय मर गया' इस कहानी के माध्यम से मधुकांत जी ने शिक्षा जगत की मृत होती संवेदनाओं को व्यक्त करने वाली प्रमुख कहानी है । शिक्षा जगत की विसंगतियों की दलदल में फंसकर एक आदर्श अध्यापक के आदर्श कर्तव्य तथा नैतिक मूल्य किस प्रकार दम तोड़ देते हैं – इसकी जीवन्त अभिव्यक्ति इस कहानी में है ।

विद्याव्रत मर गया इस कहानी में गूढ़ अर्थ लिए हैं । जिन्दा रहना यदि जीवन का सूचक है तो मरना निश्चित तौर पर मृत्यु को सम्बोधित करता है किन्तु यह जिन्दा रहना तथा मरना शारीरिक न होकर मूल्यों तथा आदर्शों को जीवित रहना तथा समाप्त होना है । विद्याव्रत एक योग्य परिश्रमी होनहार छात्र चहुंमुखी प्रतिभा का धनी, ऑल राऊंडर विद्यार्थी श्रेश्ठ अध्यापक बनने के सपने लेकर जब अध्यापन क्षेत्र में आता है तो भ्रश्ट, कामचोर, चापलूस तथा सामाजिक शोशण करने वाले वर्ग के चंगुल में फंस जाता है जहॉ से वह लाख यत्न करने पर भी निकल नहीं पाता तथा बुराई की दलदल में धंस कर अपना अस्तित्व ही खो बैठता है । मधुकांत के भुक्तभोगी अध्यापक की व्यथा, पीड़ा तथा विवशता उसी की लेखनी में व्यक्त की है ।

विद्याव्रत के द्वारा लिखित चार पत्र उसके मूल्यों के जीवित रहने से मूल्यों के मरने तक की यात्रा की रक्षा करने का प्रयत्न नहीं किया होगा । किन्तु यह भी उतना ही सत्य है बुरे लोगों की भीड़ में उसके प्रयास प्रर्याप्त नहीं रहते । विधाव्रत का मित्र भी उसके पत्र पढ़कर व्यथित है तथा एक नेक दिल अध्यापक के आदर्शों के किटे को ढूढते देखकर पीड़ित है तथा उस पीड़ा से दश को पाठकों को भी अनुभव करवाना चाहता है ।

प्रथम पत्र में उसने कस्बे के स्कूल में प्रथम नियुक्ति के समय शिक्षा जगत के कटु अनुभवों, विद्यालय की अनुशासनीहता, मुंह लगे चपरासियों की अभद्रता, मुख्याध्यापक की उदासीनता, उदण्ड तथा अनुशासनहीनता छात्रों के व्यवहार तथा विद्यालय की अव्यवस्था की पीड़ा को व्यक्त किया है । ऑफिस में मुख्याध्यापक की प्रतीक्षा में बैठे विधाव्रत को एक चपरासीनुमा अन्दर आकर पूछता हे :–

''कहिए आपको किस तै मिलना से''

''यहां के मुख्याध्यापक से, मेरी इस स्कूल में नियुक्ति हुई है ।'' विधाव्रत ने कहा

''देखो मास्टर जी, अपणे कागज तो मुझे दे दो, हैडमास्टर साहब तो अपने घर गए हैं ।

''आपको मेरा आश्चर्य बढ़ रहा था ।'' ''हॉ मुझे, मैं यहां का सैकिंड हैडमास्टर हूॅं, उनके आने पर मैं आपके कागज–पत्र उन्हें सौंप दूॅंगा और आप कक्षा में जाणा चाहो तो सातवीं–बी की घंटी खाली है । और कागज उसे सौंप देता है । बच्चों का इधर–उधर घूमते देखकर विधाव्रत चपरासी से कहता है मैंने सोचा रिसेस चल रही है।''

''यो तनै रिसैस का समय क्यूकर लागा 'बच्चे घूम रहे थे, इसलिए मैंने सोचा ....। विद्या के मन्दिर में जहॉ राश्ट्र निर्माता 'युवा शक्ति' के प्रारम्भिक ज्ञान देते हैं, वहॉ विधाव्रत का इस प्रकार स्वागत होता है । चपरासी तथा छात्रों के पश्चात विद्यालयों के अध्यापकों के अजीब व्यवहार ने रही सही कसर पूरी कर दी है । छात्रों ने अध्यापकों के अजीबो, गरीब नाम रखे हुए हैं । पी0टी0आई0 का नाम 'गावड़ा' विज्ञान का अध्यापक 'कांचला साहब' गणित अध्यापक सीता राम को अधिक गालियां देने के कारण 'गालराम' कहकर पुकारते हैं । कला अध्यापक को कार्टून तथा एकमात्र महिला अध्यापिका को 'तितली' नाम दिया हुआ है । विधाव्रत के अनुसार छात्र तथा अध्यापकों के बीच कोई पर्दा नहीं । अध्यापक बच्चों से बीड़ी मंगवाकर पीते हैं । उनसे पैर दबवाते हें तथा स्कूल में शराब भी पीने से परहेज नहीं करते हैं । एक अध्यापक छात्रों के सामने ही विधाव्रत को अश्लील बात कह देता हे जिससे वह भीतर तक तिलमिला जाता है।

अध्यापकों का सीमित ज्ञान छात्रों को गलत शिक्षा देता है । एक विज्ञान की अध्यापिका छात्रों को पेड़–पौधे का अन्तर समझा रही है – पेड़ हिन्दी का शब्द है पौधा अंग्रेजी का । विधाव्रत तीन चार दिन में ही विद्यालय की सारी कमियों से अवगत हो जाता है । व सवयं को काजल की कोठरी में बंद अनुभव करता है तथा अपनी पीड़ा को कम करने के लिए मित्र को यह सब पत्र में लिख देता है । यह सब देखकर भी अपने संस्कारों और आदर्शों को बचाने का प्रयत्न करता रहता है तथा भगवान से सफलता की कामना करता है ।

विधाव्रत अपने मित्र को दूसरे तथा तीसरे पत्र में विदयालय के पतन की सारी परतें खोल देता है। विद्यालय में आए उसे दो वर्ष हो गए हैं किन्तु उसके साथ किसी की अवहेलना नहीं । सभी उसके आदर्शों, सिद्धान्तों तथा संस्कारों के कारण उससे

भयभीत हैं तथा बात करने में भी कतराते हैं । ये उससे घृणा भी करते हैं किन्तु अवसर मिलते ही उस पर प्रहार करने में नहीं चूकते । न तो छात्र पढ़ना चाहते हैं और न ही अध्यापक पढ़ाना चाहते हैं । छात्र उसी अध्यापक को पसन्द करते हैं जो कक्षा में पढाई के सीन पर किस्से–कहानियॉ सुनाता है । इससे बढ़कर गिरावट क्या हो सकती है कि अध्यापक अपना व्यक्तिगत तथा घर का काम , स्कूल समय में छात्रों से करवाते हैं तथा बच्चों के साथ हंसी मजाक भी करते हैं । श्छात्रों को ऐसा ही वातावरण पसन्द है । उसकी कक्षा में कोई छात्र नहीं आना चाहता, इस पर विधाव्रत यह सोच कर खिन्न हैं – ''बोलों पढाऊँ किसे ?''

विद्यालय के अध्यापकों का कार्य सारा दिन विधाव्रत के विरूध षडयन्त्र रचना तथा मुख्याध्यापक के कान भरना है । उसकी कार्यशैली तथा मेहनत से भी ईर्षा करते हैं तथा उस पर छात्रों को भडकाने का आरोप लगा कर मुख्याध्यापक को उसका स्पष्टीकरण मांगने पर विवश कर देते हैं । विधाव्रत अपने विरूद्ध सभी आरोपों को खारीज करता है किन्तु मुख्याध्यापक लिखित स्पष्टीकरण के लिए हट करता है ।

''यह सब लिख कर दीजिए, ''मुख्याध्यापक ने क्रोध में कहा '' पहले आप लिख कर पुच्छीए, मैं जवाब दूंगा । मुझे यहां कि एक–एक कमजोरी मालूम है, कौन क्या क्या करता है, हमने भी आंख नहीं मूंद रखी है । '' इन शब्दों के द्वारा विधाव्रत का ज्वालामुखी फट जाता है तथा अध्यापकों का कच्चा चिटठा खोल देता है । मुख्याध्यापक द्वारा कोई कार्यवाही न करने पर विधाव्रत जिला शिक्षा अधिकारी तथा शिक्षा मन्त्री को सारी बात लिख कर भेज देता है तथा विद्यालय भवन के कमरों में आई दरार विद्यालय चन्दे के दुरूप्योग , ठेकेदार तथा मुख्याध्यापक की मिलीभगत भी खोल कर लिख देता है, शिक्षा जगत की विडिन्बनाएं इतनी करूर तथा भयावह है कि काजल की क.ोठड़ी से सबके चेहरे स्याह है । नीचे से ऊपर अधिकारी वर्ग तक भ्रष्टाचार, चापलूसी तथा शोषण करने के पक्षधर हैं । जिला शिक्षा अधिकारी आरोप सुनने की बजाए विधाधर पर ही छात्रों को तोड फोड एवं हडताल के लिए उकसाने का आरोप लगा देता है।

अब तक विधाव्रत समझ चुका होता है कि वह बुराई की काजल की कोठरी में स्वयं को सवेत नहीं रख पा रहा है ,?अभिभावकों को व इन परिस्थितयों से अवगत कराना चाहता है तथा अपने बच्चों के भविष्य के विषय में जागरूक होने के लिए कहता है किन्तु अभिभावक निर्ष्कय है तथा बच्चों को अपने भले बुरे का ज्ञान नहीं है । विधाव्रत का मन इस विद्यालय से उग जाता है तथा अपना स्थानान्तरण करवाने की सोचता है । निःसन्देह शिक्षा जगत में नीचे से उपर तक सभी कर्मचारी एक ही थैली के चटे बटे हैं

मित्र को लिखें अगले पत्र में विधाव्रत की पीड़ा और भी गहरी हो जाती है । वह स्वतन्त्रता भत्ता दिवस के दिन स्वयं को रूडी , भ्रष्टाचार, शोषण तथा मानसिक यन्त्र का गुलाम अनुभव करता है । इस दिन विधाव्रत की बात कोई भी सुनने को तैयार नहीं है । उसका साथी अध्यापक उसको टोकता है । ज ''यार, बन्द कर अपना भाषण, आज स्वतन्त्रता दिवस है, तूने इन छात्रों को कैद कर रखा है ।'विधाव्रत के सामने अनुशासन से लेकर भ्रष्टाचार तक सभी विसंगतियॉ स्वयं आती जाती हैं । वह सब कुछ ठीक करने का प्रयास करता है किन्तु उसके ही जाल में फंस जाता है विधाव्रत खराब पड़े टी वी को मुख्याअध्यापक सौ के स्थान पर दो सौ रूप्ये रसीद बनवा कर विधाव्रत के हस्ताक्षर करवाने भेजता है जिसे देखकर विधाव्रत का खून खोल जाता है । बिल देखकर विधाव्रत कहता है –

''दो सौ रूपये का बिल, अरे मिस्त्री ने तो अभी सौ रूपये कहा था । ''मिस्त्री बाहर चाय पीने गया है । हैडमास्टर ने कहा है आप इस पर दस्तखत कर दे, उन्होंने आपके लिए तो यह मरा टी वी ठीक करवाया है ।'' चपरासी ने समझाते हुए कहा । विधाव्रत अब सह सह कर टुटने लगता है पराजित व्यक्ति की भांति कांपते हाथों से बिल लेकर उस पर अपना नाम लिख देता है । यह प्रथम अवसर है जब विशेषताएं, विद्यालय कुशासन का दबाव, अधिकारियों द्वारा शोषण, नौकरी की विवशता उसे अपने आदर्शो को त्यागने पर विवश करती है । बस इसके बाद सबकुछ सामान्य हो जाता है किन्तु विधाव्रत अपनी नजरों में गिर जाता है । वह किसी से नजरें नहीं मिला पाता जैसे उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो वह सैन्य–सैन्य भ्रष्टाचार की लत में फंसता जाता है । विद्यालय के पैसों वाली सामुहिक चाय पीता है पानी पिलाने वाली विधवा के गावडा मास्टर के सम्बन्धों पर ध्यान नहीं देता है । इसका कारण है ''अपने हमाम में सब नगें हैं । '' इन बातों की ओर ध्यान देते हैं उसे अपनी नौकरी, बुढी मां की चिन्ता सताने लगती है । वह सब विसंगतियों की ओर से मुंह फेर लेता है । वह सब समझ गया है कि
नदी में रहकर मगरमच्छ से बैर नहीं किया जाता । वह भी विद्यालय के वातावरण में रंग जाता है और वह भी वही सब करता है जो अन्य सब करते हैं । विधाव्रत के अनुसार अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता । इसलिए बेहतर यही है कि बेवकूफों में बेवकूफ बन कर रहो तथा कीचड़ में धंसकर शायद कीचड़ को साफ किया जा सके ।

चौथा तथा अन्तिम पत्र विधाव्रत की आत्मा के मरण की सूचना देती है जिसमेंवह पूर्णतय वे सभी बुरे काम करने लगा है जिन्हें देखकर उसे पीड़ा होती थी । आज विधाव्रत तम्बाकू तथा शराब का सेवन करता है । अध्यापक और वह मुख्याध्यापक के साथ बैठ कर कार्यालय में ताश खेला जाता है भवन मरम्मत के नाम पर

अध्यापक दिवस पर अभिभावकों से चन्दा वसूल किया जाता है । विधाव्रत संभव विद्यालय में टिकने में सफल तो हो जाता है पर उसके ह्रदय की ज्वालामुखी भीतर ही भीतर सुलगती रहती है । कुछ मार्मिक पक्तियॉं विधाव्रत की अभिव्यक्ति को वाणी देती हैं :–

''आदशों की सब बातें किताबी हैं । आज का अध्यापक फल–फूल खाकर नहीं जीता, वह भी उसी समाज की रोटियां खाता है जो यहॉं की जमीन पैदा करती है । नेता बेईमान हो सकता है । व्यापारी भ्रश्टाचारी हो सकता है, अधिकारी शराब–पार्टियां ले सकता है, क्लर्क रिश्वत खा सकता है फिर अध्यापक कौन–सी मिट्टी का बना है ।'' आज विधाव्रत की स्थिति पहले से भिन्न है ।

12–आज वह सब में आदर पाता है । ब्याज फंड का वह मालिक है । मुख्याध्यापक के साबुन तेल से लेकर टायर टयूब अध्यापकों के बच्चों के लिए किताब कापी, मैडिकल बिल पास, घरों में दवाईयों की व्यवस्था उसे ही करनी होती है सबकी तन्खाह बच जाती है,दूध, घी की व्यवस्था छात्रों से पूरी हो जाती है। परीक्षा में हर प्रकार की सुविधा छात्रों को दी जाती है, बोतल की व्यवस्था छात्र कर देते हैं । विधाव्रत विसंगतियों की गर्त में फंसता जाता है तथा उसका चारित्रिक पतन भी हो जाता है उसकी कुदृश्टि मकान मालिक की खूबसूरत बेटी पर भी पड़ती है । अध्यापक के जीवन की ऐसी अमानुशता निन्दनीय है किन्तु विधाव्रत अध्यापकों के एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जहॉं उसके जीवन के नैतिक मूल्य तथा आदर्श खोखले साबित होते हैं । उसके आदर्शों, संस्कारों की मृत्यु हो जाती है, इसलिए वह अपने मित्र को सूचित करता है । उसका मित्र जान गया है कि उसका मित्र विधाव्रत पहले वाला नहीं रहाअपितु उसकी मृत्यु हो चुकी है तथा एक नए विधाव्रत का जन्म हुआ है जो उसे स्वीकार्य नहीं क्योंकि व्याभिचार तथा भ्रश्टाचार की
काजल कोठरी ने उसे तथा उसके चरित्र को दाग–2 कर दिया है । ''विधाव्रत मर गया' लेखक का मित्र के लिए संबोधन है ।

निष्कर्श यह है कि परिस्थितियॉं संघर्शशील व्यक्ति को भी पथभ्रष्ट करने में सक्षम है । कारण यह है कि व्यवस्था पूर्णतः बिगड़ चुकी है ।

ISBN: 81-88670-17-0

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. मधुकान्त की शैक्षिक कहानियों का विश्लेषण
   ग्रन्थसूची–विधाव्रत मर गया, पृ0सं0 92
2. प्रकाशन निहाल पब्लिकेशन्स दिल्ली प्रकाशन वर्ष 2010
3. दाखिला पृ0सं0 93
4. दाखिला पृ0सं0 98
5. दाखिला पृ0सं0 87
6. दाखिला कहानी पृ0सं0 100
7. कहानी विधाव्रत मर गया, पृ0सं0 87
8. दाखिला कहानी पृ0सं0 100
9. कहानी विधाव्रत मर गया, पृ0 सं0 87 पृ0सृ0 88, 89
10. विधाव्रत मर गया प्र0सं0 90,91
11. विधाव्रत मर गया पृ0सं0 91,92

शोधनिर्देशिका :– रेणू चान्दला

बबली

पत्नी श्री कुलदीप सिंह

पुत्र श्री सावित्री देवी

म0न0 7–A अगली लेन,

आफिसर कॉलोनी, नजदीक वेयर हाऊस

गुरूग्राम रोड़ झज्जर (हरियाणा)

पिन 124103

मौ0 9728919256

विष्णु प्रभाकर के साहित्य में प्रजातन्त्र का अर्थ और स्वराज्य की व्याख्या

17

डॉ0 अनीता

सारांश –

पूरे संसार में भारत सबसे बड़ा प्रजातन्त्र माना जाता है और इसमें सन्देह भी नहीं क्योंकि जो देश स्वाधीनता प्राप्त करने से पहले सैकड़ों भागों में बँटा हुआ था, सबकी अपनी अलग–अलग सत्ता थी, पर दुर्भाग्यपूर्ण बँटवारे के बावजूद जिस तरह हमने सब टुकड़ों को मिलाकर एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण किया, वह अपने आप में एक अद्भुत उपलब्धि थी। हमने विज्ञान, टेक्नोलॉजी, आर्थिक और सामाजिक आदि अनेक क्षेत्रों में तो सफलता प्राप्त की लेकिन क्या हमने ईमानदार देशवासियों को जीने का अधिकार दिया? क्या हम एक सुगठित राष्ट्र के रूप में विश्व में एक 'शक्ति' बन सके?क्या हमने शहीदों की कुर्बानियों को सम्मान दिया जो उन्होंने देश के लिए दी?

बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आज भारत की जो स्थिति है, वह बहुत दयनीय है, जो उन शहीदों की भावनाओं और कामनाओं के अनुरूप नहीं है,। हम मानवता की दृष्टि से नीचे और नीचे गिरते जा रहे हैं। इस दृश्य को देखकर तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि ''इस देश में कभी तिलक, सुभाष, आजाद, गाँधी आदि अनेक व्यक्ति हुए हैं। जिन्होंने देश की आजादी के लिए अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया और ऐसे भारत की कल्पना की जहाँ सभी समान हों, धर्म हो इन्सानियत का लेकिन हमने उस इन्सानियत के हजारों टुकड़े कर दिये हैं।''[1] धर्म के नाम पर और उनका परिणाम हमारे सामने स्पष्ट है। यहाँ इस वातावरण के कारण अनेकों जातियों, धर्मों, वर्गों ने जन्म लिया। सभी अपने–अपने धर्म, जाति को बढ़ावा दे रहे हैं। देश की एकता के लिए कोई नहीं सोचता। बुद्ध से लेकर आज तक सभी महापुरुषों ने जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण सबका विरोध करते रहे लेकिन यह सच है कि जितना हमने विरोध किया उतना ही यह रोग शेषनाग की सहस्र जिह्वाहों की तरह फैलता गया, जाति अगर कोई है तो वह मानव जाति है। धर्म भी यदि कोई है तो वह मानव धर्म ही है। उसकी पहचान हमने संपूर्णता में नहीं की बल्कि उसके और टुकड़े करके की है। ऐसा हुआ क्यों? क्यों आज हमारे 97–98 करोड़ आबादी के इस देश में कम से कम चालीस प्रतिशत लोग ऐसे हैं जिन्हें न दो जून की रोटी मिलती है, न पहनने को कपड़े। रहने के लिए घर भी नहीं है। ऐसे लोगों की संख्या बढ़ ही रही है। विज्ञान की अद्भुत प्रगति के बावजूद पीने को साफ पानी नहीं मिलता। पर्यावरण भयंकर रूप से दुषित होता जा रहा है।

''सामाजिक दृष्टि से भी देखें तो हम अपनी आर्थिक समृद्धि बढ़ने के आँकड़े तो जरूर देखते हैं, पर क्या हमारी दृष्टि उन आँकड़ों पर भी जाती है जो हमारी गरीबी को उजागर कर रहे हैं।''[2] निरन्तर महँगाई सातवें आसमान को छू रही है जो गरीब लोगों के लिए दाल, रोटी भी खाना मुश्किल है। कैसी आश्चर्यजनक बात है कि हम शराब बनाने का लाइसेंस देते हैं, शराब बेचने का लाइसेंस देते हैं, और फिर बड़े गर्व से घोषणा करते हैं कि शराब जहर है, तंबाकू जहर है, इनका उपयोग नहीं करना चाहिए। यह कैसा व्यंग्य है कि हम इन समस्याओं की गहराई में कभी नहीं जाते, बस आदेश देना जानते हैं।

विष्णु प्रभाकर ने रसोईघर के प्रजातन्त्र की भी बात की है। श्यामनाथ यह तो बड़ी खराब बात है। अब तुम्हें क्या बताऊँ यह तो ठीक है कि जो बनगा वह सबको अच्छा नहीं लगेगा। पर ''हमें एक–दूसरे की पसंद की कद्र करनी चाहिए, जो तय हो गया उसे स्वीकार करना चाहि। अपने देश में तो जनतन्त्र है। बहुमत आगे सिर झुकाना पड़ता है।''[3] अब तुम्हें क्या बताऊँ अभी से नहीं सीखोगे तो आगे कैसे करोगे?देश का शासन कैसे चलाआगे? सो उसी का अभ्यास कर रहा हूँ और जनतन्त्र की बात,वह सब झगड़ों की रामबाण दवा है। मैंने तो, तुम्हें क्या बताऊँ, रामलाल जी घर में भी जनतन्त्र कर दिया है, बड़ा अच्छा रहा। अब इसी रसोई की ही बात ले लो।

रामलाल : क्या मतलब?रसोई में भी जनतन्त्र आ गया?
ऐसी सत्ता तो भ्रष्ट ही करती है।

''पशुता पाई जाहू मद नाहीं,
ते नर दुर्लभ इस जग माहीं।।[4]

इसमें मुक्ति का एक मार्ग 'आत्ममंथन' है। 'अपना दीपक आप बनता है' और दूसरे के लिए जीने का वास्तविक अर्थ समझना हे।

स्वराज्य की व्याख्या

गाँधी ने स्वाधीनता आन्दोलन के साथ स्वराज्य शब्द का अर्थ बताया है कि 'स्वराज्य' एक पवित्र शब्द है, इसका स्रोत वैदिक है, जिसका अर्थ आत्म–शासन और आत्म संयम है। उन्होंने एक और स्थान पर इसे और स्पष्ट किया है : स्वराज्य अर्थात् स्वतंत्रता का अर्थ क्या है? ''गाँधी जी चाहते हैं कि स्वतन्त्रता के साथ सर्वोच्च कोटि का अनुशासन और विनय हो तो वही सच्चा स्वराज्य है।''[5] 'स्वराज्य' शब्द के साथ एक और शब्द का प्रयोग किया है। वह है 'रामराज्य' गाँधी से जो सहमत नहीं थे उन्होंने इस शब्द का अर्थ

जानना चाहा 'रामराज्य' अर्थात् क्या है? तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में 'रामराज्य' की व्याख्या करते हुए कहा है –

''दैहिक, दैविक भौतिकतापा, रामराज कबहु न व्यापा।।''

समझने के लिए यह व्याख्या पर्याप्त है। जिस राज्य में किसी तरह का दुःख नहीं है, चाहे वह देह का दुःख हो या दैवी कारणों से होने वाली आपदाएँ या फिर भौतिक जगत की परेशानियाँ हों, रामराज्य में ये व्याप्त नहीं होती, वहाँ सब सुखी थे।

गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले व्यापारियों के लिए सलाहकार के रूप में वहाँ चले गए। वहाँ पर अनेक भारतवासी व्यवसाय से लेकर मजदूरी तक करते थे। दक्षिण अफ्रीका में गौरों का राज्य था और वे गौरे भारतीयों से नफरत करते थे। उन्हें 'काला आदमी' कहकर अपमानित करते थे। भारतीयों को रेल की प्रथम श्रेणी में यात्रा करने की अनुमति नहीं थी। गाँधी जी को एक बार किसी काम से ट्रांसवाल जाना पड़ा। उनके मित्रों के मना करने पर भी उन्होंने प्रथम श्रेणी का टिकट लिया और उसी में सफर किया। डिब्बे में बैठे अंग्रेज लोग उन्हें घृणा और क्रोध की दृष्टि से देख रहे थे कि यह काला आदमी यहाँ कैसे बैठा है। उन्होंने गार्ड से शिकायत की और गाँधी को नीचे उतार दिया। गाँधी जी की अन्तर्आत्मा बहुत दुःखी हुई और वह सोचने लगे मुझे वापिस भारत जाना है। तुरन्त उन्हें ख्याल आया कि यहाँ मेरे हजारों भाई अपमान का जीवन जी रहे हैं। उन्हें छोड़कर जाना क्या ठीक होगा? ''तभी अंदर से आवाज आई नहीं, नहीं मैं नहीं जाऊँगा। और संघर्ष करते हुए अत्याचार का विरोध करूँगा। 'गुलामी का विरोध' और 'अत्याचार का विरोध' इन दोनों का अर्थ एक ही है। उन्होंने कहा, ''मेरे स्वराज्य में अपना दायित्व निभाने का अधिकार पहले है, दूसरे अधिकार बाद में। मैं ऐसे संविधान की रचना करना चाहूँगा जिसमें हर तरह की गुलामी से मुक्ति का प्रावधान हो।''[6]

जब गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तब तक वह यह समझ गए थे कि सबसे पहले हमें जो सबसे नीचे है उसे जगाना है, हर व्यक्ति को जगाना है। स्वराज्य लाना है।

हिटलर ने जब चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया और चेकोस्लोवाकिया ने उसका जवाब युद्ध से दिया, तब गाँधी जी ने उस युद्ध को अहिंसक युद्ध कहा था। कहा था कि, ''मैं चाहता हूँ कि 'चैक' लोग शस्त्रों का प्रयोग नहीं करें। देखें हिटलर कितनों को मार सकता है लेकिन वे यदि ऐसा नहीं कर सकते तो उन्हें पीठ नहीं दिखाना है बल्कि शस्त्रों के प्रयोग का उत्तर शस्त्रों के प्रयोग से देना है।''[7] उनका दृष्टिकोण सदा व्यापक रहा।

एक बात की ओर उन्होंने बार–बार हमारा ध्यान खींचा है, वह है 'परसेवा' 'परहित सरिस धम नहिं भाई' अर्थात् हमें दूसरों के लिए जीना है, अपने लिए नहीं। जब हम दूसरों के लिए जिएंगे तो दूसरे भी हमारे लिए जीएंगे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के द्वार और खिड़कियां बंद रहें, बाहर की हवा न आए, लेकिन ऐसा भी नहीं चाहता कि हवा इतनी तेज हो कि हमारे पैर धरती से उखड़ जाएं। उनके अनुसार ''पश्चिम के पास बहुत कुछ ऐसा है जिसे हम उससे ले सकते हैं और लाभान्वित हो सकते हैं। ज्ञान किसी एक देश या जाति के एकाधिकार की वस्तु नहीं है। पर हमें अंधानुकरण नहीं करना है।

गाँधी जी यथार्थवादी थे। वे सत्याग्रह के उपासक थे। सत्याग्रह के द्वारा ही उन्होंने स्वराज्य प्राप्त किया।

''मेरा राष्ट्र प्रेम उग्र तो है पर वह वर्जनशील है। उसमें किसी दूसरे राष्ट्र या व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने की भावना नहीं है। कानूनी सिद्धांत असल में नैतिक सिद्धांत ही है। अपनी सम्पत्ति का उपयोग इस तरह करो कि पड़ोसी की सम्पत्ति को कोई हानि न पहुँचे।'' यह कानूनी सिद्धांत एक सनातन सत्य को प्रकट करता है और उसमें मेरा पूरा विश्वास है।''

निष्कर्ष— दुर्भाग्य से आज जो स्थिति है वह इसके ठीक विपरीत है। हम यहाँ कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं, बस व्यक्ति से आत्ममंथन करने की कह रहे हैं। रातों रात मान्यताएँ बदलने वाले दलों की दलदल से बचने को कह रहे हैं क्योंकि अंततः उनका लक्ष्य सत्ता प्राप्त करना है, सेवा करना नहीं।

संदर्भ सूची

1. विष्णु प्रभाकर, गाँधी : समय समाज और संस्कृति, पृ. 7
2. विष्णु प्रभाकर, गाँधी : समय समाज और संस्कृति, पृ. 8
3. विष्णु प्रभाकर, गाँधी : समय समाज और संस्कृति, पृ. 50
4. उद्धृत विष्णु प्रभाकर, गाँधी : समय समाज और संस्कृति, पृ. 11
5. विष्णु प्रभाकर, गाँधी : समय समाज और संस्कृति, पृ. 50
6. विष्णु प्रभाकर, गाँधी : समय समाज और संस्कृति, पृ. 5
7. विष्णु प्रभाकर, गाँधी : समय समाज और संस्कृति, पृ. 54

डॉ0 अनीता
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
श्री ऑरबिंदो कॉलेज, (सांध्य)
मालवीय नगर, दिल्ली

18

अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' की नायिका रेखा की आधुनिकता"

करुणा सिंधु

सारांश –

नदी के द्वीप' की नायिका रेखा का चरित्र प्रभावी, सर्वाधिक आकर्षक, बौद्धिक एवं आधुनिक है। रेखा उपन्यास की धुरी है। उपन्यास के अन्य पात्र जैसे भुवन, चन्द्रमाधव और गौरा का व्यक्तित्व रेखा से संयोजित होने पर ही विशिष्ट बनता है। रेखा अस्तित्ववादी जीवन दर्शन को मानती है। रेखा इस जीवन दर्शन की वाहक पात्र है। भुवन के साथ 'फुलफिलमेंट' का जो क्षण वह एक बार जी चुकी है, उसे उतने ही या और अधिक तीव्र रूप से जब पुनः उसके साथ नहीं जी सकती! रेखा के निर्णय उसके चरित्र की 'इंडिपेंडेंसी' और अद्वितीयता को आलोकित करते हैं। रेखा नारी स्वतंत्रता के द्वार खोलती है।'

अज्ञेय के दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' की पात्र रेखा उपन्यास की नायिका है और गुणबोध की दृष्टि से यह उपन्यास की सबसे शक्तिशाली पात्र है। रेखा का चरित्र प्रभावी, सर्वाधिक आकर्षक, बौद्धिक एवं आधुनिक है। रेखा ऐसी आधुनिक विचारों वाली है जिसमें त्याग और समर्पण उसकी नारी–अस्मिता को बहुत ऊँचा और ऊर्जावान बनाते हैं। वह उपन्यास की धुरी है। उपन्यास के अन्य पात्र जैसे भुवन, चंद्रमाधव और गौरा का व्यक्तित्व रेखा से संयोजित होने पर ही विशिष्ट बनता है। रेखा का रूप एक सप्राण, तेजोमय व्यक्तित्व के प्रकाश से भीतर से दीप्त है। उसकी आयु लगभग सत्ताईस वर्ष के लगभग है; अपने पति हेमेन्द्र से अलग है और नौकरी करके आत्मनिर्भर है। "रेखा' पर 'स्ट्रेट इज़ द गेट' की नायिका 'अलीसा' का अस्पष्ट प्रभाव है। उसकी 'सफरिंग' और 'धार्मिक रुझान' को अज्ञेय ने 'रेखा' के व्यक्तित्व में उतारने का प्रयास किया है – और हिंदी उपन्यास की पहली 'धार्मिक नायिका' का निर्माण किया है।"[1] **विजयमोहन सिंह** के अनुसार, "अज्ञेय ने रेखा को धार्मिक नायिका बनाया है। बौद्धिक, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, आधुनिक नारी के रूप में रेखा का आगमन होता है। सत्य और तथ्य को लेकर की गई चर्चा में रेखा की तार्किकता, स्पष्टवादिता, प्रखर और बौद्धिक क्षमता सभी को देखने को मिलती है। भुवन रेखा से प्रथम मिलन को स्मरण करते हुए कहता है, "रेखा के पास रूप भी है और बुद्धि भी है, किंतु बुद्धि मानो तीव्र संवेदना के साथ गुँथी हुई है और रूप एक अदृश्य, अस्पृश्य कवच–सा पहने हुए है;"[2] भुवन जैसे अन्तर्मुखी व्यक्ति के मन में भी उत्सुकता रेखा जगा देती है। अज्ञेय ने रेखा के चरित्र को विशिष्ट मुद्रा के वर्णन से यहाँ तक कि साड़ी के रंग के चुनाव से उसके चरित्र में निहित असाधारणता को उभारा है। "इस प्रकार की नायिका का हिन्दी उपन्यास में शायद प्रथम स्थान है जो आधुनिक तो है, लेकिन उसकी चेतना विभाजित नहीं। हार्दिकता और बौद्धिकता का ऐसा योग विरल है। इसीलिए रेखा जो कुछ बोलती है, करती है, पहनती है, उस समग्र का उसकी पूरी अस्मिता के साथ संवाद है।"[3] चंद्रमाधव भी रेखा के व्यक्तित्व के समक्ष नतमस्तक रहता है। वह उसे असाधारण स्त्री मानता है। रेखा के व्यक्तित्व में उत्तर प्रदेश, बंगाल और कश्मीर के लक्षण और संस्कार दिखाई देते हैं। रेखा अपने चरित्र और सम्मान की रक्षा करते हुए समाज में संघर्ष करके स्थापित है। "नदी के द्वीप में रेखा अस्त्विवादी जीवन दर्शन को मानती है – उपन्यास में वह (रेखा) इसी विचार की वाहक पात्र है।"[4] रेखा का जीवन उतार–चढ़ाव के साथ नारी मुक्ति के लिए आन्दोलनरत् है। वह भुवन से कहती है, "भटकने से ही शक्ति आती है, डॉक्टर भुवन! क्योंकि जब मिट्टी से बाँधने वाली जड़ें नहीं रहती, तब हवा पर उड़ते हुए जीने के लिए कहीं न कहीं से और साधन जुटाने पड़ते हैं। स्वेच्छा से भटकना?हाँ इस अर्थ में जरूर स्वेच्छा है कि पड़ा–पड़ा पिस क्यों नहीं जाता, अंधेरे गर्त मे धँस क्यों नहीं जाता, हाथ–पैर क्यों पटक्ता है?"[5] भुवन के प्रति रेखा के विचार प्रेम में बदलने लगते हैं। रेखा भुवन में संपूर्ण पुरुष को देखने लगती है, वह जो कुछ अपने जीवन में खोज रही है सब उसे भुवन में मिलता है। नौकुछिया मिलन पर नायिका रेखा के मन–मस्तिष्क के अंदर सोई और दमन की हुई संयमी डोर में बंधी नारी जाग जाती है और रेखा भुवन के प्रति समर्पित होती है। रेखा तुलियन से लौटते हुए भुवन के चरणों की धूल ले लेती है। रेखा पहली बार जीवन में यह अनुभव करती है कि वह संपूर्ण है। रेखा का भुवन के प्रति जो प्रेम और समर्पण है वह अपराध और कुण्ठा से दूर सफलता की मूर्ति है। यह स्थिति रेखा के लिए जीवन का सौंदर्य है। रेखा इस सौंदर्य को जीवन भर सहेज कर रखना चाहती है न कि खर्च करना चाहती है, और न ही कम। उसके लिए भुवन द्वारा पूर्णता की प्राप्ति अनमोल है। इसीलिए जब भुवन द्वारा विवाह का प्रस्ताव रेखा को मिलता है तब इस विवाह–प्रस्ताव को रेखा अस्वीकार कर देती है। ज्ञान में परिपक्व रेखा भली–भाँति जानती है कि भुवन उससे दूर हो जायेगा। रेखा जीवन के अंत तक इस वेदना में रहना चाहती है। रेखा आत्मपीड़क बनकर दूसरों को कष्ट मुक्त रखती है। जब भुवन रेखा के प्रति तटस्थ हो जाता है, तब रेखा एक परिपक्व प्रेमिका का परिचय देते हुए अपने प्रेम और जीवन के प्रति निर्वैयक्तिकता का परिचय देती है। रेखा भुवन से कहती है, "आत्मा का शैथिल्य ही प्यार

की पराजय है, हम दोनों को बराबर सतर्क, सजग रहना है – क्योंकि हम दोनों ऐसे आत्मनिर्भर, स्वतः संपूर्ण हैं। सहज ही बह कर, सिमट कर अलग हो जा सकते हैं – अपनी–अपनी सीपियों में बंद, अंतरंग अनुभूति के छोटे–छोटे द्वीप और इस प्रकार बरसों जीते रह सकते हैं। मौन, शांत लेकिन एकाकी........"[6] रेखा को यह अनुभव होता है कि भुवन उसके जीवन से दूर जाना चाहता है, वह अपनी शिष्या गौरा के प्रति अनुरक्त है तथा गौरा भी भुवन की सच्ची उपासिका एवं प्रेमिका है। रेखा को गौरा से किसी प्रकार की ईर्ष्या नहीं होती। रेखा गौरा को स्नेहवश उपहार भेजती है। रेखा का हृदय दूसरों के प्रति उदार रहा है। रेखा ने अपने दुख से सबको मुक्त करने का प्रयास किया है। रेखा में त्याग की पराकाष्ठा है, वह गौरा के प्रेम का सम्मान करती है और स्वयं उन दोनों के रास्ते से हटने का निश्चय करती है। रेखा पत्र के माध्यम से भुवन को बताती है कि वह डॉक्टर रमेशचंद्र से विवाह करने जा रही है, परंतु वह भुवन से बातों–बातों में दुःख और प्रेम के समर्पण को भी कह देती है। "अब अगले महीने से श्रीमती रमेशचंद्र कहलाऊँगी – उसके भी क्या अर्थ हैं?कुछ अर्थ तो होंगें, अपने से कहती हूँ; पर क्या, यह नहीं सोच पाती........मैं इतना ही सोच पाती हूँ, कि मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी; तुम्हारी ही हुई हूँ और किसी की कभी नहीं, न कभी हो सकूँगीं...."[7] रेखा के दर्द, त्याग और भुवन को छोड़ना फिर डॉक्टर रमेशचंद्र से विवाह करने पर श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं, "रेखा के जीवन के दर्द में हम कुछ दूर तक ही उसके सहभागी बन पाते हैं; पर बाद में उसके क्षणवादी दर्शन की उक्तियों के बाद उसके श्रीमती रमेशचंद्र बनते–बनते शंका उठने लगती है कि वह दर्द हमें किसी क्लासिक अनुभव की ऊँचाई तक नहीं पहुँचा पा रहा है।"[8] परंतु, कृष्णदत्त पालीवाल रेखा के क्षणवादी जीवन–मूल्य के प्रति विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं– "रेखा के माध्यम से अज्ञेय ने 'क्षणवाद' का प्रतिपादन किया है – क्षणवाद अस्तित्ववादी–दर्शन का अनुभूतिमूलक सत्य है। तभी तो रेखा कहती है – 'मेरे लिए काल का प्रवाह भी प्रवाह नहीं है, केवल क्षण और क्षण और क्षण का योगफल है – मानवता की तरह काल–प्रवाह भी मेरे लिए निकट युक्ति–सत्य है। वास्तविकता क्षण की ही है। क्षण सनातन है। रेखा क्षण भर बहस ही नहीं करती, वह क्षण से क्षण को जोड़ती है।"[9] रेखा उपन्यास में ऐसी नायिका है, जिसके व्यक्तित्व में विजयी भाव और आत्मविश्वास है। प्रेम के प्रति उत्कृष्ट निष्ठा रखते हुए भी तथा अलगाव और एकाकीपन की स्थिति में भी जीवन के प्रति आस्था उसमें बनी रहती है और इसी आस्था और आत्मविश्वास के कारण वह जीवन की बहुत सी समस्याओं से हारती नहीं है और न ही उसके मन में भय और निराशा का भाव ही आता है। रेखा पत्र के माध्यम से भुवन को जीवन का दर्शन समझाने का प्रयास करती है और उसे कभी न हारने के लिए प्रेरणा देती है। "हम जीवन की नदी के अलग–अलग द्वीप हैं – ऐसे द्वीप स्थिर नहीं होते, नदी निरन्तर उनका भाग्य गढ़ती चलती है; एक स्थान से मिटकर दूसरे स्थान पर जमते हुए नए द्वीप......"[10] यहाँ नदी को समाज तथा मनुष्य को द्वीप का प्रतीक बनाकर प्रतीक को जीवन–मूल्य के रूप में प्रकट कर रेखा की बौद्धिकता को प्रकट किया गया है। "वह अपने गर्भस्थ शिशु – जिसमें भुवन का भी साझा है को समाप्त कर देने का भी निर्णय अकेले ही लेती है। डॉ॰ रमेश से शादी करने का निर्णय भी वह अकेले ही लेती है। इस निर्णय में उसका यह निर्णय भी कार्य कर रहा है कि भुवन के साथ 'फुलफिलमेंट' का जो क्षण वह एक बार जी चुकी है उसे उतने ही या और अधिक तीव्र रूप से जब पुनः उसके साथ नहीं जी सकती। उसके लिए अब एक नया संबंध अनिवार्य है। रेखा के निर्णय उसके चरित्र की 'इंडिपेंडेंसी' और अद्वितीयता को आलोकित करते हैं।"[11] रेखा में सबसे बड़ा गुण जो उसके चरित्र से निकल कर आता है कि वह भावनाओं के प्रति सबसे अधिक ईमानदार, स्पष्टवादी और अनेक दुःख और समस्या होते हुए भी अनुशासन से बंधी है। वह डॉ॰ रमेशचंद्र से विवाह करने से पूर्व वह अपने पूर्व विवाह और भुवन के विषय में सब कुछ बता देती है। रेखा के चरित्र में एक शक्ति है जो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करती है। गोपाल राय कहते हैं – "रेखा, हिंदी के औपन्यासिक पात्रों की विशिष्ट अग्रिम पंक्ति में आती है। उसकी प्रखर बौद्धिकता, आत्मबलिदान, अपनी पीड़ा के प्रति तटस्थ द्रष्टा का भाव, अपनी भावनाओं के प्रति संपूर्ण ईमानदारी और समर्पण की भावना आदि उसके चरित्र को वह प्रखरता, तेज, परिपक्वता और संवेदनशीलता प्रदान करते हैं जो हिंदी के किसी अन्य औपन्यासिक पात्र में दुर्लभ है।"[12] रेखा के प्रेम की बौद्धिकता के विशय में गोपालराय कहते हैं– "रेखा के प्रेम का सबसे उदात्त पक्ष उसके त्याग और आत्मदान की पृष्ठभूमि में उजागर होता है। प्रेम का एक सामाजिक पहलू भी होता है जो अनेक प्रकार के मूल्यों और दायित्वों से जुड़ा होता है। वह दायित्व नारी से ज्यादा पुरुष का होता है। रेखा भुवन से प्रेम करती है, और वह प्रेम केवल भावना के धरातल पर घटित होने वाला हवाई या छायावादी प्रेम नहीं है। वह शरीर के धरातल पर भी घटित होता है। रेखा के प्रेम की तीव्रता, गहराई और सच्चाई में भी कहीं कोई त्रुटि नहीं है; वह भुवन को किसी सामाजिक दायित्व में नहीं बंधने देती।"[13]

निष्कर्ष–

रेखा सभी प्रकार के गुणों से युक्त आधुनिक नारी पात्र है। उसके अंदर त्याग, प्रेरणा, भावुकता, स्पष्टवादिता, आत्मनिर्भरता, मित्रता आदि गुण हैं। 'नदी के द्वीप' की नायिका का चरित्र बड़ी सूक्ष्मता, आत्मीयता और तन्मयतापूर्वक लेखक द्वारा रचा गया है। रेखा आधुनिक नारी के विविध पक्ष को प्रकट करती हुई नारी स्वतंत्रता के द्वार खोलती है। उसकी स्पश्टवादिता और तार्किकता लोगों को प्रभावित करती है। वह भुवन के द्वारा रखे गए प्रस्ताव को क्षण–भर में

नकार देती है। स्वतंत्र जीवन, स्वतंत्र निर्णय, स्त्री–स्वाधीनता और बौद्धिक क्षमता उसे आधुनिक नारी के रूप में स्थापित करती है।

संदर्भ –

1. अज्ञेयः कथाकार और विचारक, विजयमोहन सिंह, वाणी प्रकाशन 4695, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, पृष्ठ – 36, प्रथम संस्करण – 2012
2. नदी के द्वीप, अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1 – बी, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, पहला संस्करण, 2015, पृष्ठ – 18
3. अपने–अपने अज्ञेय, संपादक – शुभ्रा उपाध्याय, मानव प्रकाशन, 131, चितरंजन एवेन्यू, कोलकाता – 700073, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ – 222
4. अज्ञेयः चितंन और साहित्य, डॉ॰ प्रेम सिंह, प्रकाशक फिक्थ डायमेंशन पब्लिकेशन, शहादरा, दिल्ली – 01287, प्रथम संस्करण – 1987, पृष्ठ 7 135
5. नदी के द्वीप, अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1–बी, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002
6. नदी के द्वीप, अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, 110002
7. नदी के द्वीप, अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1–बी, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002
8. अज्ञेयः कुछ रंग, कुछ राग, श्रीलाल शुक्ल, प्रकाशक राजकमल प्रा॰ लि॰, 1–बी, नई दिल्ली, 110002, पहला संस्करण – 2012, पृष्ठ – 68
9. अज्ञेय, कृष्णदत्त पालीवाल, प्रकाशक – प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, लोदी रोड, नई दिल्ली – 110003, संस्करण – 2012, पृष्ठ – 123
10. नदी के द्वीप, अज्ञेय, राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1–बी, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002 पहला संस्करण – 2015, पृष्ठ – 281
11. अज्ञेयः चितंन और साहित्य, डॉ॰ प्रेम सिंह, प्रकाशक फिक्थ डायमेंशन पब्लिकेशन, शहादरा, दिल्ली – 01287, प्रथम संस्करण – 1987, पृष्ठ 7 133
12. अज्ञेय और उनका कथा–साहित्य, गोपालराय, वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण – 2010, पृष्ठ – 148
13. अज्ञेय और उनका कथा–साहित्य, गोपालराय, वाणी प्रकाशन, 4695, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली – 110002, प्रथम संस्करण – 2010, पृष्ठ – 148

शोध निर्देशक

डॉ0 सविता मिश्रा

अध्यक्षा (हिन्दी विभाग)

रानी भाग्यवती महिला महाविद्यालय,

बिजनौर (उ0प्र0)

पिन 246701

करुणा सिंधु

(शोध–छात्र, हिंदी विभाग)

महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड

विश्वविद्यालय, बरेली, उ॰प्र॰

निवास – 285 / 391–करेहटा

नया शिव मंदिर

ऐशबाग, लखनऊ – 226004

Mob :- 9839232349 (W)

8318908924

E-mail :-karunasindhu1984@gmail.com

19

अप्रतिम वैदुष्य और महाकवि माघ

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी

सारांश –
महाकविमाघ, मारवाड़ के प्राचीनतम महाकाव्य 'शिशुपालवध' केरचियताथे।'माघ'काजन्मभीन–माल के एक प्रतिष्ठितधनी श्रीमाली ब्राह्मण–कुल में हुआ था। उनकी पत्नी का नाम विद्यावती था कुछ लोग माल्हणनाम भी मानते है वेसर्वश्रेष्ठ संस्कृत महाकवियों कीत्रयी (माघ, भारवि, कालिदास) में अन्यतम हैं। उन्हों ने शिशु पालवधनामक केवल एक ही महाकाव्य लिखा। इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण केद्वारा युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ मेंचे दिनरे शशिशुपाल के वध कासांगोपांग वर्णन है। उपमा, अर्थगौरवत था पदलालित्य दृ इन तीन गुणों का सुभगसह–अस्तित्वमाघ के कमनीयकाव्य में मिलता है,
–––

"माघेसन्तित्रयोगुणारू"

उनके बारे में सुप्रसिद्ध है।इनके पिता का नाम दत्त क था। राजस्थानपाठ्यपुस्तकमंडलद्वाराराजकीयविद्यालयोकीकक्षा 8 की हिंदी की पुस्तक के अनुसार इनकी पत्नी का नाम माल्हण है संस्कृत साहित्य कोश में महाकविमाघ एक जा ज्वल्यमानन क्षत्र के समान है जिन्होंन अपनी काव्य प्रतिभा स संस्कृत जगत्कोचमत्कृत किया है। ये एक ओर कालिदास के समान रसवादी कवि हैं तो दूसरी ओरभार विसदृश विचित्रमार्ग के पोष कभी।कवियों के मध्यमहाकविकालिदास सुप्रसिद्ध हैं तो काव्यों में माघ अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं–

''काव्येषुमाघःकविकालिदासः''

माघ अलंकृत शैली के पण्डित क विमाने जाते हैं। जहाँ काव्य के आन्तरिकतत्त्व की अपेक्षा वाह्यतत्त्व शब्द और अर्थ के चमत्कार देखे जा सकते हैं। इनकी एकमात्र कृति 'शिशुपालवधम्' जिसे महाकाव्य भी कहा जाता है, वृहत्त्रयीमेंमहत्त्वपूर्णस्थानरखतीहै। इस महा कवि के आलोड़न के पश्चात्मल्लिनाथ ने इसकी महत्ता के विषय में कहा है।

''मेघेमाघेगतंवयः''

माघ विद्वानों के बीच पण्डित कवि क रूप में भी सुप्रसिद्ध हैं। समीक्षकों का कहना ह कि माघनेभारविकी प्रतिद्वन्दिता में ही महाकाव्य की रचना की क्योंकि माघ पर भारविका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भले ही माघने भारवि के अनुकरण पर अपने महाकाव्य की रचना की होले किनमाघ उनसे कहीं अधिक आगे बढ़ गए हैं इसीलिए कहा जाता है

''तावदभारवेभातियावन्माघस्यनोदयः''

माघ जिस शैली क प्रवर्तक थे उनमें प्रायःरस, भाव, अलंकार काव्यवैचित्य बहुलता आदिस भी बाते विद्यमान थी। माघकवि की कविता मे ह्रदय और मस्तिष्क दोनों का अपूर्व मिश्रण था। माघकाव्य में प्राकृतिक वर्णन प्रचुरमात्रा में हुआ है। इनके काव्य में भावगाम्भीर्य भी है।

'शिशुपालवधम' में कतिपय स्थलो पर भावागाम्भीर्य देखकर पाठ क अक्सर चकि तरह जाते हैं। कठिन पदान्यास तथा शब्द बन्ध की सुश्लिष्टता जैसी महाकाव्य में देखने को मिलती है वैसी अन्यत्र बहुत कम काव्या म मिलती है। इनके काव्य को पढ़त समय मस्तिष्क का पूरा व्यायाम हो जाता है उनकी विद्वता अवर्णनीय है।

माघकीरचना

शिशुपालवध महाकविमाघ द्वारा रचित संस्कृत काव्य है। २० सगा तथा१८०० अलंकारिक छनदों में रचितयह ग्रन्थ संस्कृत केछःमहाकाव्योंमेंगिनाजाताहै। इसमें कृष्ण द्वारा शिशुपाल के वध की कथा का वर्णन है।

जरासंधकावध कर क श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम इन्द्रप्रस्थ लौट आये एवं धर्म राज युधिष्ठिर से सारावृत्तांत कहा जिसे सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुये। तत्पश्चात्धर्मराजयुधिष्ठिर ने राजसूययज्ञ की तैयारी शुरू करवा दी। उस यज्ञ के ऋतिज आचार्य हो ताथे। यज्ञकोसफलबनानेकेलियेवहाँपरभारतवर्षकेसमस्तबड़े–बड़ेऋषि महर्षि दृ भगवानवेदव्यास, भारद्वाज, सुनत्तु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्डव, मैत्रेय, कवष, जित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिन, क्रतु, पैल, पाराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतहोत्र, मधुद्वन्दा, वीरसेन, अकृतब्रण आदि दृ उपस्थित थे। सभी देशों के राजाधिराज भी वहाँ पधारे।

ऋतिजों ने शास्त्र विधि से यज्ञ–भूमिको सोने के हल से जुतवाकर धर्मराजयुधिष्ठिर को दीक्षा दी। धर्मराजयुधिष्ठिर ने सोमलता कार सनिकालने के समय यज्ञ कीभूल–चूक देखने वाले सद्पतियों की विधिवत पूजा की। अब समस्त सभा सदों में इस विषय पर विचार होने लगा कि सब से पहले किस देवता की पूजा की जाये।

तबसहदेवजीउठकरबोले

श्रीकृष्ण देवन के देव, उन्हीं को सबसे आगे लेव।
ब्रह्माशंकर पूजत जिन को, पहिली पूजादी जै उनको।
अक्षर ब्रह्मकृष्णय दुराई, वेदन में महिमाति नगाई।
अग्रतिलकय दुपति को दीजै, सबमिलिपूजन उनको कीजै।

परमज्ञानी सहदेव जी के वचन सुनकर सभी सत्पुरुषों ने साधु! साधु!

कहकरपुकारा। भीष्मपितामहा ने स्वयं अनुमोदन करते हुये सहदेव के कथन की प्रशंसा की। तब धर्मराजयुधिष्ठिर नेशास्त्र सम्मत उत्तर दिया

माघकीविद्वता

सांख्य दर्शन का ज्ञान दृमाघ के दर्शन विषय क उद्धरणों से प्रतीत होता है कि वे एक बहुत बड़े दार्शनिक भी थे। भारतीय दर्शन के प्रायःसभी अंगों का उन्हें विस्तृत ज्ञान था। आस्तिक तथा नास्तिक दोनों ही दर्शनों का समन्वय उनमें था। शिशुपालवधम के प्रथम सर्ग में नारद भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं–

''उदासितारंनिगृहीतमानर्गृहीत मध्यात्मदृश कथञ्चन्।

बहिर्विकारं प्रकृतेःपृथग्विदुःपुरातनंत्वांपुरुषंपुराविदः।''

तत्व को जानने वाले कपिल आदि मुनियों द्वारा अभ्यास और वैराग्य से मनकोवशमेंकरकेअन्तदृष्टिसेआपकोदेखागया। योगीजन आपको उदासीन विकारा ेंसे अतीत मूल प्रकृति से भिन्न आदि और परम पुरुष मानत े हैं।

उपर्युक्त पद्य द्वारा माघ के साङ्ख्य दर्शन क े ज्ञान का पता चलता है। साङ्ख्यमत का अन्य उदाहरण भी बलराम की उक्ति में स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसी प्रकार 'शिश ुपालवधम्' के अन्तर्गत साङ्ख्य दर्शन स े सम्बन्ध अनेक प्द्य दिखायी पड़ते हैं।

योग शास्त्र का ज्ञान दृ

माघ को योग शास्त्र का भी गूढ़ ज्ञान है। इस का स्पष्ट प्रमाण शिशु पालवधम्महाकाव्य मेंप्राप्तहोताहै। चौदह वेंसर्ग में भीष्म भगवान श्री कृष्ण की स्तुति करत े हैं–––

सर्व वे दिन मनादिमा स्थितं देहिना मनुजिधृक्षयावपुः।

क्लेष कर्मफल भोग वर्जितं पुविषेष ममुमीष्वरंविदुः।

भगवान श्री कृष्ण को विद्वान जन्म और मृत्यु से रहित प्राणियों पर कृपा करने की इच्छा से मानव अवतार लेने वाले पाँचक्लेशों और पाप तथा पुण्यक फलों से रहित ईश्वर, परम पुरुष आदि पुरुष इत्यादि कहते हैं।

यहाँ योग शास्त्र में वर्णित अविद्या अस्मिता, रागद्वेष और अभिनिवेश इत्यादि पचंक्लेशों का उल्लेख माघकी योग शास्त्र में प्रवीणता को प्रदर्शित करता है इसी प्रकार चतुर्थ सर्ग मेंरैव तक पर्वत के वर्णन में भी माघ के योग शास्त्र प्रवीण होने का पता चलता है।

मीमांसा शास्त्र का ज्ञान दृ

माघमीमांसाशास्त्र के भी पारङ्गत पण्डित प्रतीत होत े हैं। 'शिशुपालवधम्' क े चौदहवेंसर्ग के यज्ञ विषयक प्रतिपादन में माघ केमी मांसा सम्बन्धी ज्ञान का परिचय मिलता है।

''षब्दितामनपषब्दमुच्चकैवक्यिलक्षणविदोऽनुवाक्यया।

याज्ययायजनकर्मिणोऽत्यजन्दब्यजातमपदिष्यदेवताम्।''

मी मांसा शास्त्र के ज्ञाता पुरोहित जिनका उच्चारण अत्यन्त शुद्ध था, उच्च एवं स्पष्ट स्वरों द्वारा श्रुतिका उच्चारण करतेहुएदेवताओंकेनिमित्तअग्निमेंआहुतियांदेनेलगे। यहाँ मी मांसा की गयी ह ै कि यज्ञ के मन्त्रों के उच्चारण में विशेष निपुणता होनी चाहिए अन्यथा अशुद्धि से अनर्थ की आशंका बनी रहती हैइसी प्रकार अन्यत्र भीमीमांसा ज्ञान के उद्धरण प्राप्त होते हैं।

बौद्धदर्शनसेप्रभावित दृ

भारतीय दर्शन के नास्तिक दर्शनों में बौद्ध दर्शन्का भीमाघकोज्ञानथा। 'शिशुपालवधम' के दूसरे सर्ग में बौद्ध दर्शन का स्पष्ट संकेत दिखायी देताहै।––––

''सर्वकार्यषरीरेषुमुत्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।

सौगातानामिवात्मान्योनास्तिमन्त्रोद्रलमहीभृताम्।''

राजाओं के लिए पांच अंगो वाले मन्त्र के अतिरिक्त दूसरा कोई मन्त्र नही ंहै। जिस प्रकार बौद्ध दर्शन में पाँच स्कन्ध के अतिरिक्त और कोई आत्मा नहीं है, क्योंकि बौद्ध लोग आत्मा नाम की कोईवस्तुस्वीकारनहींकरतेहैं। यहाँ बलराम की उक्ति क े माध्यम सेमाघन े बौद्ध दर्शन के स्वरूप को दर्शाया है।

जिसप्रकारबौद्धदर्शनमेंआत्माकोस्वीकारनहींकियागयाहैऔरशरीरको पाँचस्कन्धा ें रूपस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, संज्ञास्कन्धऔरसंस्कारस्कन्धसेयुक्तमानागयाहै। ठीक उसी प्रकार राजाओं के लिए पंचाग मन्त्र कार्य के आरम्भ करने का उपाय कार्य को सिद्ध करने में उपयोग दृव्य कासं ग्रह देश और काल का निरूपण विपत्तियों को दूर करन े के उपाय और कार्य की सिद्धि बताये गये हैं।

नाट्य शास्त्र का ज्ञान दृ

नाट्य सन्धियों (मुखप्रतिमुखगर्भ, विमर्शऔरनिर्वहण) के प्रयोग की जिस प्रकार माघ द्वारा बताया गया है इस से यह सिद्ध होजाता हैकिनाट्यशास्त्रकेकिसीभीक्षेत्रसेवेअछूतेनहींथे। इसका एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण चौदह वेंसर्ग म ें दिखायी पड़ता है जहाँ पर नवरत्नों की व्यंजना की गयी है।

आयुर्वेद का ज्ञान दृ

आयुर्वेद शास्त्र काभी माघ को सूक्ष्म ज्ञान था जिसकाप्रमाणशिशुपालवधम्मेंदेखाजासकताहै। द्वितीय सर्ग में बलराम द्वारा कही गयी उक्ति में ज्वर सिद्धान्त का उदाहरण दर्शनीय है–

चतुर्थो पायसाध्येतुशत्रौ सान्त्वम पक्रिया।

स्वेधमामज्वरंप्राज्ञःकोऽम्भसापरिषिञ्चति।

दण्ड के द्वारा वश मेंआने वाले शत्रु केसा था शान्तिपूर्ण व्यवहार करना हानि युक्त होता हैक्योंकि पसीना लाने वाला ज्वर को कौनसा चिकित्स कपानी छिड़क कर शान्त करता है ? अर्थात कोई नहीं।

यहाँ परमाघ अप्रस्तुत विधान के रूप् में नीति संसार में शत्रु ज्वर केसमान होता है जो एक भयं कररोग के समान होता है उस के लिए धर्माचर ही करना चाहिए। आयुर्वेद से सम्बन्ध अनेक श्लोक

'शिशुपालवधम' मे ंमिलते हैं।
ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान
महाकविमाघज्योतिषशास्त्रमेंभीप्रवीणथे।तृतीयसर्गमेश्रीकृष्ण केरथारूढ़ होने का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–
''रराजसम्पादकमिष्टसिद्धेःसर्वासुदिक्ष्वप्रतिधिदृमार्गम्।
महारथःपुख्यरथंरथाङ्गीक्षिप्रंक्षपानाथइवाधिरूढः।''
सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले भगवान श्रीकृष्ण इच्छापूर्ति करने वाले सभी दिशाओं में बिना बाधा केचलने वाले और पूर्ण वेगसेचलनेवालेपुष्यनामकरथपरऐसेसुशोभितहोरहेथेजैसे– इच्छापूर्ति करने वाल`सब दिशाओं मेंयात्रा हेतु प्रशस्त और क्षिप्रनामकपुष्यन क्षेत्र में स्थित चन्द्रमा शोभित हो रहा है।
घंटामाघकीउपाधि
शिशु पाल वध मेरेवतक पर्वत की हाथी से और हाथी के बंधे घंटे की तुलना नही बल्कि रेवतक पर्वत क`दोनो ओर जो सूर्य और चन्द्रमा हैउसकीउपमास्वर्णऔररजतसेनिर्मितघंटेसेकीगईहै! अतःमाघ को घंटा माघ कहा जाता है।

निष्कर्ष

माघ को संस्कृत आलोचकोंव विद्वानों द्वारा प्रायःएक प्रकाण्डसर्व षास्त्रतत्त्वज्ञ विद्वान माना जाता है। दर्शनशास्त्र, संगीत शास्त्र तथा व्याकरण शास्त्र में उनकी विद्वत्ता थी। उनका पाण्डित्य एकांगी नही, प्रत्युत सर्वगामी था। अत एव उन्हें 'पण्डित–कवि' भी कहा गया है। महा कविभार विद्वारा प्रवर्तित "अलंकृतशैली" का पूर्ण विकसित स्वरुप माघ के महाकाव्य 'शिशुपालवध' में प्राप्त होता है, जिसका प्रभाव बाद के कवियों पर बहुत ही अधि कपड़ा। उनके 'शिशुपालवध' के प्रत्येक पक्ष की विशेषता का बहुत गहरा साहित्यिक अध्ययन संस्कृत विद्वानों व शिक्षा विदों द्वारा किया गया है।
उनके बारे में पं०बलदेव उपाध्याय ने कहा है –अलंकृत महा काव्य की यहआदर्श कल्पना महाकविमाघका संस्कृत साहित्य को अविस्मरणीय योग दान है, जिसका अनुसरण कर हमारा काव्य साहित्य समृद्ध, सम्पन्नत था सुसंस्कृत हुआ है।
माघ की प्रशंसा में कहा गया है–

उपमाकालिदासस्यभारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनःपदलालित्यंमाघेसन्तित्रयोगुणाः ॥
(कालिदासउपमामें, भारविअर्थगौरवमें,
औरदण्डीपदलालित्यमेंबेजोड़हैं। लेकिन माघ में ये तीनों गुण ाहैं।)विभिन्न शास्त्र ज्ञान म`निपुण महाकवि माघ की विद्वता अवर्णनीय है

संदर्भ

१–माघमहात्म्य दृमहाकविमाघ
२– पद्मपुराण संपादकसिद्धांतशास्त्री श्रीवीरसेवामंदिर
३– शिशुपालबधम् दृमहाकविश्रीमाघविरचितम्
संपादक दृपंडितकुलपति दृकलकता
४– वही
५ वही
६– समयमातृका दृक्षेमेन्द्र
७– मलतीमधवम् दृसंस्कृत दृहिन्दीटीका चन्द्रकला

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी
{प्रधानाचार्य }
एन० पी० के० आई, कालेज
सरदार नगर, बसडिला
गोरखपुर (उ0प्र0)

20 भारत में नारी सशक्तिकरण एवं मीडिया : एक अवलोकन

सुश्री संगीता बारला

सारांश –

वर्तमान समय में मीडिया की उपयोगिता एवं भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही हैं। महिलाएं विश्व की आधी आबादी मानी जाती हैं इसलिए उनके द्वारा मीडिया का प्रयोग एवं उन पर मीडिया के प्रभाव की अनदेखी नहीं की जा सकती है। आधुनिक संचार सेवाओं के युग में मीडिया ने नारी सशक्तिकरण में एक प्रमुख भूमिका निभाई हैं। जब मीडिया से संबंधित संसाधन उपलब्ध नहीं थे तब उसे अपनी बातों को सक्षम मंच के फोरम तक पहुंचाने में काफी मशक्कत करनी पड़ती थीं। लेकिन आज मीडिया के माध्यम से वह अपने बातों को अपने लक्ष्य तक पहुंचा सकती हैं। सोशल मीडिया ने महिलाओं को अपने दृष्टिकोण और अपनी राय को सामने लाने का एक महत्वपूर्ण प्रयास किया है। मीडिया ही वह माध्यम है, जिसने समाज में महिलाओं के प्रति दोहरे रवैये के खिलाफ आवाज बुलंद करने, उन को सशक्त बनाने एवं जागरूक करने तथा अपने अधिकारों के प्रति लड़ने की प्रेरणा दी है। आज मीडिया महिलाओं में हथियार के रूप में हैं जिसका प्रयोग वह अपने सुरक्षा तथा अधिकारों के लिए कर रही हैं। मीडिया पर उनकी निर्भरता उनके सशक्तिकरण में एक प्रमुख भूमिका निभा रही हैं।

बीज शब्दः– मीडिया, नारी सशक्तिकरण, मंच, फोरम, हथियार

प्रस्तावनाः–भारतीय संस्कृति में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्रदेवता' अर्थात जहां नारी की पूजा होती है वहां देवताओं का वास होता है, जैसी उक्ति प्राचीन कालों से चली आ रही है।साथ ही कितनी विडंबना की बात है कि "एक और स्त्री को आदि शक्ति तथा देवी का स्थान देकर पूजा तो की जाती है किंतु व्यवहार में उसी स्त्री को पैर की जूती मानकर अवहेलना की जाती रही है। घर में बेटे का जन्म परिवार को जितनी खुशियां दे जाता है, पता नहीं लड़की का जन्म इतनी खुशियां क्यों नहीं देता।"[1]देश में आधी जनसंख्या महिलाओं की है। वर्तमान में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जिसमें महिलाओं ने सफलता के झंडे न गाड़े हो। बावजूद वे आज भी अधिकारों से वंचित हैं। प्राचीन काल में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर समान अधिकार प्राप्त थे परंतु वर्तमान काल में इस मान्यता में कुछ विकृतियां आने लगी हैं, जिसके कारण आज समाज में महिला सशक्तिकरण एक प्रमुख चुनौती बन गई है। "यह सच है कि ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, रीति–रिवाजों, परंपराओं एवं सांस्कृतिक बाध्यताओं के चलते समाज में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा कम अहमियत दी जाती हैं। अहमियत कम दिए जाने का प्रमुख कारण पुरुष एवं महिलाओं की भूमिका में निरंकुश तरीके से किया गया विभाजन है। शोषण की प्रकृति तब चरम पर होती है जब नारी को धन या संपत्ति के रूप में भोग्या और उत्पादन के साधन के रूप में देखा जाता है।"[2]21वीं सदी के इन दिनों में मीडिया एक सशक्त माध्यम है जो आज समूचे जीवन तंत्र एवं सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित कर रहा है। आज के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि हर मुद्दों पर मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, वह चाहे सकारात्मक मुद्दा हो या फिर नकारात्मक। किसी भी विषय पर राय बनाने में मीडिया का उस विषय पर प्रस्तुतिकरण महत्वपूर्ण रहता है। मीडिया ने एक तो महिलाओं को कई अहम पद देकर उन्हें सशक्त बनाया है वही उनकी प्रेरक कहानियों से उनमें आत्मविश्वास भी उत्पन्न किया है। मीडिया के कारण ही आज महिलाओं पर होने वाले जुर्म सामने आ रहे हैं । महिलाओं के मुद्दे कभी भी पहले इतने चर्चा में नहीं होते थे, जितने आज हैं। मीडिया ही वह माध्यम है कि अगर आज किसी पर तेजाब फेंकने जैसी घटना होती है तो आरोपी सलाखों के पीछे होता है। मीडिया के कई प्रारूपों के कारण ही "बड़े शहरों में जहां स्त्रियों पर अत्याचार होता है, वे आंदोलन मंच पर आ जाते हैं। भारत में स्त्री आंदोलन का सबसे बड़ा मुद्दा बुनियादी मुद्दा है। पितृवंशी व्यवस्था में स्त्रियों की बदलती स्थिति का बहुत बड़ा कारण पितृवंश और पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। ऐसा लगता है कि शिक्षा के व्यापक और वैश्वीकरण के फैलाव के साथ यह आंदोलन गांव की चौपालों तक भी पहुंच जाएगा।"[3]

युगों से यह चली आ रहा है कि महिलाओं को किसी प्रकार से सशक्त बनाया जाए।महिलाओं को सशक्त बनने के लिए उन्हें स्वयं भी खुले मन से राजनीति में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए। "स्वतंत्रता से पूर्व सभी स्त्रियों को वोट देने का अधिकार नहीं था परंतु आज भारत की प्रत्येक नारी जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है उन्हें वोट देने तथा स्वयं लोकसभा, विधानसभा आदि के सदस्य के लिए उम्मीदवार होने का अधिकार भी मिल गया है। अब तो पंचायत, नगरपालिका आदि के चुनाव में काफी संख्या में सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गई हैं।"[4] ऐसे में उन्हें चाहिए कि वे राजनीति में प्रवेश कर महिलाओं का प्रतिनिधित्व करे और उनका सम्मान एवं हक दिलाए। इस नेक कार्य हेतु मीडिया का हर एक प्रारूप सदैव तैयार रहता है और राजनीति जागरूकता संबंधी कई कार्यंक्रमों का प्रचारण–प्रसारण कर उन्हेंप्रतिनिधित्व केलिए मानसिक रूप सेतैयार करती है।भारत को विकसित देश की

सूची में शामिल होने के लिए आवश्यक है कि भारतीय महिलाओं को सशक्त किया जाए और मीडिया ने महिलाओं के सशक्तिकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। वर्तमान समय में मीडिया महिलाओं के लिए सूचना, ज्ञान और जानकारी प्राप्त करने का एक प्रमुख साधन होने के साथ ही उनके सशक्तिकरण के लिए एक मजबूत और प्रभावी माध्यम भी है।

नारी सशक्तिकरण एवं मीडियाः—महिला सशक्तिकरण का अर्थ है— महिलाओं को राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक क्षेत्रों में बराबर का भागीदार बनाया जाए। भारतीय महिलाओं का सशक्तिकरण बहुत हद तक भौगोलिक, शैक्षणिक योग्यता और सामाजिक एकता पर निर्भर करता है। लोकतांत्रिक देशों में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्रियाकलापों पर नजर रखने के लिए मीडिया को चौथे स्तंभ के रूप में जाना जाता है। 18वीं शताब्दी के बाद से खासकर अमेरिकी स्वतंत्रता आंदोलन और फ्रांसीसी क्रांति के समय से जनता तक पहुंचने और उसे जागरूक कर सक्षम बनाने में मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वर्तमान समय में मीडिया की उपयोगिता, महत्व एवं भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। कोई भी समाज, सरकार, वर्ग, संस्था, समूह तथा व्यक्ति मीडिया की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता। आज के जीवन में मीडिया एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है। मीडिया ने महिला सशक्तिकरण जैसे विषय पर बहुत पहले से ही अपना कार्य करना प्रारंभ कर दिया था। 1920 ईस्वी के दशक में जब संचार माध्यम के रूप में रेडियो पहली बार घर के भीतर गया तब उसने सबसे ज्यादा भला घरों में रहने वाली महिलाओं का ही किया था। आजादी के संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी 1920 ई. के बाद ही बढ़ी। रेडियो के बाद सिनेमा और फिर टेलीविजन ने महिला सशक्तिकरण के विचार को और भी बढ़ावा देने का कार्य किया। प्रिंट मीडिया, रेडियो, टी.वी., फिल्में और इंटरनेट यह सभी मीडिया के वे घटक है जिन्होंने महिलाओं के अन्दर स्वाभीमान एवं स्वावलंबन की भावना जगाई। महिलाएं विश्व की आधी आबादी हैं इसलिए उनके द्वारा मीडिया का प्रयोग और उन पर मीडिया के प्रभाव संबंधी बिंदुओं की अनदेखी नहीं की जा सकती है।

मीडिया जनसंचार का वह माध्यम है जोजनसाधारण में विभिन्न सूचनाओं का संप्रेषण करती है, जनमत का निर्माण करती है एवं जनता में चेतना एवं जागरूकता का विकास कर उन्हें अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति सचेत करती है। प्रकाशित पुस्तकों, साहित्य से इतर अखबारों पत्र—पत्रिकाओं समाचार के अन्य माध्यमों से भी ज्यादा प्रभावित दृश्य और श्रव्य रूप में सिनेमा और टेलीविजन जैसे घर—घर की पहुंच रखने वाले माध्यम भी इस समय चलन में है। ऐसे में समाज के संचालन की धुरी कही जाने वाली एक स्त्री जिन—जिन रूपों और भूमिकाओं में समाज में स्थापित होती हैं, वह उन सभी भूमिकाओं में अलग—अलग प्रकार से अपने समय में उपलब्ध संचार माध्यमों और आधुनिक मीडिया जैसे उपकरणों से खुद को जोड़ती हैं, उनका इस्तेमाल करती हैं।आधुनिक संचार सेवाओं के युग में नारी निश्चित रूप से सशक्त बनी है। जब मीडिया से संबंधित संसाधन उपलब्ध नहीं थे तब उसे अपनी बात सक्षम मंच के फोरम तक पहुंचाने के लिए बहुत मशक्कत करनी पड़ती थी। उसकी आवाज समय से लक्ष्य तक पहुंच नहीं पाती थी लेकिन आज ऐसा नहीं हैं। आज मीडिया इतनी सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा आज वह अपनी बातों को अपने लक्ष्य तक पहुंचा सकती है।"वर्तमान समय में प्रेस ने काफी उन्नति की है जिसके कारण कई प्रकार की प्रगतिशील पुस्तकों, समाचार पत्र आदि का अखिल भारतीय आधार पर मुद्रण एवं वितरण संभव हुआ है। इसके अतिरिक्त यातायात और संचार के उन्नत साधनों ने देश और दुनिया की स्त्रियों को एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने में सहायता प्रदान की है। इन सबों के द्वारा अर्थात प्रेस सहायता व संचार साधनों द्वारा नारी आंदोलन को चलाने, नारी समस्या के प्रति स्वस्थ जनमत निर्माण करने, नारी नेताओं के विचार दूर—दूर तक फैलाने में सहायता मिलती है। यह भारतीय नारी की वर्तमान उन्नत स्थिति का एक महत्वपूर्ण कारक है।"[5]वर्त्तमान दौर में फिल्में, टेलीविजन और इंटरनेट मीडिया का एक बहुत ही सशक्त माध्यम है, जिससे परिवार सीधे जुड़ते हैं। आज यह स्वीकार करना ही होगा कि इन माध्यमों में स्त्री ही केंद्रीय भूमिका में हैं। भारत के समाचार संस्थानों और सभी इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में ऑनस्क्रीन स्त्री प्रभावी है जोकि एक बड़ी उपलब्धि है। सोशल मीडिया में फेसबुक, व्हाटस—एप, ट्विटर, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसे माध्यमों पर करोड़ों की संख्या में महिलाएं सक्रिय हैं।

महिला सशक्तिकरण के प्रमुख पहलुओं में स्त्री सुरक्षा, शिक्षा, सेहत, आर्थिक स्वतंत्रता, समाज में सांस्कृतिक स्वतंत्रता तथा निर्णय लेने की क्षमता जैसे बिंदु प्रमुख हैं। आज सोशल मीडिया के माध्यम से महिलाएं अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रही हैं। सोशल मीडिया ने महिलाओं को अपने दृष्टिकोण और अपनी राय को सामने रखने में एक महत्वपूर्ण मंच प्रदान किया है। वह क्या सोचती है ?समाज के प्रति उसकी क्या राय है ?किन—किन चीजों में बदलाव चाहती हैं ?इन सभी विचारों को सोशल मीडिया के द्वारा व्यक्त करती हैं। रूढ़िवादी सोच वाले समाज में महिलाओं को अपनी राय रखने का मौका नहीं दिया जाता है लेकिन सोशल मीडिया इस कमी को पूरी कर के महिलाओं को सशक्त महसूस करवाने में अपना योगदान दिया है। आज सोशल मीडिया के माध्यम से महिलाएं खुद को ही नहीं बल्कि अन्य महिलाओं को भी सशक्त कर रही हैं। वह अपनी प्रगति तथा उपलब्धियों को जब सोशल मीडिया पर शेयर करती हैं तो अन्य महिलाएं भी उन्हें देखकर आगे बढ़ने का प्रयास करती हैं, जिसके चलते 'विमेन एंपावरमेंट' काफी जोरों—शोरों से बढ़ रहा है।

महिलाओं को अपने ज्ञान को बढ़ाने और अनुभव में बढ़ोतरी करने का अवसर प्राप्त हो रहा है। समाज में क्या बदलाव आ रहे हैं आदि की जानकारी रखकर महिलाएं अपने ज्ञान के दायरे को बढ़ा रही हैं। साथ ही सोशल मीडिया का इस्तेमाल उन्हें एक नया अनुभव प्रदान कर रहा है। मीडिया जहां उसके लिए जानकारी का माध्यम है, वहीं मीडिया किसी ना किसी रूप में कई दृष्टिकोण को प्रभावित कर रहा है। मीडिया ना केवल उनकी सोच या जीवन शैली को प्रभावित कर रहा है बल्कि उनको अपने विचार समाज के सामने मजबूत व दृढ़ता के साथ रखने का एक अवसर भी प्रदान कर रहा है। दूसरी और महिलाओं की मीडिया पर बढ़ती निर्भरता उनके लिए न्यू मीडिया के नए द्वार भी खोल रही है। एक तरफ मीडिया के विस्तार और नई तकनीकी आगमन के साथ आज सभी महिलाएं मीडिया से किसी ना किसी रूप से जुड़ी हुई हैं। वहीं दूसरी ओर कार्यक्रमों की पसंद, प्राथमिकताओं व रुचि के बदलने से महिलाओं की मीडिया आदतों में कई बदलाव आए हैं।

महिलाओं के वर्तमान परिवेश को देखकर मीडिया के प्रभाव को देखा जा सकता है। वे अब इंटरनेट से बड़ी संख्या में जुड़ रही हैं एवं विभिन्न उद्देश्यों को लेकर उसका प्रयोग भी कर रही हैं। आज इंटरनेट के माध्यम से वे अपनी पाककला तथा गृहस्थ कार्यों की दक्षता को बढ़ाने का कार्य कर रही है, वहीं दूसरी ओर रोजगार, शिक्षा, व्यापार के कारण वे इससे जुड़ी हुई हैं। कई महिलाएं आज सोशल साइट्स के माध्यम से अपने मित्रों तथा दूर देश के रिश्तेदारों से संवाद स्थापित कर रही हैं वही इंटरनेट जैसे मीडिया के माध्यम के द्वारा महिलाओं को समाज के सामने अपने दक्षता प्रमाण करने का एक मंच भी उपलब्ध कराया है।"सूचना प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग में उपभोक्तावाद और बाजारवाद की ताकतों ने स्त्री के लिए संकट और समस्याएं बढ़ा दी है वह व्यक्ति से वस्तु में तब्दील हो गई है विज्ञापनों ने नारी देह का सीमातीत उपयोग शोषण की सीमा तक पहुंच गयाहै।"[6]प्रसिद्ध उपन्यास लेखीका तस्लीमा नसरीन अपनी रचना 'औरत के हक में' स्पष्ट करती है कि "नारी के साथ रमन का संबंध बहुत गहरा है पुरुष नारी को यौन सामग्री के रूप में अधिक विवेचित करता है। इसलिए निःसंकोच उसका नाम दिया गया रमणी।"[7]यह अन्तरात्मा की गहराई से विचारणीय है कि क्या यौन संभोग के वस्तु रूप से ही नारी की पहचान होती है?नारी की क्या कोई विशेषता नहीं है?समाज की इस पूंजीवादी और बाजारीकरण व्यवस्थान ने नारी को भोगप्रधान वस्तु के रूप में बना दी गई है।

कई विद्वानों द्वारा मीडिया का महिलाओं पर पड़ने वाले सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव की बात भी की जा रही है। उनके अनुसार मीडिया एक और तो महिलाओं के लिए बड़े क्रांतिकारी मंच की भूमिका निभा रहा है वहीं दूसरी ओर उसने उन्हें एकांकी बनाने का काम भी किया है। इसका प्रभाव कहीं ना कहीं उनके सामाजिक संबंधों पर भी दृष्टिगोचर होता दिख रहा है लेकिन तमाम नकारात्मक पहलुओं के बावजूद मीडिया ने महिलाओं को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।मीडिया ही वह माध्यम है जिसने समाज में महिलाओं के प्रति दोहरे रवैए के खिलाफ आवाज बुलंद करने उन को सशक्त बनाने, उन को जागरूक करने तथा अपने अधिकारों के प्रति लड़ने की प्रेरणा दी है।

नारी सशक्तिकरण की दिशा में मीडिया की प्रमुख चुनौतियां एवं समाधान– आज भले मीडिया ने महिलाओं को सशक्त बनाने में भूमिका निभाई है लेकिन कहीं ना कहीं महिला सशक्तिकरण के रास्ते में कई रुकावटें हैं, जिसके कारण महिलाएं आज भी विकास के मार्ग से काफी दूर हैं––

भारतीय महिलाओं को आज भी खासतौर पर मध्यम वर्गीय परिवार में घर की चारदीवारी से बाहर निकलने पर पाबंदी है।

किसी किसी परिवार में जिसने महिलाएं पुरुषों से ज्यादा कमाती हैं, उस परिवार में भी उन्हें पारिवारिक और सामाजिक विषयों के निर्णय लेने पर पाबंदी है।

महिलाओं को पुरुषों के बराबर शिक्षा का अधिकार नहीं दिया जाता है। आज भी लड़कों के मुकाबले बहुत कम लड़कियां स्कूल जा पाती हैं। बहुत सारी भारतीय महिलाओं ने तो कभी भी स्कूल का मुंह तक नहीं देखा होता है।

भारत में पुरुषों के मुकाबले बहुत कम महिलाएं काम–धंधें कर पाती हैं। कुछ महिलाएं जो काम–धंधें कर पाती हैं, इसका कारण परिवार की निम्न आर्थिक स्थिति है। महिलाओं का विवाह, रोजगार में नकारात्मक संबंध है। विवाह के बाद महिलाओं को नौकरी करने की इजाजत नहीं दी जाती हैं।

घरेलू हिंसा, महिला सशक्तिकरण के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट है। एक अनुमान के अनुसार भारत में हर पांच में से दो महिलाएं घरेलू हिंसा के शिकार हैं।

महिला सशक्तिकरण में मीडिया का एक महत्वपूर्ण योगदान है, परंतु अफसोस की बात यह है कि आज भी 100 फीसदी भारतीय महिलाएं मीडिया से नहीं जुड़ पाई हैं।

अगर सही मायनों में भारतीय महिलाओं को सशक्त बनाना है तो हमें इन समस्याओं को दूर करना ही होगा। हमें महिलाओं को आजादी से घूमने और घर से बाहर जाकर काम करने को बढ़ावा देना होगा। आज महिलाओं को हर तरह के विषयों में निर्णय लेने की आजादी मिलनी चाहिए। इसके अलावा सरकार को महिलाओं पर हो रही घरेलू हिंसा एवं प्रताड़ना को रोकने के लिए कड़े कानून बनाने चाहिए। महिलाओं को सशक्तहोने के लिए शिक्षित होना आवश्यक है क्योकि शिक्षा आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सशक्तिकरण के लिए पहला और मूलभूत साधन है। शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे महिला समाज मेंअपने सशक्त, समान व उपयोगी भूमिका दर्ज करा

सकती हैं। इस संदर्भ में राधाकृष्णन आयोग ने कहा है कि '' स्त्रियों के शिक्षित हुए बिना किसी समाज के लोग शिक्षित नहीं हो सकते हैं।यदि सामान्य शिक्षा एवं पुरुषों में से किसी एक को देने की विवशता हो तो यह अवसर स्त्रियों को ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने पर निश्चित रूप से वह शिक्षा उनके द्वारा अगली पीढ़ी तक पहुंच जाएगी।"भारत में स्वतंत्रता के समय स्त्रियों में केवल 6 फीसदी साक्षरता थी वही आज यह संख्या बढ़कर 64.4 फीसदी हो गई है।"शिक्षा के प्रसार से स्त्रियों में न केवल एक सामाजिक चेतना विकसित हुई बल्कि उन्होंने उन कुरीतियों से भी छुटकारा पा लिया जो उन्हें दास्तां की जंजीरों में जकड़े हुए थे। अपनी शैक्षणिक उपलब्धियों द्वारा स्त्रियों ने यह प्रमाणित कर दिया कि मानसिक स्तर पर भी किसी भी तरह पुरुषों से निम्न नहीं हैं।"[8]स्वतंत्रता के बाद सरकार महिला संगठनों, महिला आयोग आदि के प्रयास से महिलाओं के लिए विकास के द्वार खुले, उनमें शिक्षा का प्रसार बढ़ा, जिससे उनमें जागृति आई, आत्मविश्वास उत्पन्न हुआ। परिणाम स्वरूप आज वे प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि मीडिया आज महिलाओं के ज्ञान, सूचना, जानकारी तथा मनोरंजन का एक प्रमुख माध्यम बन गया है। आज मीडिया महिलाओं में एक हथियार के रूप में है जिसका प्रयोग वह अपनी सुरक्षा तथा अधिकारों के लिए कर रही हैं। मीडिया पर उसकी निर्भरता ही उसके सशक्तिकरण में एक प्रमुख भूमिका निभा रहा है। आज महिलाएं सशक्त हैं, आजाद हैं और निडर हैं क्योकि मीडिया की भूमिका ने महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा करने का काम किया है। आज वह अपने फैसले खुद लेने के लिए सक्षम है तथा उन्हें किसी के ऊपर निर्भर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। भविष्य में महिलाओं तक मीडिया की व्यापक पहुंच बने और वे मीडिया के प्रत्येक माध्यम का कुशलतापूर्वक अपने उद्देश्य के अनुसार उपभोग कर सकें, इसके लिए विभिन्न स्तर पर सच्चे मन से क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :–

1. आधी आबादी, दो शब्द, सं.डॉ. संदीप श्रीराम पाईकराव, परिकल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018, पृष्ठ सं. 112.
2. आधी आबादी, सं. डॉ. संदीप श्रीराम पाईकराव, भारतीय संदर्भ में महिला सशक्तिकरण एवं उनके अधिकार, डॉ. राहुल कुमार, परिकल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.–140
3. रविंद्रनाथ मुखर्जी, भारतीय समाज व संस्कृति, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–2006, पृष्ठ सं.– 312
4. शशि रानी अग्रवाल, स्त्री वर्तमान संदर्भ में, विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, संस्करण–2008, पृष्ठ सं.–19
5. एस, गुलाटी, वूमेन एंड सोसाइटी, चाणक्य पब्लिकेशन,दिल्ली, संस्करण–1985, पृष्ठ सं.–58
6. आधी आबादी, संपा. डॉ.संदीप श्रीराम पाईकराव, भूमिका– प्रोफेसर उषा यादव, परिकल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2018, पृष्ठ सं.–14
7. औरत के हक में, तस्लीमा नसरीन, पृष्ठ सं.– 76
8. ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद का सामाजिक आधार, संस्करण –1969, पृष्ठ सं–79

सुश्री संगीता बारला,

सहायक प्राध्यापक,

अर्थशास्त्र विभाग,

जगन्नाथ जैन महाविद्यालय,

झुमरीतिलैया, कोडरमा,

झारखण्ड

21

महाकवि कालिदास के विक्रमोर्वशीयम् (नाटक) की वैषयिक रमणीयता

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी

सारांश –

कालिदास संस्कृत भाषा के महान कवि और नाटककार थे। उन्होंने भारत की पौराणिक कथाओं और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएं की और उनकी रचनाओं में भारतीय जीवन और दर्शन के विविध रूप और मूल तत्व निरूपित हैं। कालिदास अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण राष्ट्र की समग्र राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने वाले कवि माने जाते हैं और कुछ विद्वान उन्हें राष्ट्रीय कवि का स्थान तक देते हैं। अभिज्ञानशाकुंतलम् कालिदास की सबसे प्रसिद्ध रचना है। यह नाटक कुछ उन भारतीय साहित्यिक कृतियों में से है जिनका सबसे पहले यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ था। यह पूरे विश्व साहित्य में अग्रगण्य रचना मानी जाती है। मेघदूतम् कालिदास की सर्वश्रेष्ठ रचना है जिसमें कवि की कल्पनाशक्ति और अभिव्यंजनावादभावाभिव्यन्जना शक्ति अपने सर्वोत्कृष्ट स्तर पर है और प्रकृति के मानवीकरण का अद्भुत दृश्य इस खंडकाव्य में दिखता है। कालिदास वैदर्भी रीति के कवि हैं और तदनुरूप वे अपनी अलंकार युक्त किन्तु सरल और मधुर भाषा के लिये विशेष रूप से जाने जाते हैं। उनके प्रकृति वर्णन अद्वितीय हैं और विशेष रूप से अपनी उपमाओं के लिये जाने जाते हैं। साहित्य में औदार्य गुण के प्रति कालिदास का विशेष प्रेम है और उन्होंने अपने विभिन्न रस प्रधान साहित्य में भी आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है। कालिदास के परवर्ती कवि बाणभट्ट ने उनकी सूक्तियों की विशेष रूप से प्रशंसा की है।

सारांश

विक्रमोर्वशीयम् एक रहस्य भरा नाटक है। इसमें पुरूरवा इंद्रलोक की अप्सरा उर्वशी से प्रेम करने लगते हैं। पुरूरवा के प्रेम को देखकर उर्वशी भी उनसे प्रेम करने लगती है। इंद्र की सभा में जब उर्वशी नृत्य करने जाती है तो पुरूरवा से प्रेम के कारण वह वहां अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाती है। इससे इंद्र गुस्से में उसे शापित कर धरती पर भेज देते हैं। हालांकि, उसका प्रेमी अगर उससे होने वाले पुत्र को देख ले तो वह फिर स्वर्ग लौट सकेगी। विक्रमोर्वशीयम् काव्यगत सौंदर्य और शिल्प से भरपूर है

विक्रमोर्वशीयम् कालिदास द्वारा रचित पाँच अंकों का एक त्रोटकख्, है। इसमें राजा पुरुरवा तथा अप्सरा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। विक्रमोर्वशीयम् में श्रृंगार रस की प्रधानता है, पात्रों की संख्या कम है

महाकवि कालिदास ने विक्रमोर्वशीयम् नाटक को मानवीय प्रेम की अत्यन्त मधुर एवं सुकुमार कहानी में परिणत कर दिया है विक्रमोर्वशीयम् के प्राकृतिक दृश्य बड़े रमणीय हैं साथ ही उर्वसी तथा पुरुरवा के प्रेम को अत्यंत मनोहर तथा उत्कृष्ट रूप मे प्रस्तुत किया गया है

उर्वसी का संक्षिप्त परिचय

साहित्य और पुराण में उर्वशी सौंदर्य की प्रतिमूर्ति रही है। स्वर्ग की इस अप्सरा की उत्पत्ति नारायण की जंघा से मानी जाती है। पद्मपुराण के अनुसार इनका जन्म कामदेव के उरु से हुआ था। श्रीमद्भागवत के अनुसार यह स्वर्ग की सर्वसुंदर अप्सरा थी। एक बार इंद्र की राजसभा में नाचते समय वह राजा पुरु के प्रति क्षण भर के लिए आकृष्ट हो गई। इस कारण उनके नृत्य का ताल बिगड़ गया। इस अपराध के कारण राजा इंद्र ने रुष्ट होकर उसे मर्त्यलोक में रहने का अभिशाप दे दिया। मर्त्य लोक में उसने पुरु को अपना पति चुना किंतु शर्त यह रखी कि वह पुरु को नग्न अवस्था में देख ले या पुरुरवा उसकी इच्क्षा के प्रतिकूल समागम करे अथवा उसके दो मेष स्थानांतरित कर दिए जाएं तो वह उनसे संबंध विच्छेद कर स्वर्ग जाने के लिए स्वतंत्र हो जाएगी। ऊर्वशी और पुरुरवा बहुत समय तक पति पत्नी के रूप में साथ –साथ रहे।

इनके नौ पुत्र आयु, अमावसु, श्रुतायु, दृढ़ायु, विश्वायु, शतायु आदि उत्पन्न हुए। दीर्घ अवधि बीतने पर गंधर्वों को ऊर्वशी की अनुपस्थिति अप्रीय प्रतीत होने लगी। गंधर्वों ने विश्वावसु को उसके मेष चुराने के लिए भेजा। उस समय पुरुरवा नग्नावस्था में थे। आहट पाकर वे उसी अवस्था में विश्वाबसु को पकड़ने दौड़े। अवसर का लाभ उठाकर गंधर्वों ने उसी समय प्रकाश कर दिया। जिससे उर्वशी ने पुरुरवा को नंगा देख लिया। आरोपित प्रतिबंधों के टूट जाने पर ऊर्वशी श्राप से मुक्त हो गई और पुरुरवा को छोड़कर स्वर्ग लोक चली गई। महाकवि कालीदास के संस्कृत महाकाव्य विक्रमोर्वशीयम् नाटक की कथा का आधार यही प्रसंग है द्य

नाटक का संक्षिप्त अंश

एक बार देवलोक की परम सुंदरी अप्सरा उर्वशी अपनी सखियों के साथ कुबेर के भवन से लौट रही थी। मार्ग में केशी दैत्य ने उन्हें देख लिया और तब उसे उसकी सखी चित्रलेखा सहित वह बीच रास्ते से ही पकड़ कर ले गया।

यह देखकर दूसरी अप्सराएँ सहायता के लिए पुकारने लगीं, "आर्यों! जो कोई भी देवताओं का मित्र हो और आकाश में आ–जा सके, वह आकर हमारी रक्षा करें।" उसी समय प्रतिष्ठान देश के राजा पुरुरवा

भगवान सूर्य की उपासना करके उधर से लौट रहे थे। उन्होंने यह करूण पुकार सुनी तो तुरंत अप्सराओं के पास जा पहुँचे। उन्हें ढाढ़स बँधाया और जिस ओर वह दुष्ट दैत्य उर्वशी को ले गया था, उसी ओर अपना रथ हाँकने की आज्ञा दी।

अप्सराएँ जानती थीं कि पुरुरवा चंद्रवंश के प्रतापी राजा है और जब–जब देवताओं की विजय के लिए युद्ध करना होता है तब–तब इंद्र इन्हीं को, बड़े आदर के साथ बुलाकर अपना सेनापति बनाते हैं।

इस बात से उन्हें बड़ा संतोष हुआ और वे उत्सुकता से उनके लौटने की राह देखने लगी। उधर राजा पुरुरवा ने बहुत शीघ्र ही राक्षसों को मार भगाया और उर्वशी को लेकर वह अप्सराओं की ओर लौट चले

रास्ते में जब उर्वशी को होश आया और उसे पता लगा कि वह राक्षसों की कैद से छूट गई है, तो वह समझी कि यह काम इंद्र का है। परंतु चित्रलेखा ने उसे बताया कि वह राजा पुरुरवा की कृपा से मुक्त हुई है। यह सुनकर उर्वशी ने सहसा राजा की ओर देखा, उसका मन पुलक उठा। राजा भी इस अनोखे रूप को देखकर मन–ही–मन उसे सराहने लगे।

इसी तरह की बातें सुनकर उर्वशी को विश्वास हो गया कि महाराज उसी के प्रेम के कारण इतने दुखी हैंय पर वह अभी प्रगट नहीं होना चाहती थी। इसलिए उसने भोजपत्र पर महाराज की शंकाओं के उत्तर में एक प्रेमपत्र लिखा और उनके सामने फेंक दिया। महाराज ने उस पत्र को पढ़ा तो पुलक उठे। उन्हें लगा जैसे वे दोनों आमने–सामने खड़े होकर बातें कर रहे हैं। कहीं वह पत्र उनकी उंगलियों के पसीने से पुछ न जाए, इस डर से उसे उन्होंने विदूषक को सौंप दिया। उर्वशी को यह सब देख–सुनकर बड़ा संतोष हुआय पर वह अब भी सामने आने में झिझक रही थी। इसलिए पहले उसने चित्रलेखा को भेजा। पर जब महाराज के मुँह से उसने सुना कि दोनों ओर प्रेम एक जैसा ही बढ़ा हुआ है तो वह भी प्रगट हो गई। आगे बढ़ कर उसने महाराज का जय–जयकार किया। महाराज उर्वशी को देखकर बड़े प्रसन्न हुए लेकिन अभी वे दो बातें भी नहीं कर पाए थे कि उन्होंने एक देवदूत का स्वर सुना। वह कह रहा था, "चित्रलेखा! उर्वशी को शीघ्र ले आओ। भरत मुनि ने तुम लोगों को आठों रसों से पूर्ण जिस नाटक की शिक्षा दे रखी है, उसी का सुंदर अभिनय देवराज इंद्र और लोक–पाल देखना चाहते हैं।"

यह सुनकर चित्रलेखा ने उर्वशी से कहा, "तुमने देवदूत के वचन सुने। अब महाराज से विदा लो।"

लेकिन उर्वशी इतनी दुखी हो रही थी कि बोल न सकी। चित्रलेखा ने उसकी ओर से निवेदन किया, "महाराज, उर्वशी प्रार्थना करती है कि मैं पराधीन हूँ। जाने के लिए महाराज की आज्ञा चाहती हूँ, जिससे देवताओं का अपराध करने से बच सकूँ।" महाराज भी दुखी हो रहे थे। बड़ी कठिनता से बोल सके, "भला मैं आपके स्वामी की आज्ञा का कैसे विरोध कर सकता हूँ, लेकिन मुझे भूलिएगा नहीं।"

इस बात से उन्हें बड़ा संतोष हुआ और वे उत्सुकता से उनके लौटने की राह देखने लगी। उधर राजा पुरुरवा ने बहुत शीघ्र ही राक्षसों को मार भगाया और उर्वशी को लेकर वह अप्सराओं की ओर लौट चले

रास्ते में जब उर्वशी को होश आया और उसे पता लगा कि वह राक्षसों की कैद से छूट गई है, तो वह समझी कि यह काम इंद्र का है। परंतु चित्रलेखा ने उसे बताया कि वह राजा पुरुरवा की कृपा से मुक्त हुई है। यह सुनकर उर्वशी ने सहसा राजा की ओर देखा, उसका मन पुलक उठा। राजा भी इस अनोखे रूप को देखकर मन–ही–मन उसे सराहने लगे।

अप्सराएँ उर्वशी को फिर से अपने बीच में पाकर बड़ी प्रसन्न हुई और गदगद होकर राजा के लिए मंगल कामना करने लगीं, "महाराज सैंकड़ों कल्पों तक पृथ्वी का पालन करते रहें।" इसी समय गंधर्वराज चित्ररथ वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने बताया कि जब इंद्र को नारद से इस दुर्घटना का पता लगा, तो उन्होंने गंधर्वों की सेना को आज्ञा दी, "तुरंत जाकर उर्वशी को छुड़ा लाओ।" वे चले लेकिन मार्ग में ही चारण मिल गए, जो राजा पुरुरवा की विजय के गीत गा रहे थे। इसलिए वह भी उधर चले आए। पुरुरवा और चित्ररथ पुराने मित्र थे। बड़े प्रेम से मिले। चित्ररथ ने उनसे कहा, "अब आप उर्वशी को लेकर हमारे साथ देवराज इंद्र के पास चलिए। सचमुच आपने उनका बड़ा भरी उपकार किया है।" लेकिन विजयी राजा ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इसे इंद्र की कृपा ही माना। बोले, "मित्र! इस समय तो मैं देवराज इंद्र के दर्शन नहीं कर सकूँगा। इसलिए आप ही इन्हें स्वामी के पास पहुँचा आइए

निष्कर्ष–

कालिदास को कविकुलगुरु, कनिष्ठिकाधिष्ठित और कविताकामिनीविलास जैसी प्रशंसात्मक उपाधियाँ प्रदान की गयी हैं जो उनके काव्यगत विशिष्टताओं से अभिभूत होकर ही दी गयी हैं।

साहित्य में रामधारी सिंह दिनकर ने इसी कथा को अपने काव्यकृति का आधार बनाया और उसका शीर्षक भी रखा ऊर्वशी। महाभारत की एक कथा के अनुसार एक बार जब अर्जुन इंद्र के पास अस्त्र विद्या की शिक्षा लेने गए तो उर्वशी उन्हें देखकर मुग्ध हो गई। अर्जुन ने ऊर्वशी को मातृवत देखा। अतः उसकी इच्छा पूर्ति न करने के कारण। इन्हें शापित होकर एक वर्ष तक पुंसत्व से वंचित रहना पड़ा।.

निष्कर्षत रू विक्रमोर्वशीयम् कालिदास का विख्यात नाटक है यह पांच अंकों का नाटक है। इसमें राजा पुरुरवा तथा उर्वशी का प्रेम और उनके विवाह की कथा है। .यह मानवीय प्रेम का एक

सर्वोत्कृष्ट नाटक है जो युगों दृयुगों तक प्रशंसनीय तथा अमूल्य निधि के रूप मे याद किया जाएगा

संदर्भ

१—वक्रमोर्वशीयम—कालिदास प्रकाशकरू साँई पब्लिकेशंस

२—उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा भारती अकादमी,

३—संस्कृत साहित्य सोपान

४—अच्च्युतानंद घिल्डियाल और गोदावरी घिल्डियाल दृ कालिदास और उसका मानवीय साहित्य

५—उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा भारती अकादमी,

६—वही दृ

७—वही दृ

६—ए बी कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा प्रकाशक 'भारती अकादमी,

८—कालिदास दृ ग्रंथावली दृ श्रीमती अलका श्रीवास्तव उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ

डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी

{प्रधानाचार्य}

एन० पी० के० आई, कालेज

सरदार नगर बसडिला

गोरखपुर (उ0प्र0) ,

22

कविवर रमेश कौशिक के काव्य में सूक्ष्म बिम्ब

डॉ0 बीना शुक्ला

सरांश –

सूक्ष्म बिंब में ऐन्द्रिय संवेदन अपेक्षाकृत गौण तथा मनुष्य के भाव तरंग और विचार चिंतन प्रमुख होता हैं सूक्ष्म बिंब के अंतर्गत भाव बिंब और विचार बिंब आते हैं। रमेश कौशिक ने इन बिंब के साथ भी न्याय किया है उनके काव्य में प्रचुर मात्रा में सूक्ष्म बिंबों को प्रयोग मिलता हैं।

अ. भाव बिंब :

जहाँ मन के भाव प्रमुख हों, वहाँ भावबिंब होता है। रमेश कौशिक की कविताओं में इहिसबोध, सौंदर्यबोध, सामाजिक पक्षधरता सभी कुछ है, किंतु केंद में जीवन की विसंगतियाँ हैं। विसंगतियों में भाव व्यंग्य भी उभरता है। एक नहीं अनेक कविताओं में कवि कौशिक जी का यह रुप देखा जा सकता है–

''मैंने उसके समर्थन में, नारे नहीं लगाए

अकेले आत्मा बुत बन गई है।''

यह भावबिंब हैं, जहाँ ऐन्द्रियता समाप्त हो जाती है, केवल एक संवेदन रहता है। यहाँ जो संवेदन है, वह गतिशील नहीं, एक उमड़नें–घुमड़ने वाला घुटन–भरा संवेदन है, जिससे कियाशीलता, चितंनशीलता सभी समाप्त हो जाते हैं। राजनीतिक बिंबों में यह सर्वाधिक सुंदर बिंब हैं, जहाँ पर चाक्षुषता, श्रवणता, स्पर्शिता सभी संवदनशून्य हो गए हैं, केवल एक खीज और वितृष्णा की अनुभूति बची है। आत्मा अकेली होकर बुत बन गई है। चित्र में एकदम घुटन का वातावरण है। जिस तरह वायु के भर जाने से जी घुटने लगता है, सभी संवेदनाएँ लुप्त होने लगती है, आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है–उसी तरह सत्तापक्ष के अत्याचार ने वातावरण में एक अजीब प्रकार की घुटन का निर्माण किया है।

जीवन की विसंगतियाँ वहाँ कुछ करने का हौसला देती हैं, जहाँ कौशिक जी काल से भी टक्कर लेने को आतुर दिखते हैं–

''एक पंख सूरज,एक पंख चाँद
गति दें थाम।

कवि कहता है समय का जहाज बहुत तेज़ उड़ता है। उसका एक पंख सूरज व एक पंख चाँद है। आओ, सब मिलकर इसके पंखों को काटकर इसकी गति थाम दें। यहाँ भावबिंब है। कवि ने समय को जीवनचक्र के बिंब के रुप में दिखाया है। आज जीवन में संवेदना का दायरा सिमट गया है। भूमंडलीकरण के इस दौर में जिस रुप से मनुष्य ने लंबी छलांग लगाई हैं, किंतु वह एक तरह से संवेदनहीनता की स्थिति में जा पहुँचा हैं–

''वे कितने अच्छे हैं

नहीं फटते हैं।

एक तरह से यह जड़ हो जाने की स्थिति है, लेकिन कवि कौशिक ऐसी जड़ता के भाव के बीच प्रश्न उठाकर व्यक्ति की नियति के उज्जवल पक्षों को भी देखना नहीं भूलते । यह भावबिंब अत्यन्त रोमांच भरा है। कवि ने उन लोगों से बात की है, जो समस्या को अनेदखा कर तटस्थ रहते हैं। महानगर में अपने होने की नियति कवि का डाक टिकट बन जाना है। यह लघुता का संकेत जरुर है, किन्तु लिफाफे के लिए अनिवार्यता भी है। कौशिक जी कहते हैं–

''यह महानगर
चिपका हूँ।''

यहाँ यह भावबिंब है। यह मानव का भाव है। यहाँ मानव का लिफ़ाफ़ा होना भाव प्रमुख संवेदन है। अपने होने के अहसास मे कवि स्मृतियों में खो जाना चाहता है। ठेठ गाँव, भुटटे और सिंघाड़ों को याद करता कवि बालस्मृतियों में खो जाता है। कवि रमेश कौशिक जी की लोकजीवन और लोकभाषा के प्रति पक्षधरता यहाँ द्रष्टव्य है–

''नौ बारे के सुबह–सुबह के

गंधाती वह हवा दूर तक बनते गुड़ की।''

यहाँ कवि रमेश कौशिक पीड़ा के उस पर देखते हैं और पूछते हैं कि ऐसा क्यो होता है–

''पहाड़ कटता है
सच–सच बताना।

पहाड़ दुख का बिंब है व सुख सपने जैसा प्रतीत होता है। यदि पहाड़ जैसा दुख कटेगा तभी सुखं होगा, जब सपने जैसा सुख टूटेगा तो दुख पैदा होगा, क्योकि जीवन में सुख के बाद दुख आता है, दुख के बाद सुख आता है। यह भाव बिंब है। ग्राम्य जीवन की संघर्ष चेतना ने ही कवि का निर्माण किया है। कौशिक जी की 'मृत्यु' शीर्षक कविता एक नया आयाम पेश करती है। कविता क्या है, शवासन है–

''एक क्षण विशेष के लिए
तो मैंने अपने को सोता पाया।''

यह भावबिंब अद्‌भुत है। इसमें कौशिक जी ने कहा है– वह क्षण विशेष देख पाना जो निज की मृत्यु का है, यह इच्छा, मृत्यु से आत्मीयता का बोध कराती है। परिमाण, मात्रा, गुणात्कमता की आनुपातिकता समझाते हुए भी कवि कौशिक जी कहते हैं कि–

''सागर है पानी की एक बूँद बड़ी बूँद।
और बूँद एक छोटा–सा सागर है।

कवि सृष्टि के भाव के साथ कहता है सृष्टि जितनी अंदर है उतनी बाहर है। जल में कुंभ है, कुंभ में जल है, बाहर–भीतर पानी का भाव इसमें हैं। पहाड़ के साथ आत्मीयता कौशिक जी की गहरी सहृदयता

की ओर इशारा करती है। इस कविता को देखिए–
''बचपन में जब कभी अंगुला
तुम्हारे उफर बर्फ की बिछा रही है।''

यहॉ कवि कहते है कि बचपन में जब उँगली जल जाती थी तो मॉ उँगली के चारों तरफ बर्फ लगाती थी। वे हिमालय को कहते हैं कि तुम कैसे जले। कौन है हिमालय रुपी उँगली को धरने वाले सृष्टि–पुरुष की मॉ हिमालय तो उस सृष्टि पुरुष की उँगली है, जिसके जलने पर उसके चारों तरफ बर्फ़ लगाई है मॉ ने । यह मॉ कितनी बड़ी होगी, कितनी महान

इस परम पुरुष की मॉ के वात्सल्य को जिसने पकड़ा हो, उसकी कविताओं का कैनवास कितना बड़ा होगा, हम इसका अंदाजा लगा सकते है। अब गॉव से शहर की यात्रा रोजगार के कठोर प्रसंगों की यात्रा हैं, संबंधों के नाजुक प्रसंगों की नहीं। निम्न कविता में गॉव की पुकार है। गॉव बुलाता है। इसमें गॉव कहता है–
'' पैरों के नीचे सीमेंटे देखते–देखते
ते कुछ दिन के लिए मेरे पास आ जा।''

अब सवाल यह है कि गॉवों में कितनी हरी दूब बाकी है और कितनी ओस भरी चॉदनी बची है। डीजल के धुएँ की विहीनता या बासंती ऋतु वहॉ भी अब नहीं रहे हैं। स्मृतियों में ही ये बचे हैं। इस प्रकार का रोमान भी करवटें बदल–बदलकर इनके काव्य में दिखाई देता है। भोगवादी प्रौद्योगिकी के युग में शब्द की बढ़ती निरर्थकता का वर्णन कौशिक जी निम्न कविता में करते हैं।
''व्यर्थ गया है अर्थ
जिसमें वे सांस लेते हैं।''

यह भाव बिंब है। 'शब्द सांस लेते हैं' गौर तलब है। कवि रमेश कौशिक का कथन है कि इतने शब्द हो गए है मनुष्य उनका दूसरा अथ निकाल लेते हैं। उनके पास शब्दों के प्रति संवेदना व समय ही नहीं बचा है उन्हें समझने व जानने के लिए। वे मरने की कगार पर है। उन्हें इस परिवर्तनशील वातावरण से भी डर लगता है, जिसमें वे जी रहे हैं। उस परिदृश्य में किसी की भी दिशा–निर्देश देना बहुत कठिन है। जहॉ के बुद्विजीवियों की मशाल कुत्ते की तरह दुम हिलाती हो वह तो लोगों को भटकाएगी ही।
आ. विचार बिंबः

जिन बिंबों में मनुष्य के विचार चिंतन प्रमुख होता है, ऐंद्रिय–संवेदन अपेक्षाकृत गौण हो, वह विचार बिंब हैं । कौशिक जी के काव्य में विचार बिंब के निम्न उदाहरण है, जो द्रष्टव्य हैं–
''हाल के बाहर खड़ा ॲधियार नंगा
आ रहा भीतर सभी की दृष्टि से ओझल हुए वह।''

यह विचार बिंब है । कवि रमेश कौशिक जी का कहना है कैसी परिस्थिति है कि उजाला नहीं देखता, अॅधेरा देखता है। और यह जीवन का एक गहरा सत्य है कि अॅधेरे में दिखता नहीं है, इसलिए यह कब आ जाए और प्रवेश कर जाए हमें पता नहीं लगता। यह बिंब चमत्कृत करने वाला है, तभी तो वह आपको अदृश्य अॅधेरे की चालें दिखला सकता है। और जहॉ लोग दूसरों को मूर्ख बनाने में लगे हों, वहॉ भी तो एक अॅधेरा होता है, देखिए 'मूर्ख' कविता में–
''वह तितली कागजी थी
मैं मूर्ख निकला।''

कौशिक जी का कहना है, वह तितली, जो मनकुसुम को बेध गई थी, अब पता लगा कि काग़ज़ी थी। वह विश्वास जो हिमालय– सा अडिग महज काठ का टुकड़ा था, वह आस्था मृगजल थी,जिसमें कोती–सी चमक थी। अंततः इस निष्कर्ष पर पहुॅचे कि जो भी था वह झूठ निकला और दोस्त तुम ठीक ही कहते थे, मैं मूर्ख निकला। अंतिम पंक्ति एक और अप्रस्तुत विधान की ओर संकेत करती है, जहॉ मित्र उनसे कह नहीं रहे हैं कि तुम मूर्ख निकले बल्कि कवि अनुमान लगा रहा है कि मित्र दूसरों से कह रहे होंगे कि यह मूर्ख निकला। यह तीसरे पक्ष की अनुमानधर्मिता कविता की ताकत है कि कौन किसके बारे में क्या कह रहा होगा। 'मेढक और घोघा' कविता में रमेश कौशिक जी कहते हैं–
''घोघा, कीचड़ के मेढक से बोला–
फिर भी उसने मन में समझा
स्वर्ग यही है।''

यह विचार बिंब है । कौशिक कहते है कि, ऐसे लोगो की कमी नहीं है, जो एक मोबाइल फ़ोन के ज़रियें समझते हैं कि दुनिया उनकी मुटठी में है, सिगरेट पीकर स्वतंत्रता की अनूभूति प्राप्त करते हैं, डिस्को में पहुॅचकर अप्सराओं के साथ मटकने पर स्वर्गिक आनंद लेते हैं। कवि ने इन थोड़े से शब्दों में विज्ञापन तथा उसके समान अन्य कुप्रचारों का हमारे जीवन पर जो दुष्प्रभाव पड़ रहा है, उस सच को इस बिंब के साथ व्यक्त किया है। मेढक के 'स्वर्गवासी' होने की यह बिल्कुल आज की त्रासदी की प्रभावी अभिव्यक्ति है। वह वर्तमान में है, कवि इन निम्न पंक्तियों में कहता है–
''एक भटकती हुई पुरानी याद आई
यहीं सजा पाओगे।''

इसकी अंतिम पंक्ति पढ़कर यह अर्थ भी निकल सकता है कि वर्तमान में रहना सजा भुगनते के बराबर है। किंतु अर्थ यह भी है कि यदि तुम कहीं सुनहरे भूत या इंद्रधनुषी भविष्य में जाओगे तब सजा, वहॉ नही, यहॉ वर्तमान में पाओगे। यह एक गहरा जीवन सत्य है, आध्यात्मिक सत्य भी कि मनुष्य को वर्तमान में ही रहना चाहिए अन्यथा वह दुखी होगा। निम्न पंक्ति में कवि रमेश कौशिक जी मानसिक जगत में अपनी स्थिति बतलाता है–
''तुम अपनी घिसी–पीटी
जड़ जिंदगी के प्यार से लाचार।''

इस बिंब के द्वारा कवि रमेश कौशिक जी कह रहे हैं कि मुझे जड़ जिंदगी में मत ढूॅढ़ना, मै चेतन हदय के जीवन में हूॅ चाहे उसमें दुःख ही क्यों न हों। ऐसी जगह आओ तो मैं तुम्हे मिल सकता हूॅ–मैं यहॉ हूॅ। अर्थात किसी अन्य से मेरा पता न पूछना। मेरी आवाज़ पहचानना मैं घोषणा कर रहा हूॅ '' मैं यहॉ हूॅ' यदि तुम मूझे बड़ा भारी अन्वेषक समझ कर खोज रहे हों तो मत खोजना क्योकि मेरी खोजें अभी अधूरी हैं निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है–

''मै जूझता रहा
कि तुम भी जूझते रहोगे।'

इसमें कौशिक जी कहते हैं कि अब तक जीवन में मैं संघर्ष कर रहा हूँ, अपने–आपको खोज रहा हूँ। मैं उम्मीद करता हूँ तुम भी यही काम कर रहे होगे। अर्थात् जीवन में संघर्ष कर रहे होगे। वे आगे कहते हैं, मुझे कोई ग़लतफ़हमी नहीं है कि मै कोई महाद्वीप के समान हूँ, मैं अकेला हूँ और तूफ़ानों से जूझते मेरा पता शायद ही कोई तुम्हें बता पाए। वे एक ग़लतफ़हमी दूर करना चाहते हैं। यदि कोई उन्हें एक कवि समझकर खोज रहा है, तो न खोजे। 'मैं नहीं कवि' में कहते हैं–
''मै नहीं हूँ कोइ कवि
खाली होना चाहता हूँ।''

यहॉ कौशिक जी कहते हैं कि आज तक जिंदगी ने जो कुछ मुझे दिया है या जो मैने महसूस किया है, उन भावनाओं को शब्दों को देकर मैं खाली होना चाहता हूँ अर्थात अपने अनुभव,सुख–दुख दूसरों को बॉटना चाहता हूँ। इस प्रकार खाली होकर मै अपने – आपको पाना चाहता हूँ। यह अहंकार से रिक्त होने की बात है, आध्यात्मिक ज्ञान की बात है। यदि उन्हें कोई शक्तिमान समझकर खोजे तो वे शक्तिमान भी नहीं। वे अपना परिचय देते हुए चलते हैं ताकि ढूँढ़ने वाले किसी भी ग़लतफ़हमी में न रहें। 'मैं' कविता में कौशिक जी कहते हैं–
''मैं पेड़ हूँ
नौका बन जाऊँगा।''

इस बिंब में रमेश कौशि जी ने पेड़ को त्यागमयी यात्रा के बिंब में प्रस्तुत किया है। कवि को मृत्यु का तनिक भी भय नहीं, वरन् उसमें भी सेवा करता रहेगा। कवि बार–बार अपना परिचय देते हैं। 'मैं हूँ'' कविता में कौशिक जी कहते हैं–
''मैं हूँ , इसलिये सूरज है
ये हैं इसीलिए, मैं हूँ।''

यहॉ कितनी सरल भाषा में एक गूढ़ सत्य कवि रमेश कौशिक ने संप्रेषित किया है। इससे प्रकृति तथा मानव का अन्योन्याश्रित संबंध स्पष्ट होता है। निम्न कविता में रमेश कौशिक द्वैत से हटकर अद्वैत की सी अनुभूति प्रस्तुत करना चाहते है,वहीं प्रकृति है और कृतिकार हैं।
''जो हैं उसको सहो
किसी से कुछ न कहा।''

किसी से कुछ न कहने का यह निर्णय कमज़ोरी या विवशता का बिंब नहीं, बल्कि यह तो अंदर की सारी शक्ति बटोरकर अपने अस्तित्व की चुनौतियों का सामना करने के संकल्प का विचार बिंब है। मन तो दुखी तब होता है, जबकि असमर्थ पर होते अन्याय के विरोध में कुछ न कर सकें। इस बारे में कौशिक जी कहते हैं कि –
''जब किसी असमर्थ पर
मैं कष्ट में हूँ।''

यह परदुख–कातरता, यह मानवीय करुणा ही तो कवि के अंतर्मन को मथती रहती है। वह जानना चाहता है कि ऐसा क्यों है और यदि ऐसा कोई समाधान है, तो उस तक क्यों नहीं पहूँचता ? इसी कारण कवि दुखी है। समय का प्रभाव रुकता नहीं। ज़िंदगी कहीं ठहरती नहीं । कवि कहता है जीवन सार्थक है, जब तक दूसरे के दुख को समझने वाली करुणा मनुष्य के ह्रदय में है। हमें मनुष्य की तरह जीना है। जीवन की उलझनों और लाचारियों को समझते हुए जीना है और फिर भी आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान के साथ जीना है।

निष्कर्षः

बिंब काव्य का मौलिक विषय है और काव्य स्वयं एक बिंब है– बिंब में काव्य का जीवन– सिद्वान्त, कवि की प्रमुख रुचि एवं प्रतिभा विद्यमान रहती है।

कौशिक जी ने अपने काव्य में बिंबों का प्रयोग बहुत कौशल के साथ किया है। कौशिक जी ने चिंता, आशा आदि अमूर्त मानस–भावों को विविध रंगों,रुपों, आकृतियॉ एवं गतियों में चित्रित किया है। सूक्ष्म मानसिक स्पंदनों को कवि ने बिंबो का कलात्मक बिंब–आधार दिया है। कौशिक जी ने बिंबों को कलात्मक बनाने के साथ ही साथ अर्थवत्त भी प्रदान की है। कौशिक जी ने अपने काव्य में ऐंद्रिक एवं स्थूल बिंब व सूक्ष्म बिंबों का प्रयोग किया है।

कौशिक जी के काव्य के प्रतिपाद्य, जीवनदर्शन और वास्तुकौशल के अनेक छिद्रों को देखा। उनकी समग्र परिकल्पना इतनी उदात और उसका आयाम इतना विराट् है कि अपूर्व प्रातिभऐश्वर्य, रागात्मक उन्मेष एवं विराट कल्पना से कौशिक जी ने अपने काव्य में जिन बिंबों की सृष्टि की है, उनसे भावुकों को रागात्मक आकर्षण और मनीषियों को बौद्विक आमंत्रण मिलता है। बिंबसृजन की अपूर्व क्षमता ने ही उनके काव्य को अद्वितीय बनाया है।

काव्यबिंब योजना की सफलता की कसौटी यह है कि वह पूर्व स्मृतियों को पुनरुत्पादित करने के साथ–साथ भावों को विषयानुकूल नवीन एवं अभिन्न कलेवर प्रदान करके सहदृय में स्थायी प्रभावों का अंकन करने में सक्षम हो। काव्य–बिंब जितना ही अविच्छिन्न वस्तु व्यापार का प्रतिपादन करने वाला, यथातथ्य एवं मौलिक होगा, उतना वह कवि एवं वर्ण्यवस्तु का तादात्म्य करके साधारणीकृत होने में सफल होगा।

निष्कर्ष रुप से हम कह सकते हैं कि इस विशद बिंबयोजना के पीछे कौशिक जी को सौंदर्यलक्षी, अंतर्मुखी व्यक्तित्व है, जो संसार–कल्याण की उदार, उदात्त,गंभीर एवं प्रौढ़ विचारधारा से ओपप्रोत है। रमेश कौशिक के काव्य की बिंबयोजना उनके बहुआयमी व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करती है। कौशिक जी के बिंबों में सागर की गहराई है, अंतर्द्वद्व की गहन व्यथा है, अमूर्त भावनाओं को मूर्त करने का अदम्य पुरुषार्थ है, करुणा की विकलता है, अपना सौंदर्य है। कौशिक के काव्य का बिंबयोजना को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों संपूर्ण काव्य ही विराट् विशाल बिंब है, जिसमें विविधवर्णी अनेकानेक बिंबों ने अपनी भूमिका का निर्वाह कौशल के साथ किया है।

संदर्भ

1. रमेश कौशिक, समीप..... और समीप, काव्य–संग्रह मे –'चेतन के चाप' नामक कविता, पृ.9
2. रमेश कौशिक, समीप..... और समीप, काव्य–संग्रह मे –'विश्राम' नामक कविता, पृ.50
3. रमेश कौशिक, चाहते हो, काव्य–संग्रह मे –'पंख की आवाज' नामक कविता, पृ.14
4. रमेश कौशिक, समीप..... और समीप, काव्य–संग्रह मे –'महानगरः मैं'

नामक कविता, पृ.14
5. रमेश कौशिक, सच सूर्य है, काव्य–संग्रह मे –'सच–सच बताना' नामक कविता, पृ.44
6. रमेश कौशिक, सच सूर्य है, काव्य–संग्रह मे –'आग' नामक कविता, पृ. 93
7. रमेश कौशिक, कहॉ हैं वे शब्द, काव्य–संग्रह मे –'मृत्यु' नामक कविता, पृ.56
8. रमेश कौशिक, कहॉ हैं वे शब्द, काव्य–संग्रह मे –'सागर और बूॅद' नामक कविता, पृ.65
9. रमेश कौशिक, कहॉ हैं वे शब्द, काव्य–संग्रह मे –'हिमालय' नामक कविता, पृ.21
10. रमेश कौशिक, कहॉ हैं वे शब्द, काव्य–संग्रह मे –'गॉव' नामक कविता, पृ.79
11. रमेश कौशिक, समीप..... और समीप, काव्य–संग्रह मे –'शब्द–' नामक कविता, पृ.75
12. रमेश कौशिक, समीप..... और समीप, काव्य–संग्रह मे –'एक रात हाल में' नामक कविता, पृ.30
13. रमेश कौशिक, समीप..... और समीप, काव्य–संग्रह मे –'मूर्ख' नामक कविता, पृ.40
14. रमेश कौशिक, कहीं कुछ था, काव्य–संग्रह मे –'मेढक और घोंघा' नामक कविता, पृ.41
15. रमेश कौशिक, कहीं कुछ था, काव्य–संग्रह मे –'वर्तमान' नामक कविता, पृ.47
16. रमेश कौशिक, कहीं कुछ था, काव्य–संग्रह मे –'जड़–ज़िंदगी' नामक कविता, पृ.63
17. रमेश कौशिक, कहीं कुछ था, काव्य–संग्रह मे –'यात्रा–अधूरी' नामक कविता, पृ.48
18. रमेश कौशिक, सच सूर्य है, काव्य–संग्रह मे –'मै नहीं कवि' नामक कविता, पृ.16
19. रमेश कौशिक, कहीं कुछ था, काव्य–संग्रह मे – 'मैं' नामक कविता, पृ. 36
20. रमेश कौशिक, कहीं कुछ था, काव्य–संग्रह मे –'मैं हूँ' नामक कविता, पृ.66
21. रमेश कौशिक, प्रश्न है उत्तर नहीं, काव्य–संग्रह मे –'अपना–अपना दुख' नामक कविता, पृ.83
22. रमेश कौशिक, प्रश्न है उत्तर नहीं, काव्य–संग्रह मे –'मैं कष्ट में हूॅं' नामक कविता, पृ.45

डॉ0 बीना शुक्ला
के0 ए0 एस0 एच0 5
कविनगर गाजियाबाद
(उ0 प्र0)

सन्त गरीबदासः काव्य में रुढियां और आडम्बर

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

सरांश –

साहित्य समाज को प्रस्तुत करने वाला को चित्र फलक है जिसमे समाज का यथार्थ सामने लाने की क्षमता होती है। यह यथार्थ पूर्ण यथार्थ भी हो सकता है और कल्पना के आकर्षक रंगों से रंगा सुन्दर लुभावना यथार्थ भी । काव्य साहित्य का एक अंग भर है फिर भी समाज को प्रस्तुत करने का सबसे प्रबल माध्यम भी यहीं है मध्यकालीन सन्त काव्य हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि और भारतीय चिन्तन धारा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

संत गरीबदास जी अधुना हरियाणा अठारहवी शती के एक गण–मान्य सन्त हो चुके थे जिन्होने यथेष्ट साहित्य रचना की है। सामान्य कृषक का जीवन व्यतीत करने वाले संत गरीबदास जी स्वभाव से बड़े नम्र, दयालु तथा परोपकारी प्रवति के मालिक थे। संत गरीबदास जी की वाणी अपने युग में व्याप्त सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों की ओर संकेत करते हुए उनसे दूर रहने की प्रेरणा देती है और इसमें तत्कालीन परिस्थितियों का सम्यक विश्लेषण भी हुआ है। निर्गुण भक्ति धारा में बहुत से ऐसे कवि है जिनके बारे में हिन्दी साहित्य हमें पूरी तरह परिचित नही करवा पाता । इन्ही भक्त कवियों में से संत गरीबदास जी भी ऐसे ही एक भक्त कवि है जिनके बारे में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है।

सन्त गरीबदास काव्य में रुढियां और आडम्बर के अन्तर्गत गरीबदास काव्य में निष्कर्मण्यता, विलासिता, बाडरूाडम्बर, साम्प्रदायिकता एवं जातीयता के विषय में विवेचन किया गया है। संत शब्द का अर्थ यह है जो पूर्ण रुप से निस्वार्थ भाव से साधारण जनता को अपना समझकर उनमें उत्पन्न भेद भाव को मिटाकर, ईश्वर भक्ति का संदेश देकर उन्हें सही मार्ग प्रदर्शित कर सके अर्थात दीन–दुखियों कि जो निस्वार्थ भाव से सेवा करे नही सच्चा संत है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार हिन्दी के संत–काव्य को लेकर संत शब्द के अर्थ पर उस अर्थ की सर्वव्यापकता पर गहन विचार हुआ है। परन्तु इससे संत शब्द की परम्परा का परियक्त ज्ञान असंभव है वैसे तो संस्कृत में संत शब्द है परन्तु वह जुड़े हुए हाथों के लिए आता है भागवत में यह शब्द पवित्रात्मा के लिए सम्बोधित किया है। संत गरीबदास का जन्म जनहित और समस्त मानव जाति सुख के लिए हुआ। जन–समुदाय के ज्ञान का प्रकाश दिखाकर उनके मन में फैले अज्ञानता के अंधकार को दूर किया। गुरु कबीरदास की प्रशंसा में सन्त गरीबदास जी की वाणी विस्तार पूर्वक श्री ग्रंथ साहब में अर्थ गुरु का अंग में वर्णित है। सारी आयु सन्त महाराज के वचनों को अपनी लेखनी कर चढाते रहे। संत गरीबदास के गुरु कबीर दास थे। इन विचारों के सग्रह को गरीबदासी सम्प्रदाय में श्री ग्रंथ साहब' कहा जाता है।

सन्त गरीबदास के काव्य में रुढ़ियॉ और आडम्बर विषय में रुढ़िया शब्द से तात्पर्य समाज में कुछ परम्पराएँ ऐसी होती है जिनके विरुद्व आधुनिक युवक क्रान्ति करते हुए उनको समाप्त करना चाहते है। इन रुढ़ियों के विरुद्वक्रान्ति करने के लिए उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनकी दृष्टि में ऐसे पाखण्ड एवं रुढ़ियॉ समाज को खोखला करती है। गरीबदास जी ने अपने काव्य में इन्हीं रुढ़ियों का चित्रण किया है। समाज में दूसरी और बहुत से व्यक्ति अनहोनी को होनी करके दिखाने का प्रयास करते है इन्हीं आडम्बरों का चित्रण गरीबदास ने अपने काव्य में किया है।

गरीबदास काव्य में निष्कर्मण्यता– निष्कर्मण्यता का अर्थ बिना किसी स्वार्थ के कर्म करना। गरीबदास ने भी बिना किसी स्वार्थ के कर्म करते रहने का संदेश अपनी रचनाओं द्वारा जनता तक पहुँचाया है। उनके अनुसार स्वार्थ ग्रस्ति कर्म मनुष्य को पतन की ओर अग्रसर करता है और निस्वार्थ कर्म व्यक्ति की प्रगति की ओर ले जाता है। गरीबदास जी ने अच्छे कर्म करते रहना ही मनुष्य का प्रमुख धर्म माना है।

ऐसा कोई कर्म नही जिसका कोई फल नहीं। जप,दान आदि कर्मो के तो बहुत फल है। सकाम भाव से किए गए कार्यो से स्वर्ग अन्तःकरण की शुद्वि होती है। यज्ञ आदि कर्मो का विधान अनादि काल से वेदों और ऋषि मुनियों द्वारा किया गया। ये कर्म अवश्य करने चाहिए–

ग्रीब, धरम, करम, जग कीजिये, कूएं बाचै तलाब।
इच्छा अस्तल स्वर्ग सुर, सब पृथ्वी के राव।

कामना अथवा सकाय कर्म अनिधा है तो कामना का अभाव निष्काम कर्म विद्या है। अविद्या प्रेम है तो विद्या श्रेय है। सकाम कर्म जगत अंधकार में है तो निष्काम कर्म जगत प्रकाश में है। एक असत्य है तो दूसरा सत्य है। एक शान्त है तो दूसरा अशान्त है। समुद्व में नदियों के पानियों के समान समस्त कामनाए निष्काम कर्म करने वाल पुरुष के अन्दर समा जाती है। भोग विलास तृष्णा आदि की पूर्ति की लगन में मनुष्य दूसरे के चंगुल में फंस जाता है। ये कभी पूरी नहीं होती–

भोगा न मुक्ता वयमेव भुक्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।।

गरीबदास की मान्यता है कि कर्म काण्ड में संलिप्त मनुष्य मुक्ति प्राप्ति के अधिकारी नहीं बन सकते। इसलिए मनुष्य को निष्काम की कर्म करना चाहिए वही निष्कर्मणता है । कोई मनुष्य किसी देवता को पूजता है कोई पत्थर को, कोई पानी को, किन्तु अन्त में सभी मनुष्य यमराज जी के द्वारे ही घूमते नजर आते है जब हमने निष्काम रुप से कर्म किया हो।

ख. गरीबदास काव्य में विलासिता–संत गरीबदास जी के अनुसार व्यक्ति को विलासिता पूर्ण जीवन से दूर रहना चाहिए। विलासिता में लिप्त रहकर व्यक्ति ईश्वर भक्ति नहीं कर सकता और न ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इसलिए व्यक्ति को विलासिता दूर करने के लिए अपने विचारों में शुद्वता लाना अनिवार्य है। व्यक्ति के अच्छे विचार ही उसे दूसरों के प्रति अच्छे आचरण की ओर प्रेरित

करते है। प्रत्येक संत कवि ने अच्छे आचरण की शुद्वता पर बल दिया है और इसे साधना–मार्ग को अनिवार्य अंग माना है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि –पॉचों विकारों को वश में करके ही नीव अपना उद्वार कर सकता है। इन सम्पूर्ण विकारों को उत्पन्न करने वाली दो मुख्य वस्तुऍ–'कनक' तथा ' कामिनी' मानी है। उन्होंने अहं रहित प्राणी को ही अपना सखा कहा है–

''कबीर सबते हम बेरे, हम तजि भलो सबु कोय।
जिनि ऐसा कर बूझया, मीन हमारा सोम।।

संत गरीबदास जी की वाणी अथवा साहित्य किसी भी प्रकार का नशा करने की आज्ञा नहीं देना। भांग, तम्बाकू, मदिरा, अफीम आदि जितने भी नशे है वे उनके कटटर विरोधी थे। उनके उपदेश में अभक्षय पदार्थो का निषेघ मिलता है। वर्तमान में भी उनके अनुनायी किसी भी प्रकार के नशे का सेवन नहीं करते।

''मै अमली निज नाम का, मद खूब चबाया।
पीहया प्याला प्रेम का, सिर सरि पाया।।

गरीबदास जी कहते है मैने शीश देकर साहिब का प्रेम प्राप्त किया है। मुझे नाम का नशा मिल गया जो एक बार चढ़ने के बाद दोबारा नहीं उतरता। उनका मानना है अगर कोई व्यक्ति सौ नारियों से दुष्कर्म करता है अथवा सौ बार मदिरा पान करता है उसको कालीधार अर्थात घोर नरक में जाना पडता है जितना दण्ड इन दुष्कर्मो के फल में मिलता है उतना ही दण्ड तम्बाकू की एक चिलम भरकर हुक्का पीने से मिलता है। ऐसे दुष्कर्मो को भयानक कष्ट दिया जाता है–

ग्रीब सूर गउ कू खात है , शंका नही सलेश।
शंकर से सतगुरु मिले, तो न लगे उपदेश।।

जीवों का मॉस खाने वाला, भांग, तम्बाक पीने वाला मनुष्य भक्ति विहिन होता है। भक्ति विहिन मानव अगले जन्म में कुत्ता बनकर मुख में हाड चबाता है। अतः नशें के जाल में पडकर अनमोल जीवन को नष्ट नहीं करना चाहिए, परमात्मा के नाम का नशा ही मनुष्य जीवन को सार्थक बनाता है।

गरीबदास काव्य में बाहयाडम्बर – निर्गुण भक्त कवि ने वाडयाडम्बरों पर जमकर प्रहार किया है। उन्होंने प्रभु की भक्ति मे माला तिलक, बाहरी वेशभूषा सभी का खुलकर विरोध किया है। माला पहनने से मुक्ति नही हो सकती–

मुक्ति नही हो सकती–गरीब, माला मुक्ति न होत है।
मुक्ति होत है नाम, एक अक्षर बाहरा, उजड भला न गाम।।

जो मनुष्य अपने अन्तर ह्रदय को नहीं पहचानता वह चाहे कितनी ही तीर्थ यात्रा करे सब व्यर्थ है।परमात्मा तो मनुष्य के ह्रदय में ही विद्यमान है परन्तु वह अज्ञानता के वशीभूत होकर उसे देख नहीं पाता है। उन्होने ऐसे पण्डितो पर कड़ा प्रहार किया है जो व्यर्थ के आडम्बरों में लिप्त है, वे वेदों की बात तो करते है , मन में घमण्ड रखते है। राम–नाम के बिना मनुष्य की मुक्ति संभव नहीं है। ईश्वर मनुष्य के ह्रदय में निकस करते है। सच्चे दिल से भक्ति करने पर ही ईश्वर की शक्ति का आभास होता है। तीर्थ स्थानो पर स्नान करना, मन्दिर, मस्जिद व मठो विद्वारों में घूमना, मूर्तियों की पूजा करना, माला का जाप करना सभी व्यर्थ है। कानों में चीरा दिलाकर मुद्वा पहनना, गले में रुद्वाक्ष अथवा काढ पत्थर के मणियों की मालाऍ धारण करना, मास्तिक में सिन्दूर चन्दन आदि के टीके चित्र बना लेना,धर्म के नाम से विशेष प्रकार के रंगदार वस्त्रों को प्रयोग करना, सिर मुंडाये रखना आदि ऐसे व्यक्तियों को सन्त गरीबदास जी पाखण्डी, आडम्बरी की संज्ञा देते हुए समाज को निष्काम करने और अधोगति की ओर ले जाने के लिए उत्तरदायी ठहराते है। उन्होंने अमानुषक प्रथाओं देषपूर्ण कार्यो और दरभी लोगो के विरुद्व भी बहुत कुछ कहा है व जन साधारण को जागृत किया है, जो सम्प्रदायों की घृणा के प्रभाव में एक दूसरे पर आक्रमण , अन्याय एवं अत्याचार करते है। धर्म के नाम पर बेजुबान जीवों की कुरबानी देना एवं अपने विरोधी धर्मो पर पहार एवं आलोचना को दुष्कार्य समझते है।

उनका अवतारवाद में विश्वास या

गरीबदास काव्य में साम्प्रदायिकता –कवि साम्प्रदायिकता के कटटर विरोधी थे। उनका दूसरे सम्प्रदायों से कोई भेद भाव नहीं था। जो सम्प्रदायों की घृणा के प्रभाव में एक दूसरे पर आक्रमण, अन्याय और अत्याचार करते थे उन्हें संत गरीबदास ने पापी और अत्याचारी कहा है। साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के लिए उन्होने एक रुपता का सुन्दर वर्ण किया है–

गरीब साधु हमारे सब बडे, किसी ने दीजै दोष।
डयोढी अन्दर ले गये, वे साधु शिर पोस।।

उन्होंने पुराणों के विविध दृष्टान्तों के द्वारा धर्म, कर्म, यज्ञ दान आदि की महत्ता और समाज के लिए इसकी अनिवार्यता का मुक्त कण्ड से प्रतिपादन किया है। इन सब बातों का अर्थ यह नहीं कि कवि धर्म निरपेक्षता के उपासक थे बल्कि वह धर्म निरपेक्ष समाज के कटटर विरोधी थे। हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक विवाद को समाप्त करते हुए वे कहते है–

गरीब, बह्रम कहो, अविगीत कहो, करता कहो करीम।
कादर बेपरवाह है, दयता राम रहीम।।

समाज में मनुष्य ने ही छत्तीस कौम बना रखी है पर कोई भी खाली नहीं है । सभी के ह्रदय में एक पूर्ण ब्रह्म है अर्थात सभी को परमपिता परमेश्वर ने पैदा किया है। अतः उनका मानना है कि सभी जगह प्रभु के दर्शन करो क्योकि वह कण–कण में है तथा सभी मनुष्यों के ह्रदय में विद्यमान है अत, धर्म या सम्प्रदाय का भेद व्यर्थ है।

गरीबदास जी ने जातीयता का विरोध करते हुए कहा है कि ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जानता है तथा अपने ह्रदय में प्रभु को देखता है, काजी वह है जो नमाज पढ़ता है तथा मुर्गी व बकरी को हलाल नही करता। ब्राहमणों एवं मुसलमानों पर व्यंग्य करते हुए मानव के धर्म को समझने की चेष्टा करता है। शेख वह है जो ईश्वर की सत्र को पहचनाता है अहीर वह जो परमात्मा रुपी हीरे को पहचानता है, बनिया वह है जो ब्रहालोक में जाकर व्यापार करता है। व्यर्थ की जातियॅ मनुष्य ने बनाई है जबकि उसके जीवन का एकमात्र प्रभु प्राप्ति ही है।

निष्कर्ष रुप से कह सकते है संत गरीबदास ने साधु सन्तो के गुणगान अपनी वाणी से कहे है। उनका अवतारवाद में विश्वास था, वे परमात्मा को सतगुरु के नाम से सम्बोधित करते है। संसार का इतिहास साक्षी है कि मानव जाति सदा ही कलह, विघटन , अद्योगति, नाश–विनाश, उथल–पुथल के मूल कारण जर धन जमीन भूमि, और जोस स्त्री रहे है। जन भी समाज संत वीर पुरुषों के प्रभाव से

इन जंजालों से बाहर निकला तब ही शान्ति और प्रगति की स्थापना हुई। व्यक्ति और समाज के विकास और उन्नति के यह तीनों तत्व अति आवश्यक है। परन्तु यदि इनका आधार आध्यात्मिकता, सुभता और नैतिकता, न हो तो यह विनाशकारी हो जाता है। उस अवस्था में तृष्णा बढ़ती है और जीवन में सन्तुलन नहीं रहता । अतः जिस समाज में सिंह सन्तुलित भाव–मुक्त साधु संत का प्रभाव नहीं रहता। वह समाज को पतन की ओर ले जाता है परिणाम स्वरुप आध्यात्मिक प्राकृतिक तथा भौतिक दृष्टि से पतन हो जाता है। दूसरी और उपनिषद तथा शास्त्रों में पूर्ण मनुष्य बनने के लिए तथा समाज की सुख–सम्पन्नता की प्राप्ति के लिए जो मार्ग दर्शन किया है इसमें यमों और नियमों का अनुकरण व अनुशरण करना पड़ा है। योग साधना के अभ्यास से बौद्विक, शारीरिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संत कवि गरीबदास, जीवन, सम्प्रदाय एव्र काव्य का विनेचन पृ012,लेखक डॉ0 स्वर्ण जीत कौर –ग्रेनाल, प्रकाशन–स्वामी गंगानंद (भुरी वाले)।ट्रस्ट, धाम तलबन्दी, नजदीक मुल्लापुर, लुधियाना सन–1999
2. वही–पृ012
3. वही –पृ012
4. सन्त शिरोमणि तथा समाज सधारक, सन्त गरीबदास जी, लेखक–सूरजमल सांगवान, पृ016
5. गरीबदास की वाणी, पृ0526
6. गरीबदास की वाणी, पृ0329
7. श्री गुरू ग्रंथ साहिब – श्लोक कबीर पृ01364, श्रीअर्जुन देव जी (सं0)
8. गरीबदास की वाणी, भाग –1,पृ0342
9. वही, पृ0 363

10.श्री गुरू ग्रंथ साहिब, अथ भेष का अंग,पृ0200, प्रकाशक–श्री चरणदास
ब्रह्मचारी जी (रामपुर धाम) पांचवा संस्मरण

11. वही,पृ0 20
12. श्री मज्जगढ़ गुरू आचार्य, श्री गरीबदास महाराज की वाणी, ग्रथ साहिब, पृ0 302

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा
सह. प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय
पलवल (हरियाणा)

24

सुरेन्द्र वर्मा लिखित 'रति का कंगन' : एक अध्ययन

डॉ0 सुमित्रा कुमारी

सरांश –

सुरेन्द्र वर्मा प्रतिष्ठित नाटककार हैं। इनकी ख्याति स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के व्याख्याता नाटककार के रूप में है। पूर्ववर्ती नाटककार मोहन राकेश के नाटकों की अगली कड़ी के रूप में इनके नाटकों को देखा जाता है। इन्होंने अपने नाटकों में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को मनोविश्लेशणात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया है। नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित सुरेन्द्र वर्मा बहुमुखी प्रतिभा–सम्पन्न रचनाचार है। सुरेन्द्र वर्मा का जन्म 7 सितंबर 1941 में हुआ। आपने भाषा विज्ञान में एम.ए. किया। आपकी ख्याति प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार के रूप में हैं। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारतीय इतिहास से प्रभावित होकर आपने साहित्य में पौराणिक तथा एतिहासिक पात्रों को नए सन्दर्भ देकर प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया। रंगमंच एवं फिल्म क्षेत्र से सक्रियता से जुड़े होने के कारण इनमें विशेष दिलचस्पी है।

वरिष्ठ पत्रकार तथा नाट्य– समीक्षक सत्यदेव त्रिपाठी का डॉ. अशोक पटेल ने साक्षात्कार लिया जिसमे सुरेन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व के कुछ पहलू उभर कर आए। वर्मा जी बहुत कम लोगों से मिलते हैं। उनके मिलने वालों में एक ही हैं – सत्यदेव त्रिपाठी। एकान्तप्रिय वर्मा जी के सम्बन्ध में वे कहते हैं, – ''उनका अलग और निजी संसार है। अपने एकदम नजदीकी लोगों से ही बातचीत करते हैं। वे मानते हैं कि साहित्य की उत्तम कोटि को प्राप्त होने के लिए साहित्यकार को एकान्त में रहना चाहिए। शायद इसी कारण उन्होंने जीवन के लिए एकान्त चुना है''[1]

बहुमुखी प्रतिभा–सम्पन्न रचनाकार सुरेन्द्र वर्मा के सम्बन्ध में गोविन्द चातक लिखते हैं, ''मोहन राकेश के बाद एक नया नाम जो तेजी से उभर कर सामने आया, वह सुरेन्द्र वर्मा का हैं[2] सुरेन्द्र वर्मा की विशेष ख्याति स्त्री–पुरुश यौन–सम्बन्धों के व्याख्याता नाटककार के रूप में है। किन्तु साहित्य की अन्य विधाओं में भी इनकी लेखनी सजगता से चली है। उपन्यास के क्षेत्र में इनका अपना उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' अन्तिम दशक का बहुचर्चित उपन्यास है।आधुनिक काल में रंगमंचीय उपलब्धियों के कारण इनके नाटकों को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। हिन्दी नाट्यजगत की शृंखला में जगदीश चन्द्र माथुर, धर्मवीर भारती तथा मोहन राकेश के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके पश्चात् डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल एवं सुरेन्द्र वर्मा की नाट्य कृतियाँ प्रमुख स्थान की अधिकारिणी हैं। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में सामजिक युग की विसंगतियों संघर्श में टूटते–बिखरते मनुष्य के मानसिक विघटन को ऐतिहासिक पौराणिक सन्दर्भों द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयास हुआ है। किन्तु उनक नाटकों का उद्देश्य महज इतिहास को दोहराना नहीं है। डॉ. मीना पंड्या का कथन इसकी पुष्टि करता है, ''सुरेन्द्र जी के नाटकों में इतिहास को दोहराना नहीं हैं, वरन् उसके भीतर से आधुनिक संवेदना को समकालीन जीवन के कुछ सार्थक पक्षों की अभिव्यक्ति करना है'' सुरेन्द्र वर्मा केवल आदर्श की स्थापना के उद्देश्य से ऐतिहासिकता का सहाया नहीं लेते वरन् वर्तमान सन्दर्भों में उनकी समसामयिकता पर दृष्टिपात करते हैं डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता भी इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं, ''सुरेन्द्र वर्मा ऐसे आदर्श की प्राप्ति के लिए ऐतिहासिकता के तत्व का आश्रय नहीं लेते। ऐतिहासिक परिप्रक्ष्य में आधुनिक जीवन की व्याख्या करना ही इनका उद्देश्य है।''सुरेन्द्र वर्मा की ख्याति स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के व्याख्याता नाटककार के रूप में है। इस सम्बन्ध में उनके नाटक मोहन राकेश के नाटकों की अगली कड़ी माने जाते है। इस विषय पर कम लिखा गया है। इसी विषय को सुरेन्द्र वर्मा ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। सुरेन्द्र वर्मा नाटककार ही नहीं अपितु निर्देशक भी हैं। यही कारण है कि उन्हें नाटकों में रंगमंच की प्रस्तुतिका उसके विकास की संभावनाओं का भी ध्यान रखा गया है। साठोंत्तरी नाटकों की सफल रंगमंचीय परम्परा में सुरेन्द्र वर्मा का बड़ा योगदान रहा है। 1970 के बाद को हिन्दी नाटक रंगमंच की दृष्टि से अधिक सफल एवं समृद्ध दिखाई देता है। इस दृष्टि से सुरेन्द्र वर्मा के योगदान को स्पष्ट करते हुए डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता लिखते हैं, '' सुरेन्द्र वर्मा उन विशिष्ट नाटककारों में आते हैं, जिन्होंने अल्प अवधि में अपनी नाट्य चेतना के सामर्थ्य और रंगमंचीय प्रयोगों की संभावनाओं से निर्देशकों को आकृष्ट किया है।''[5]

सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में सामयिक युग की विसंगतियों का बेबाकी से चित्रण हुआ है। इस सम्बन्ध में डॉ. नाना साहेब गायकवाड़ लिखते हैं, ''सामयिक युग की विसंगतियों के संघर्ष में टूटते–बिखरते मनुश्य की मानसिकता को तथा उसके मानसिक विघटन को ऐतिहासिक,पौराणिक सन्दर्भों के द्वारा मुखरित करने का प्रयास किया है।[6]

सुरेन्द्र वर्मा एक सशक्त नाटककार हैं। इन्होंने बहुत कम समय में ही अपने नाटकों के द्वारा अलोचकों एवं रगकर्मियों को प्रभावित किया है। हिन्दी रंगमंच को नई मौलिक पद्धतियों द्वारा एक नया आयाम दिया है। विषय वस्तु एवं प्रस्तुति की दृष्टि से इनके नाटक जबरदस्त प्रभावशाली है। इनके नाटकों की भाषा गरिमायुक्त

है। शुद्ध संस्कृत शब्दों के साथ ही छायावादी कवियों की अत्यंत लयपूर्ण गीतिमय ध्वन्यात्मक भाषा के प्रयोग का मिश्रण करके इसे संतुलित किया है। तथा एक प्रकार से लयात्मक सौन्दर्य दिया है।

सुरेन्द्र वर्मा का व्यक्तित्व बहुआयामी है। उपन्यास के क्षेत्र में इनका 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास अन्तिम दशक का बहुचर्चित उपन्यास है। इसमें एक अभिनेत्री की संघर्ष गाथा चित्रित है। इस उपन्यास ने सुरेन्द्र वर्मा एक सफल कलाकार के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके 'प्यार की बातें तथा अन्य कहानियाँ संग्रह में संकलित कहानियों में उच्च–मध्यवर्ग की समस्याएँ शहरी भागदौड़, चकाचौंध बदलते स्त्री–पुरुष सम्बन्धों आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। इनकी कहानियाँ समय–समय पर पत्रिकाओं में छपती रहीं हैं। सुरेन्द्र वर्मा एक अच्छे समीक्षक भी है। 'प्रकर', 'नटरंग', 'आजकल' आदि पत्रिकाओं में समय–समय पर इनकी कविताएँ नाटक कहानियाँ और लेख छपते रहे हैं।

एक बहु आयामी व्यक्तित्व सुरेन्द्र वर्मा के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी सम्पन्न रचनाकार हैं परन्तु फिर भी नाटककार सुरेन्द्र वर्मा की ख्याति अधिक है। इनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे डॉ. मीना पंडया ने लिखा हैं, ''नाटककार सुरेन्द्र वर्मा का व्यक्तित्व साहित्यकार सुरेन्द्र वर्मा पर पूर्ण रूप से हावी है। यह बात इनके बहुचर्चित एवं बहुमंचित नाटकों से ज्ञात होती है।'[7]

सुरेन्द्र वर्मा के साहित्य से प्रतीत होता है कि वे आधुनिक विचारों से प्रभावित हैं। किन्तु वर्तमान युग की भोगवादी संस्कृति का वे पर्दाफाश करते हैं। स्त्री–पुरुष के बदलते रिश्ते एंव उन्हें नये कोण से परिभाशित करना इनका मूल हेतू प्रतीत होता है। आधुनिक युग की यांत्रिक प्रगति, पश्चिमी देशों से बढ़ा सम्पर्क, यातायात एवं सम्पर्क के अत्याधुनिक साधन के परिणाम स्वरूप विचारों का संस्कृति का आदान–प्रदान तेजी से हुआ है। नई पीढी भोग–विलास में लिप्त है। सुरेन्द्र वर्मा ने अपनी रचनाओं में इसी यथार्थ स्थिति का अंकन किया है।

सम्मान :

1. केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा सम्मानित।
2. 1997 मे साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित।
3. भारतीय भाषा परिषद द्वारा सम्मानित।
4. भारतेन्दु पुरस्कार से सम्मानित।

'रति का कंगन' नाटक का प्रथम संस्करण 2011 में प्रकाशित हुआ। नाटक के पृश्ठों की संख्या 150 है और भारतीय ज्ञानपीठ 18 इन्स्टीटयूशन एरिया, लोदी रोड़, नई दिल्ली, 110003 से प्रकाशित हुआ है। यह नाटककार का 10वां नाटक है।

'रति का कंगन' नाटक में मुख्य दो कथाएं है :

1. मुख्य कथानक मल्लिनाग नाम के युवक को लेकर वह नाटक का नायक है।
2. गौण कथानक – आचार्य चाणक्य और उनकी पुत्री मेघाम्बरा को लेकर लिखा गया है।

मुख्य कथानक के अनुसार

मल्लिनाग नाम का एक युवक है जो इस नाटक का नायक है। मल्लिनाग की माँ का नाम अम्बा है जो विधवा हो गयी है। मल्लिनाग के जन्म से उसके पिता की मृत्यु कुछ ही महीने पूर्व हो चुकी है। उसने अपने पिता का मुख भी नहीं देखा।मल्लिनाग की माता अम्बा ने उसे बड़े लाड़–दुलार से पाला पोसा है। नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने दिखाया है कि मल्लिनाग बचपन से ही बड़ा मेधावी था। इसलिए उसक माँ उसे विश्वविद्यालय में पढ़ने भेजती है। मल्लिनाग का प्रेम कई नारियों के साथ रहा है। उसका प्रेम सम्बन्ध तीन भाभियों के अतिरिक्त कोकिला और लवंगलता के साथ भी था।

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटक में 'काम' को समाज की दृष्टि से अच्छा नहीं माना परन्तु यथार्थ के धरातल पर काम को प्रस्तुत किया है। 'काम' को जीवन का आवश्यक अंग मानते हुए उसे घृणित दृष्टि से नहीं देखा है। भारतीय संस्कृति में चारपुरुशार्थ धर्म, अर्थ काम और मौक्ष माने गए हैं। अन्य पुरुषार्थों के समान 'काम' भी महत्वपूर्ण है।

'रति का कंगन' नाटक हिन्दी के वरिष्ठ नाटककार श्री सुरेन्द्र वर्मा की नवीनतम विशिष्ट नाट्य कृति है। दिव्य के पीछे कभी गर्हित भी होता है – लेकिन गर्हित का ही रूपांतर फिर दिव्य हो जाने ह क्षत – विक्षत नाट्य कथा है – 'रति का कंगन'।

श्री सुरेन्द्र वर्मा ने नाटक में प्रमुख रूप से वर्तमान युग के विश्वविद्यालयों, वहां का वातावरण तथा शोधार्थियों की समस्याएँ जैसे प्रकाशयों द्वारा लेखकों का आर्थिक शोषण, नारी–पुरुष के नैर्सिंग प्रेम–सम्बन्धों, सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ, युद्ध मे विजेता द्वारा विजित का शोषण, अत्याचार जैसी अमानवीय यातनाएँ तथा कूटनीतिज्ञ आचार्य चाणक्य के जीवन के अंतरंग पक्ष को उठाकर बहुत ही रोचकढंग से प्रेक्षक (दर्शक) के समक्ष प्रस्तुत किया है।मल्लिनाग को अम्बा पाल–पोसकर बड़ा करती है, जब वह युवा हो जाता है तो उसे आगे पढ़ने के लिए विश्वविद्यालय में शोध अर्थात् पी.एच.डी. करने भेजती है। वहां संयोग से लंवगलता नाम की प्रोफेसर मिलती है, वह मल्लिनाग की शोध निर्देशिका बन जाती है। प्रोफेसर अविवाहिता है। वह शोधार्थी मल्लिनाग को चाहने लग जाती है। लवंगलता जब शोधार्थी थी, तब उसके शोध–निर्देशक तुंगभद्र थे आचार्य तुंगभद्र ही लंवगलता को विश्वविद्यालय में प्रोफेसर लगवाते हैं। आचार्य तुंगभद्र का जब पता चलता है कि लवंगलता उसे छोड़कर मल्लिनाग से प्रेम करने लगी है तो वह

मल्लिनाग से ईर्ष्या करने लग जाता है।

मल्लिनाग के तीन वर्ष के शोध–प्रबन्ध को अस्वीकृत करवा देता है। इस प्रसंग से यह पता चलता है कि नाटककार ने यह दिखाया है कि विश्वविद्यालयों में किस प्रकार अनाचार और भ्रष्टाचार व्याप्त है। मल्लिनाग निर्दोष होते हुए भी आचार्य तुंगभद्र की ईर्ष्या के कारण शोध प्रबन्ध अस्वीकृत हो जाता है। साथ ही नाटककार ने यह भी दिखाया है कि विश्वविद्यालय के अन्दर योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि सिफारिश के आधार पर पददिये जाते हैं। इन स्थितियों में मल्लिनाग मजबूर होकर संदीपन नाम के प्रकाशन से मिलता है क्योकि मल्लिनाग को जीवन–निर्वाह के लिए रूपयों की आवश्यकता पड़ती है। मल्लिनाग चाहता है कि वह पुस्तक लिखें। प्रकाशक मल्लिनाग को सलाह देता है कि 'कामसूत्र' नाम का ग्रंथ लिखे तो बिक्री अधिक होगी और प्रकाशक और लेखक देनों को ही लाभ होगा। मल्लिनाग बहुत मेहनत करके कई ग्रंथो को पढ़कर 'कामसूत्र' ग्रंथ लिखता है तो समाज सुधारक वियोगी नाम का व्यक्ति उसको न्यायालय में घसीटता है। वह कहता है कि मल्लिनाग ने ऐसा ग्रंथ लिखा है जो समाज को अश्लीलता की ओर धकेलता है, क्योंकि न उसे न्यायालय में ले जाकर दण्ड दिलवाया जाए।

दूसरी और संदीपन मल्लिनाग की पुस्तक 'कामसूत्र' की खूब बिक्री होती है और अथाह धन कमाता है। प्रकाशक मल्लिनाग से कहता है कि 'कामसूत्र' की बिक्री ही नहीं हुई है, मैं तुम्हें रूपयें कहाँ से दूँ। इस घटना के द्वारा सुरेन्द्र वर्मा इस नाटक में यह दिखाना चहाते हैं कि किस प्रकार प्रकाशक लेखकों का शोषण करते हैं।

जैसा कि नाटक का नाम 'रति का कंगन' है। इस शीर्षक द्वारा नाटककार यह दिखाना चाहता है कि तत्कालीन युग में यह परम्परा थी कि जिस लड़की का 'वाग्दान' अर्थात् सगाई हो जाती थी। उस समय उसका भावी पति एक कड़ा अर्थात् चूड़ी पहनाता था जिसे 'रति का कंगन' कहा जाता था। यह पक्का हो जाता था कि रति का कंगन पहनने वाली युवती उसकी वाग्दता हो गयी है। लेकिन नाटककार यहाँ इस यथार्थ का वर्णन भी करता है कि जो युवक रति का कंगन पहनाकर अपनी 'वाग्दता' से विवाह करने से मुकर जाते थे उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। नाटक में नायक मल्लिनाग के जीवन की भी यही घटना है मल्लिनाग कहता है कि उसने रति का कंगन भोलेपन में पहनाया था।अब वह विवाह से इंकार कर देता है। समाज या न्यायालय उसे जो भी दण्ड दे उसे वह स्वीकार करेगा।

नाटक के इस मुख्य कथानक के साथ ही नाटक में दूसरी गौण कथा आचार्य चाणक्य की है। जिन्हें राजनीति का 'कौटिल्य' कहा जाता है, उनके अतरंग जीवन को लेकर शुरू होती है। इतिहास में कौटिल्य को एकांत वासी माना गया लेकिन कौटिल्य के जीवन का एक कोमल पक्ष भी था। आचार्य चाणक्य अर्थात कौटिल्य जो राजनीति तथा अर्थशास्त्र के पण्डित होते हुए भी मानव सुलभ कमजोरी के कारण नीलाम्बरा नाम की युवती से प्रेम करते थे। समय ने ऐसा परिवर्तन लिया कि आचार्य चाणक्य को नंदवंश को नष्ट करने के लिए प्रतिज्ञा करनी पड़ी और चन्द्रगुप्त को शासक बनाने में अपना सारा जीवन खफा देना पड़ा।

उधर हूणों के आक्रमण हुए और उस आक्रमण में नीलाम्बरा और मेघाम्बरा को बंदी बना लिया गया। आचार्य चाणक्य जीवनभर चन्द्रगुप्त को चक्रवर्ती सम्राट बनाने के लिए राजनीति के संघर्श में जूझते रहे और दूसरी ओर अपनी प्रेयसी नीलाम्बरा को भूल गये। नीलाम्बरा ने बाद में एक लड़की को जन्म दिया जो चाणक्य की पुत्री थी। उसका नाम मेघाम्बरा था।

कालांतर में आचार्य चाणक्य की प्रेयसी नीलाम्बरा कि मृत्यु हो जाती है। अपनी माँ की मृत्यु के पश्चात् मेघाम्बरा अपने पिता की खोज में निकल पड़ती है। मेघाम्बरा ने अपनी माँ से अपने पिता का नाम तो सुना था लेकिन अपने पिता चाणक्य को देखा नहीं था।

रति का कगंन नाटक में दूसरे अध्याय अर्थात् अंत में जिसका लेखक ने 'सतत्' नाम रखा है। संयोगमें मेघाम्बरा का मिलन अपने पिता चाणक्य से होता है। यह मिलन इस प्रकार हुआ कि राज्य की ओर से एक सौन्दर्य प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। इस आयोजन में अर्थात् सौन्दर्य प्रतियोगिता में मेघाम्बरा भी भाग लेती है और अपने सौन्दर्य और विदुषी होने के नाते वह सौन्दर्य प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त करती है। जब मेघाम्बरा से उसका परिचय पूछा जाता है तब वह अपने जीवन का वृतांत बताते हुए कहती है कि किस प्रकार उसकी अकेली माँ ने पालन–पोषण किया था और माँ बेटी हूणों के आत्याचार का शिकार बनी।

यहाँ नाटककार ने हूणों के अमानवीय अत्याचारों को दिखाया है।सौन्दर्य प्रतियोगिता में प्रथम स्थान मिलने पर मेघाम्बरा को पुरस्कार स्वरूप अथाह धन और राजकीय सुविधाओं की प्राप्ति होती है। अब आचार्य चाणक्य अपनी पुत्री मेघाम्बरा का विवाह किसी योग्य युवक के साथ करना चाहते हैं परन्तु मेघाम्बरा प्रतिरूप में मल्लिनाग को चाहने लगती है। आचार्य चाणक्य नहीं चाहते कि मेघाम्बरा मल्लिनाग जैसे भ्रष्ट युवक के साथ विवाह करें। अंत में पिता के न चाहने पर मेघाम्बरा मल्लिनाग को अपनी अथाह धन–सम्पत्ति का संरक्षक घोषित कर देती है और नाटक का कथानक यहाँ सम्पूर्ण हो जाता है।

सुरेन्द्र वर्मा द्वारा लिखित रचनाओं एवं नाटकों के लिए कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। इस नाटक के लिए भारतेन्दु पुरस्कार मिल चुका है। इनके नाटको का मंचन विभिन्न नाट्य–गृहों अर्थात् रंगमंच पर समय–समय पर होते रहे हैं। सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटकों में ऐतिहासिक कथानक को लेकर उनमें वर्तमान जीवन की समस्याओं को उठाक उनके समाधान हेतु समाज के यथार्थ का वर्णन के संकेत दिए हैं नाटकों के साथ ही साहित्य की उपन्यास कहानी एंकाकी आदि विधाओं में भी उन्होंने लिखा हैं अर्थात् बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नाटक सुरेन्द्र वर्मा, डॉ. अशोक एस. पटेल, पृ. 16
2. आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय संरचना, गोविन्द चातक,पृ. 163
3. सुरेन्द्र वर्मा की नाट्य–भाषा, डॉ. मीना पंडया, पृ. 54
4. सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में रंग मंचीयता, डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता, पृ .33
5. सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में रंग मंचीयता, डॉ. देवेन्द्र कुमार गुप्ता, पृ. 33
6. सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में स्त्री–पुरुष संबंध : एक अनुशीलन, डॉ. नाना साहेब गायकवाड, पृ. 35
7. सुरेन्द्र वर्मा की नाट्य भाषा, डॉ. मीना पंड्या, पृ. 51
8. सुरेन्द्र वर्मा, 'रति का कंगन' प्रथम संस्करण, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, 2011
9. डॉ0 नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी नाटक संस्करण, नेशनल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1970
10. संपादक नेमी चन्द्र जैन : आधुनिक हिन्दी और रंगमंच, प्रथम संस्करण, 1978, प्रकाशक द मैक्मिलन कम्पनी ऑफ नई दिल्ली
11. जयदेव तनेजा, आज के हिन्दी रंग नाटक, प्रथम संस्करण, 1980, प्रकाशक तक्षशिला प्रकाशक दरियागंज, दिल्ली

डॉ0 सुमित्रा कुमारी

सहायक प्राध्यापिका,

हिन्दी –विभाग

महिला महाविधालय, झोझूकलां,

चरखी दादरी

25

The Effect of Structuralism in English Literature

Pooja Pandey

Abstract

Structuralism is the methodology that implies elements of human culture, most to be understood by way of their relationship to a broader, overarching system or structure. It works to uncover the structures that underlie all the things that humans do, think, perceive and feel.

Keyword: Effects, structuralism, English, Literature

Introduction: Structuralism is the concept about structure and their relationship. Structuralism, the word origin connect with the work and of Ferdinand de Saussure on linguistics, along with the linguistic of the Prague and Moscow school of linguistic.

Structuralism in Europe developed in the early 1900s in France and Russian Empire, in the structural linguistics of Ferdinand D Saussure.

In late 1950s and 1960s when structural linguistic were facing serious challenges from the likes of Noam Chomskey and thus fading in importance, an array, of scholars in the humanities borrowed Saussure's concepts for use in their respective fields of study . The structural mode of reasoning has been applied in a diverse range of fields including anthropology, sociology, psychology, literary criticism, economics and architecture. The most prominent thinkers associated with structuralism include Claude Levi, Strauss, linguist Roman Jakobson and psychoanalyst Jacques Lecan. As an intellectual movement structuralism was initially presumed to be the heir apparent to existentialism

However by the late 1960s, many of structuralism basic tenets came under attack from a new wave of predominantly French intellectuals such as the philosopher and historians Michael Fovcault, the philosopher and historian Jacques Derrida and Marxist philosopher Louis Althusser and the literary critic Roland Barthes. The elements of their work necessarily relate to structuralism and are informed by it. These theorists have generally been referred to as post-structuralists. In the 1970s, structuralism was criticised for its rigidity and historicism. Despite of this, many of structuralism proponents such as Lecan continued to assert an influence on continental philosophy and many of the fundamental assumptions of some of structuralisms. Post-structuralism critics are a continuation of structuralism

What is structuralism?

The term structuralism in reference to social science first appeared in the works of French anthropologist Oland Levie Strauss, who gave rise to structuralism movement in France. He influenced the thinking of other writers such as Louis Althusser, the psycho analyst Jacques Lecan as well as the structural Marxism of

Nicos Poulantzas. The origin of structuralism comes with the work of Ferdinand D Saussure on the linguistics of the “Prague and Moscow School”. In brief, Saussure's structural linguistic, propounded three related concepts.

1. Saussure argued for a distinction between langue (an idealised abstraction of language) and parole language as actually used in daily life. He argued that the sign was composed of a dignified , (signifies) an abstract concept or idea and a signifier, significant the perceived sound visual image.

2. Because different languages have different words to refer to the same object or concepts. There is no intrinsic reason why a specific signifier is used to express a given concept or idea. It is thus arbitrary.

3. Sign thus acquire their meaning from their relationship and contrast with other signs. As he wrote “In language there are only differences without positive terms”. Proponents of structuralism argue that a specific domain of culture maybe understood by means of structure modelled on language that is distinct both from organisations of reality and those of ideas or the imagination of the “third order”. In Lecan's psycho analytic theory, for example, the structural order of “the symbolic” is “the real” and “the imaginary”. Similarly, in Althusser's Marxist theory, the structural order of capitalist mode of production is distinct, both from the actual, are real agent involved in its relations and from the ideological form in which those relations are understood. Blending Freud and Saussure, the French post-structuralist Jacques Lecan applied structuralism to psycho analysis and

in a different way. Jean Piaget applied structuralism to the study of psychology but Jean Piaget who would better define himself as constructivist consider structuralism “a method not a doctrine”, because for him, there exists no structure without a construction abstract as genetic. Although the French theorist Louis Althusser is often associated with a brand of structural social analysis, which helped to give rise to “Structural Marxism”. Such association was contested by Althusser himself in the Italian, forwarded to the second edition of Reading Capital. In this foreword Althusser states the following. 'Despite the precautions, we took to distinguish ourselves from the structuralist ideologies, despite the decisive intervention of categories foreign to structuralism and the terminology we employed was too close in many respects to the structuralist terminology, not to give rise to an ambiguity, with a very few exceptions. Our interpretation of Marx has generally been recognised and judged in home age to the current fashion as structuralist. We believe that despite the terminological ambiguity, the propounded tendency of out text was not attached to the structural ideology.

In a later development feminist theorist Alison Assister enumerated four ideas that are common to the various form of structuralism. First, a structure determines the position of each elements of a whole. Second, that every system has a structure. Third, structural laws deals with co-existence rather than change.Fourth, structures are the real thing that lie beneath the surface or the appearance of meaning.

Structuralism in English literature

The advent of critical theory in post-war period which comprised various complex disciplines, psychoanalytical criticism, structuralism, post colonialism etc. provides hostile to the liberal consensus which reigned the realm of criticism between 1930s and 50s. Among these overarching discourses, the most controversial were the two intellectual movements. Structuralism and Post- Structuralism originated in France in the 1950s and the impact of which created a crisis in English studies in the late 1970s and early 1980s. Language and philosophy are the major concerns of these two approaches rather than history or author structuralism which emerges as a trend in 1950s challenged new criticism and rejected existentialism and its notion of radical human freedom. It focused instead, how human behaviour is determined by cultural, social and psychological structures. It tended to offer a single unified approach to human life that would embrace all disciplines. Rolland Barthes , Jacques Derrida explored the possibilities of applying structuralist principles to literature. Jacques Lecan studies psychology in the light of structuralism, blending Freud and Saussure. Michael Faucault's "the order of things" examined the history of science to the study of structure of epistemology. Levi's Althusser combined Marxism to create his own brand of social analysis. Structuralism in a broader sense, is a way of perceiving the world in terms of structure first seen in the works of anthropologist Claude Levie Strauss and the literary critic Roland Barthes. The essence of structuralism is the belief, that things cannot be understood in isolation. They have to be seen in the context of larger structure they are part of. The content of larger structures do not exist by themselves but are formed by our way of perceiving the world. In structuralism criticism ,consequently there is a constant movement away from the interpretation of the individual literary work towards understanding the large structures which contains them. The structuralist analysis of Donnes poem Good Morrow demands more focus on the relevant genre. The concept of courtly love rather than on the close reading of the formal elements of the texts. Structuralist believe, that the underlying structures which organized rules are units into meaningful system are generated by the human mind itself and by sense of perception. Structuralist tries to reduce the complexities of human experiences to certain underlying structures which are universal and idea which has its root in the classicist like Aristotle who identifies simple structures as forming the basis of life.

Structure can be defined in any conceptual system that has three properties:

“wholeness”, the system should function as a whole; “transformation”, system should not be static; “self-regulation”, the basic structures should be changed. What Saussure theory of language emphasizes, that meaning, are arbitrary relational. Saussure theory establishes that human being are relatively not central. It is language that constitutes the world. Saussure employed a number of binary oppositions in his works. Saussure's use of terms, langue and parole and individual utterance in that language gives structuralist a way of thinking, about the larger structure,

which were relevant to literature.

Effects of structuralism in English literature:

In literary theory, structuralism challenge the belief that work of literature reflected a given reality, instead a text was constituted of linguistic conventions and situated among other texts. Structuralism regarded language, as a closed stable system and by the late 1960s it had given away to post-structuralism. Structuralism in literature is an uncountable noun. It is a method of interpreting and analyzing such things as language, literature and society which focuses on contrasting ideas or elements of structures and atoms, to show, how they relate to the whole structures.

According to Oxford dictionary.

"Structuralism is an uncountable noun in literature language and social science". It is also a theory that considers, any text edges structure which various parts only have meaning when they are considered in the relation to each other compare this construction structuralist"

Structuralism had the greatest impact in the field of literary theory and literary criticism. It is more considered as an approach or method, not a distinct field. structuralist equipped with earth theory and method of linguistic analysis and have examined a whole variety of text, such as fairy tales and meats. Such cultural phenomena as wrestling matches, regarded as the text from the structural point of view, have also been examined. In the study of literature, structuralist have employed linguistic analysis to reveal, how structures are formed. Structuralism does not so much focuses on the meaning of literary work on its linguistic structure. Structuralism questions about the meaning, representation and authorship and studies the relationship between language and structure. Structuralism tried to explain the human activities, scientifically proved, discovering the basic elements of those activities, such as concept, action and the lexicon and the rules for their combination of laws about structuralism. Structuralism provides innovative ground for the analysis of literature. The role of fiction, reader, story, poetry, language no longer for representing the correct reality but for manufacturing new relation and pluralistic realities in language space are some of the outcomes of literary structuralism. Structuralism now designated the practice of critic, who analyzed literature on the explicit model of the modern linguistics theory. It is a term of literary criticism related to language though it influenced a number of modes of knowledge and movements. Structuralism includes all kinds of communicative method both at sign and signification. As a result, it is related to all the forms of sin like smoke fire, traffic light, flight, body language, artefacts, status, symbol etc.

Structuralism relies upon a fundamental belief. According to it, human activities are not natural but constructed. The effects of this belief persuaded all famous structuralist work. Some of the significant practice nurses like Robert scales (author of structuralism in literature), and TererceHawked(author of book structuralism and semiotics), David laws, Colin Maccabe (creator of structuralist approaches in the books working with structuralism) have demonstrated structuralism belief in their literary work. Structuralism is an interrelation between "rules" (a way to assemble units) and "units" (important surface phenomena). When it comes to applying it into language, rules become grammatical structural forms and units become words. Both grammar forms and words very from language to language but the structure remains the same. In other words, a structure makes the meaning. For instance, recall fairy tales like Sleeping Beauty, Cinderella and Snow White in which all the protagonists are the units. Prince, princess, good fairy and antagonist like stepmother or evil witches are rules. In these narratives, princess are the innocent and victimized and the prince married them in the end. There is a fact that structuralism changed the perspective of analyzing literary work. Structuralist presented language, as a dynamic entity that plays a vital role in the constituting meaning in the context.

Structuralism can be used for a description of structures and their functioning also. It can perhaps be tried back to the time of Plato and Aristotle. For Plato, the quality of poetic imitation rendered a servile and untruthful discourses both in content and structures which consequently deserve to be existed from his commonwealth. Aristotle structuralism however lies his emphasis on the logical and ethical form of poetry. Aristotle and poems should have a beginning, a medal and an ending which are logically inter-related to each other, so that the result be an organic whole about the ethical form of poetry. The structuralism in literature is an organization of a society which was well class conscious for it was among things, tripartite dramatic poetry in the English hierarchal society

was dramatized, a society where tragedy was for the highest class, comedy for the middle class and farces for the lowest class and decorum, which was badly needed for literature meant appropriateness for each genre to the class of society which it mirrored. Structuralism is also that Jean Piget had defined the structure as the observation of any arrangement of entities, which embodied the ideas of wholeness, transformation and the self-regulation. Structuralism brings literature together with language. Structuralism views literature as a second order system that uses the first order structural system of language to its medium and itself to be analyzed primarily on the model of linguistic theory. In this position, structuralism is a linguistic study of literature or search for language of it. As Guru Bhagat Singh had said, the human mind and language as interruption or discontinuities is a very important notion that structuralism has hit upon and probably it's further development lies the future growth of human science but still structuralism remains stuck to culture the mined and the language reflecting the universe.

Conclusion:

In this paper my attempt is to highlight the importance of structuralism in English literature. It also show the effects of English literature in the works of writers. My attempt is also to make us know about the basic fundamentals of structuralism, how language is different from structure, the basic structure of the word and how a sentence form formed by using that word. Structuralism is one of the impactful and controversial approaches that set its aim to determine underlying structures of literary texts. It can also be applied to study any meaningful events. Structuralism analyses the science, function and the impact of every event. So structuralism is an important form of writing that covers all the major structure of language

References:

1. Abraham, M.H-(1993) *A Glossy of Literary Terms* New York: Harcourt Brace College Publishers.
2. Barthes, R-(1974) *Structuralism: A Study,* New York: Black well publishing. ibid P234.
3. Lionel, D-(1975); *An Introduction to the Structural Analysis of Narrative*. California University, Press California.
4. Joseph, W-(1954); *The Method of Learning.* New York: New York University Press.
5. Barren, R-(1964); *Structuralism*: Oxford, Oxford University Press.
6. Selden, R-(1985)*; An Essay on Criticism*, London, Oxford University Press.
7. Harold, T-(1958); *The Creative Process,* New York, New York University Press.

Pooja Pandey
Plot No-64A
Bari Co-operative
Bokaro Steel City
Bokaro (Jharkhand)
PIN-827010
Mob No-9470507615,7004635669

26

Achievements of Chandragupta-II

Rinesh, Urmila Sharma

Abstract: In this manuscript, we study about achievements of Chandra Gupta II,who was a prompt replacement of Samudra Gupta. Also, we have discussed about the married life of Chandra Gupta II along with conquests over other kingdoms by great Samrat Chandra Gupta Vikramaditya.

Keywords: Chandragupta II, matrimonial, Kubernaga, Saka Satraps.

Introduction

Chandra Gupta II, like his father, was a sword master. He had the blood of a general in his veins running through him. His foot kissed the goddess of triumph. The Sakas, who had dominated for the last four centuries, could never indulge the futile expectation that Indian soil would recover dominance. In disguise, his going to the Saka camp speaks volumes of his bravery and dash. He was a pioneer born of men, a warrior, a great soldier, and a great general.The statemanship in him can be seen in the way he made a coalition with the Vakatakas and Nagas, the numerous contemporary ruling kingdoms of the day. His marriage with the Naga princess turned the enemy into a friend, enabling his invasion of Saurashtra by giving his daughter Prabhavatigupta to Vakataka ruler Rudrasena II.

In the Ganges valley, the Guptas, who had been vassals of the Kushanas, appeared in 328. They spread their control over northern India through intermarriage and conquest. Warfare and brutality were tamed by chivalric conventions and religious harmony over most of the Gupta century, and Indian culture enjoyed its golden age.

The third and most powerful of the Gupta rulers, Chandra Gupta II, was (c.375--c.415).

He spread his influence to Gujarat (north of Bombay) and Malwa by inheriting a large empire (central India). He made marriage agreements with southern dynasties for his daughters in order to improve his southern side.

A Sanskrit renaissance in Northern India was sparked by his patronage of literature, arts, and architecture, and the intellectual growth of ancient India reached its climax.

In the glorious capital of Pataliputra (Patna), the renowned poet Kalidasa lived at his court, and through writing textbooks on surgery, the great physician Susruta gained medical expertise. Chandra Gupta was a devout Hindu, but Buddhist faiths and Jain religions were accepted.

His child Chandragupta II, surnamed Vikramaditya, succeeded Samudragupta. However, as per a few students of history, Samudragupta's prompt replacement was his child Ramagupta, Chandragupta II's senior sibling. Visakhadutta's show Devichandraguptam specifies that Ramagupta consented to present his sovereign Dhruvadevi to the captivation of a Saka pioneer who had vanquished his realm.The honor of the sovereign was saved by Chandragupta; more youthful sibling of Ramagupta who executed the Saka boss usurped the seat and wedded the widow. Anyway the trustworthiness of Ramagupta is matter of extraordinary uncertainty as neither the contemporary engravings nor the coins notice any lord of that name.Chandragupta acquired the military virtuoso of his dad and expanded the Gupta Empire by triumphs of his own. His essential adversary was the Saka leader of Gujarat and Kathiawar Peninsula having a place with the group of western Satraps whose proceeded with autonomy forestalled the political solidarity of India. His endeavors were delegated with progress. Rudrasimha III the remainder of the long queue of Saka satraps was murdered. The addition of Kathiawar and Gujarat not just extended the Gupta Empire from the Bay of Bengal to the Arabian Sea yet additionally acquired it direct contact with the western world. Epigraphic proof recommends that Samudragupta was prevailing by his child Chandragupta II Vikramaditya, likewise called Narendra Chandra, Simha Chandra, Narendra Simha and Simha Vikrama, conceived of sovereign Dattadevi. Notwithstanding, different sources show that progress between the reigns of Samudragupta and Chandragupta II was covered in secret. The disclosure of a couple of entries of a lost dramatization Devi Chandragupta, attributed to Vishakhadatta, has illuminated this issue. From the accessible concentrates we discover that Ramagupta, a defeatist and barren (kliba) ruler, consented to give up his sovereign Dhruvadevi to a Shaka trespasser. Be that as it

may, the ruler Chandragupta, the more youthful sibling of the lord, made plans to go to the foe's camp in the appearance of the sovereign so as to execute the loathed foe. The consolidated declaration of the Harshacharita of Bana, the Kavyamimamsa of Rajashekhar, the Sanjan, the Cambay and the Sangli copper plates of the Rashtrakuta rulers, shows that Chandragupta had prevailing with regards to slaughtering Ramgupta, and held onto his realm as well as hitched his widow. Chandragupta-II, Vikramaditya climbed the seat in 375 A.D. Samudragupta chose Chandragupta-II as his replacement to the seat 'out of his numerous children's by considering him as his Sat-putra or the most commendable child. Chandragupta-II was the child of sovereign Datta or Dattadevi, depicted as Mahadevi. The Bihar and Bhitari stone column engravings of Skandagupta depict Chandragupta-II as 'Tatparigrihita' which infers that he was chosen by his dad from among his different siblings.

On Chandragupta-II's character V. A. Smith expresses, "Little is known concerning his own character, however the found out realities of his vocation get the job done to demonstrate that he was a solid and enthusiastic ruler, very capable to administer and contention a broad domain". Based on abstract proof a few researchers think that Ramagupta the senior sibling of Chandragupta-II succeeded Samudragupta. From the Drama Devichandraguptam of Vishakadatta it is realized that Ramagupta was vanquished by a Saka ruler. The Saka lord requested the acquiescence of his sovereign Dhruva Devi, Chandragupta-II executed the Saka ruler. He supplanted his sibling on the royal seat and wedded Dhurvadevi.

But scholars do not recognise this storey as a historical custom of the Gunuine. There is no reference to any prince called Ramagupta in contemporary epigraphic documents. In comparison, no coins bearing the name of Ranigupta have been identified so far. Many titles of Chandragupta-II have been identified to refer to him as 'Devaraj' and 'Vakataka Inscription' with the name 'Devagupta' in the Sanchi inscription.

Matrimonial Alliances:

Like his Chandragupta-1 ancestor. Who, by wisely marrying a Lichchavi Princess, improved his position? Chandragupta-II reinforced his position and spread his power by two, probably three, major marriage alliances.

(1) He married a Naga princess, Kubernaga. While the Nagas were defeated by Samudragupta several times, they were not annihilated and their strength in Northern India was substantial.

(2) He married Prabhavatigupta, his daughter, and Rudrasena-II. The ruler of the Vakatakas. There was no question that Samudragupta had controlled the eastern part of the territories of Vakataka, but the Vakatakas had extended their control and control under Prithvisena. In defeating the Western Satraps, the Vakataka alliance supported Chandragupta-II.

(3) A third coalition was probably made with the Kadainbas of Kuntala. The Kuntalas Varadantyam of Kalidasa applies to such a coalition. With apparent pride, Kakusthavarman, of Kuntala, also mentioned in an inscription that he had married his daughters to esteemed families like the Guptas.

His Conquests:

From the outset Chandragupta-Il needed to thump down the Saka Satraps. The Sakas were an unfamiliar force and powerful in India. For in excess of 300 years the Sakas had been administering more than three-regions of Malwa (Ujjain), Gujrat and Saurashtra (Kathiaward). The Satavahanas and the Nagas had attempted to obscure the intensity of the Sakas yet fizzled in their main goal. Samudragupta might have wrecked them yet he was generally occupied in directing war activities in other significant territories. Bui Chandragupta-II couldn't endure the presence of the ground-breaking Sakas in the fringe of his realm. The subsequent explanation was that Chandragupta-II needed to possess the rich ports of the West Indian Coasts which were constrained by the Sakas. Chandragupta-II coordinated his mission against the Sakas and walked to Eastern Malwa being joined by his priest. Virasena Saba and General Amarakarddeva. It is an affirmed by the coins of Chandragupta-II that the triumph of the Saka domains occurred towards the end of fourth century and the start of fifth century A.D. Chandragupta-II initially involved Eastern Malwa and made it a base of activity in the battle against the Saka ruler Rudrasimha-III. After a drawn out war Rudrasimha was crushed and executed Chandragupta-II at that point added Malwa. Gujrat and Kathiawar to the Gupta Empire. At that point Chandragupta-II gave to himself the title 'Sakari" or the destroyer of the Sakas. He likewise accepted the honorific title of Vikramaditya. The aftereffect of the triumph over the Sakas was that it improved the renown and wonder of the Gupta line. The Gupta Empire

currently stretched out from the Bay of Bengal to the Arabian Sea Coast. The procurement of the prolific and rich areas of Western Malwa Gujrat and Saurashtra (Kathiawar) the Gupta Empire could improve its monetary success. The abroad exchange brought unbounded abundance for the domain, by victory of the multitude of three realms that the Gupta Empire was carried into direct touch with the Western ocean ports like Broch, Cambay and Sopara. Exchange with Rome made the nation prosperous. The abroad exchange additionally brought the trading of social thoughts among India and the West. In India the Island exchange and traffic astoundingly expanded as a result of the free section of commercial merchandise among Northern and Western India.

After the victory of Western India Chandragupta-II set up his second capital at Ujjain and made it the political, strict and social focus of India.

The Mehrauli Iron Pillar Inscription close to the Qutbminar at Delhi specifies the military adventures of a lord called 'Chandra' who vanquished an alliance of antagonistic bosses in varge and "having crossed in fighting, the seven months of the Sindu prevailed. Valialikas, King Chandra has been distinguished by numerous researchers with Chandragupta-II.

So if this recognizable proof is acknowledged, the Chandragupta-II vanquished an alliance of threatening Vanga rulers and vanquished the Vahalika domains or Bacteria. The territory of Bengal was brought under his immediate control. Vahalika is related to Balkh or Bacteria past the Hindukush Mountains.

As per Dr. R.C. Majumdar. "In this way in the event that we acknowledge the personality of Chandra of the Delhi Iron Pillar Inscription with Chandragupta-II we may well assume that his triumphant arms entered similar to the Eastern furthest reaches of India and past Hindukush toward the North-West.

In the event that we recollect that he had additionally vanquished the Saka realms in Western Malwa Gujarat and Kathiawar. We may view Chandragupta-II as having adjusted the Gupta royal domains in Northern India every which way. He accordingly finished the undertaking started by his father."

REFERENCES

1. Agrawal, A., Rise and Fall of the Imperial Guptas, Delhi, 1989.
2. Basham, A.L. (ed.), A Cultural History of India, Oxford, 1975.
2 Chhabra, B. C., Reappraising Gupta History for S. R. Goyal, New Delhi, 1992.
4. Goyal, S.R., A History of the Imperial Guptas,Allahabad, 1967.
5. Gupta, P.L., The Imperial Guptas, 2 vols, Varanasi, 1974.
6. Joshi, M. C., and S. K. Gupta. *King Chandra and the Meharauli Pillar*. Kusumanjali problems of Indian history series, no. 1. Meerut, India: Kusumanjali Prakashan, 1989.
7. K lid sa, and Somadeva Vasudeva. *The recognition o Shakúntala*. The Clay Sanskrit library. New York: New York University Press, 2006.
Maity, S.K., The Imperial Guptas and their Times, c. AD 300–550, Delhi, 1975.
9. Majumdar, R. C. *Ancient India*. Delhi: Motilal Banarsidass, 1964.
10 Majumdar, R.C. and A. S. Altekar (eds.), The Vakataka Gupta Age (c. AD 200 to 550), 2nd edition, Benares, 1954.
11. Mukerji, Radha Kumud. *The Gupta empire*. Delhi: Motilal Banarsidass, 1973.
12. Nilakanta Sastri(eds), A Comprehensive History of India, Calcutta, 1957.
13. Pandey, Rajbali. *Chandragupta II Vikram ditya*. Chaukhamba Amarabharati studies, v. 8. Varanasi, U.P., India: Chaukhamba Amarabharati Prakashan, 1982.
14. Rapson, E. J. *Catalogue of the coins of the Andhra dynasty: the western Ksatrapas, the Traik ṭaka dynasty and the "Bodhi" dynasty, with one map and twenty-one plates*. New Delhi: Asian Educational Services, 1989.
15. Shastri, Hara Prasad. *King Chandra of the Meharauli Iron Pillar inscription*. Ames Library pamphlet collection, 58:12. Bombay: British India Press, 1913.
16. Singh A., Study and analysis of Gupta empire in the history of India, International Journal of Advanced Research and Development, 3(2)(2018), 42-45.

Rinesh, Urmila Sharma
Department of History
Baba Mastnath University
Asthal Bohar,
Rohtak-124021, Haryana

27

Giligadu: A New Space For The Aged Self.

Apoorva Jagta

Abstract: The following paper is an attempt to the read the lives of two old men. Chitra Mudgal's *Giligadu* presents a world inhabited by two retired men, leading totally different kinds of lives. Jaswant Singh's life is in sync with the conventional image of ageing. He cribs about situations and looks his life as a loss while colonel Swami lives his 'aged' life on his own terms. The novel within itself has two distinct visions of old age. The paper concludes with the questioning of the normal and accepted views of advanced age through the lens of critical gerontology.

Ageing is just another phase of life like childhood, adolescence, middle age yet, it is seen as a problem that needs to be dealt with. It is seen as something unnatural and it is so because the aged corporeal subject is of no productive use to the society. It restricts physical activity, shrinks social contact and instills the consciousness of being a burden in the mind of the subject.

This is the case with retired civil engineer Jaswant Singh. His son, Narendra after his mother's death brings him to Delhi and from then and there starts Singh's identity crisis. He is given a cramped space, which he has to share with the dog, a balcony, to live. Not giving a bigger space implies Narendra's perception of an old self, an old person can nothave a full life. Mudgal bserves, "आखिर एक बूढ़े बोझ को पूरा कमरा कैसे दिया जा सकता है ।(P. 175) Age gradation is very clear in Narendra's mind.

Jaswant Singh has become a burden because he is no more useful to them so he has to literally exist on the fringes. Singh, who till now was the owner of the house (in Kanpur) has become just another person (in Delhi).

All kinds of restrictions and do's and don'ts are given to Jaswant Singh. use of phone, joining laughing club is objectionable. This makes him feel invalid and useless. He was used to a totally different way of life earlier and life in advanced age treats him differently. He is displaced. Out of this displacement, arises a feeling of being marginalized. Mudgal peeps into his mind and writes, अब जसवन्त कोये भी लगने लगाहै कि इस घर में वेस ही अर्थों में किसी वेफ लिए बुजुर्ग हैं तो वह वे फवलटामी है। (P-10)

The transformation called ageing is so anguishing perhaps because it brings with itself the loss of identity. What worries the older people is that they are dislocated. They are no more who they were. Power, health, command over house hold matters slips from Singh's hands. He has to erase and let go of what makes him Jaswant Singh in order to live in his son's house. The older Jaswant Singh extinct himself, at least parts of himself (habits) to exist in his son's house. Such old subjects have become a kind of problem for society and the only solution to this problem is their extinction even from the margins they are forced to inhabit. In words of Alex Comfort, "Age is the notion that people cease to be people, cease to be the same people or become people of distinct and inferior kind". The society has let this thought permeate in itself and this causes the marginalisation of old subjects like Jaswant Singh.

The novel's opening scene is that of a jogging park where another aged subject colonel Swami meets Jaswant Singh and a friendship develops between the two. They share things with each other. Their meetings hold significance because it illuminates the fact some kind of care, friendship, togetherness fills in the gap created by old age. Some of the markers of old age are absence of dear ones, caregivers, of those who understand the aged subject and of those who do not discriminate between the youth and elderly.

For Singh life has started meaning something else. His own son and daughter-in-law have issues with him. His son goes on a pilgrimage without him. Singh fells ignored and unwanted. In the context of old age, Maheep Singh writes,वृद्धजनों में यह भावना आमतौर से व्याप्त रहती है कि उन्हें पूछने वाला,उनकी आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने वाला कोई नही है।(P-6, Nai Dhara).Mudgal tells, दिल्ली आकर वे भूल गए है कि उनकी पंसद का कोई विशेष महत्व है।(P-38) At another point in the novel, author observes,घर की चौखट में दाखिल होते ही वे स्वयं को अपरिचितों की भाँति प्रवेश करता हुआ अनुभव करते हैं। कैसेकहें।(P-14)

Jaswant Singh ages as if his life is coming to an end. Age stratifications have permeated into his thinkinghe is no more able to lead an active life. Singh often feels lonely, recalls earlier blissful life, contemplates on the kind of life he

is leading now and keeps figuring out his end. He grapples with disability, powerlessness, uselessness and thoughts of deathvisit him. He asks his friend Colonel Swami,मौत के विषय में वे क्या सोचते हैं।"(P-63) Old people are pre occupied with the closure of life. In words of Ramdarash Mishra, वृद्ध के साथ न अतीत की यादें होती हैं न भविष्य के सपने, होती है तो बस अन्त की प्रतीक्षा।(P-22, Nai Dhara)

Jaswant feels like an outcast and an outsider. He cannot even expect the kind of food he likes. His plight is captured in the words, इच्छा– अनिच्छा घरवालों की होती है। घर में आकर रहने वालों की नहीं।(P-39). This is sheer dislocation.

No one in the family remembers his birthday and very poignantly Mudgal observes, असमर्थता मे बढ़त करने वाली तारीख कोई याद रखने वाली तारीख है?(P-46)This clearly establishes the fact that age is seen as a discriminator. This is how ageing is looked at. It is not received happily rather mourned. Does the one who is standing at the dusk of life deserve birthday wishes?

T.D. Nelson argues, "The way that society carries certain expectations for behaviour for people of various ages, it segregates younger and older people into 'us and them'." Jaswant's grandchildren don't spend time with him. Since Singh is an old man, his outlook and experienceshave become invalid so computer is children's companion. Mudgal captures Singh's feelings in these words, कम्प्यूटर जो देता है– वह देने में अक्षम हैं।उनके अनुभव अप्रासंगि कहो उठे हैं।तार छुटपने से जुड़े तो कैसे? (P-47). His grand children don't want him to be present in their birthday party and say, न, न दादू। अपने साथ हम किसी भी बड़े को नही ले जाएंगे–पार्टी बोरिंग हो जाएगी।(P-33). This emphasizes what Neugarten has argued, "Age is one of the underlying dimensions by which social interaction is regulated". This clearly shows ageing is understood as something whose byproduct is social marginality.

Ageing is associated with decline. The aged subject is not expected to have a full life. They are expected to live a life which has no space for social interactions as they have lived this phase already. The life is no more 'inviting'. According to his a Lisa Wanger, "The treatment of older people include a full range of behavior from deference and respect to discrimination"This discrimination is what Butler calls 'agesism'. She defines agesism as, "A process of systematic stereotyping and discrimination against people because they are old". When these prejudices float in any society older people are at the receiving end of disadvantages. Singh falls prey to one of these prejudices.

When the aged corporeal self in no more independent and there are prescriptions laid down for him, what does he do then? What is life for him? In the words of Mussharaf Aalam Zauki, तोक्या एक बूढ़ा होता अस्तित्व अपनी शेष आयु के लिए सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहता है? (P-176, Shabdshikhar)

Krishnanand writes in context of ageing, बुढ़ापा कोई रोग नही है, एक अनिवार्य प्राकृतिक जैविक प्रक्रिया है।(P-45, Nai Dhara). Age is associated with the perishing away of the body, diseases and shown unnatural but old age is not only about loss, decline, closure, dependence, and lamentation. There is more to ageing than the renunciation of worldly moorings and desires and contemplative preparation of death. It is important to pull ageing out of the stereotypes and expose it as a social, cultural construct.

Gliligadu functions through a binary. The other crucial character is that of Colonel Swami. He is a total contrast to Jaswant Singh. He has a caring family, loving grand-daughters. In other words he is still valuable, needed and respected unlike Singh. When Jaswant Singh tells Swami about how his life is, Swami straight away tells him that his feelings are an outcome of not being able to supervise the household. Swami tells him, दरअसल, यह और कुछ नहीं है। मिस्टर सिंह, बूढ़ों को शासन न करपाने की कुंठा है।(P-53)

We live in a society which attributes authority and wisdom to age. Aged subjects command respect because of the years they have lived and experiences they have accumulated over the years of life. Singh had atypical authority over family matters and now no more he possesses that. Does he crib because of this?

There are instances within the novel which shedlight upon the other way with which ageing can be looked at. Colonel Swami provides a counter way of looking at ageing. His wife is dead and children are settled and he has an affair with Anima Das. Same is the case with the lady. She feels lonely and longs for a partner. Her advertisement in the paper reads,तलाश है, एक अकेले याविधुर जीवन साथी की जो जीवन के आखिरी पड़ा व में उनका हम सफर बन सके। (P-77).

It is because of these instances it gets clear that aged self does not always shun desires and stop having a full life. Life does not become dry for the aged and the retired people, just because of they have parched a certain age.

When Colonel Swami asks Jaswant Singh, has he

ever loved someone except his wife, कभी आपने प्रेम किया है? पत्नी वाला छोड़ के?(P-72),the traditional and widely accepted image of an old person gets shattered.This is not expected of old subjects but the stereotype has become the norm because ageing has never been looked at otherwise.

In Indian culture, the Vedic template shapes the contours of self in way where Sannyasa Ashrama asks a person to withdraw from life. These influences expose ageing as a cultural construct. The person who is above sixty may still have his passions alive and perhaps is not ready for leading a 'closed' life. Rajendra Yadav in context of the advanced age साँठवां वर्ष मेरे लिए विभाजन वर्ष नहीं है। खाना–पीना, सेक्स सभी कुछ उतने ही विकराल हैं जितने पच्चीस–तीस की उम्र में रहे होंगे।(P-10, Nai Dhara).

Old age and youth are seen as polarities because tradition and stereotypes demarcate them.Youth lives in a different way while the ageing subjects hold on to a different kind of trajectory where wisdom, patience, passion-free life awaits them.

The other side of the old age is expressed in Rajendra Yadav's diary entry which got published in a magazine. He writes of old age. मैं पवित्रता, शुद्धता, संयम, जैसे विचारों को अपने पास भी नहीं फअकने देता।(P-10, Nai Dhara).

The novel proceeds and it is revealed that colonel Swami had conjured up an imaginary world where he has a family, grand children who are bothered about him. Singh is taken aback by this revelation but it saves him. Swami had zeal in him. He had a different take on life. His family had treated him as badly as Singh's but this does not make him a whining old man. When Singh ask about life, Swami says, लिवलाईकशेर...अपनी तरह से।अपनी शर्तों पर। (P. 63)

He may be lonely but is not dependent, doesnot keep looking for support. In a way he defies the conventional image of an aged man.Swami's death illuminates the urgency of living on, creating space for himself, to Jaswant, for the society functions through stereotypes and won't do for him.

Swami is an illustration of the contrary view of ageing. He symbolizes the need of breaking the chain of conventions and social expectations. The aged self has to evolve into a different kind of person by defying the baggage of expectations that ageing brings. Self dissolution is not a way out. The novel gives a message that the aged subjects should not settle with the conventional ideas of old age and should be critical about them.

Those who are the victims will have to take stand for themselves.

The aged corporeal self should to confront the conventions, complexities of the advanced stage of life. By offering the two very different old voices, Giligaduis an illustration of critical gerontology. According to Zieling,"Criticalgerontology provides a reconsideration of conventional ways of thinking about age". Character like Swami inspires that even an aged self can muster courage and embrace life even in the advanced stage of life. Swami receives life with zeal. He looks forward to life. Ageing is supposed to be looking back at what has gone by. Swami does not behave like an old person.*Giligadu* offers a new kind of space to the old subjects. After Swami's death Singh decides to direct his life. He decides to go back to Kanpur and live life his way. He saves himself from extinction and doesnot wait to live on his son's mercy. This novel attends to the need of rethinking about old age, reconsideration of how age is perceived and received. The novel does away with the revulsion to growing old. Old age in the later part of the novel is like a dawn with possibilities. Singh nurtures the dream of going back to his place he has come from and starting new innings of his life. It would be a life of endless possibilities and certainly not of closure.Ageing for Singh doesnot remain an end rather becomes a beginning. Zauki writes, गिलिगडु बूढ़ों के लिए, एक ऐसी दुनिया है जहाँ वे अपना अन देखा स्वप्न संभालकर रख सकते हैं।

Works Cited

- Bernice L, Neugarten. "Age Distinctions and their social functions". *The meanings of age : selected papers of Bernice L, Neugarten.* Dail A. Neugarten eds. 1996. Print
- Comfort, Alex. *A Good Age*. 1976. Print.
- Krishnandगिलिगडुबूढ़ोंकेलिए, एक ऐसी दुनिया हैजहाँ वे अपना अन देखा स्वप्न संभाल कर रख सकते हैंA *Nai Dhara.* Shivnarayan eds. 2010. Print.
- Mehrotra, M. Chandra, Wagner, S. Lisa. "Psychology and ageing". *Ageing and Diversity*. 2009. Print.
- Mishra, Ramdarash. बबबाब' *Nai Dhara.* Shivnarayan eds. 2010. Print.
- Mudgal, Chitra. *Giligadu*. New Delhi : Samyik Prakashan. 2002. Print.
- Nelson, T.D. "Ageism : The strange case of prejudice

against the older you". Disability and ageing discrimination. R.L. Wiener, S.L. Willborn eds. 2011. Print.

- Rober N, Butler. "Ageism : Another form of Bigotry". The Gerontologist. 1969. Print.
- Singh, Maheep. मैं वृद्धों की श्रेणी में हूँ, किन्तु... *Nai Dhara.* Shivnarayan eds. 2010. Print.
- Yadav, Rajendra. किसने कहा कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ।Nai Dhara. Shivnarayan eds. 2010. Print.
- Zauki, Mussharaf Aalam. गिलिगडु एक महान कृति *Shabdshikhar.* 2002. Print.
- Zeiling, Hannah. "The critical use of narrative and literature in gerontology". *International Journal of Ageing and later life*. 2001. Print

Apoorva Jagta
Shanti Niketan,
Sahitya Vihar,
Bijnor, Uttar Pradesh. 246701
Mob.: 8979586458
apoorvajagta.16dec@gmail.com

A Conceptual Framework of African Diaspora

Sunil Kumar Dwivedi

Abstract

Diaspora is the study of human migration: emigration and immigration, voluntary or involuntary. It has a broad field of study in order to explore the existed or developed cultural sensibility of human beings all over the world. The African diaspora or The Black diaspora has the largest one history of human migration in the name of different terms. The present research paper studies and explores the current and valuable facts and fictions of the African diaspora in the contextual reference of human sensibility in the existed or developed culture all over the world.

Key Words: Diaspora, Community Migration, Emigration, Immigration, Identity crisis, Pan Africanism,

The phrase African diaspora is coined by whom, is not clear yet it has been employed first by George Shepperson in a paper, presented at the International Congress of African history, held at the University of Dar es. Salaam, in Tanzania, in 1965. Around the world, many different ethnicities, nationalities, races and religions, all of these aspects claim diaspora identity for themselves, while scholars, who study them often use the term without much analytical precision. Martin Baumann in *Shangri- La in Exile*, observes that the disciplinary application of 'diaspora' to non-Jewish and non- Christian peoples and their exile situation seems to have been undertaken first within African Studies. For the better understanding of the concept, African diaspora is known well with its different name as African Americans, Afro- Caribbeans, Black Canadians etc. A large number of Africans are living abroad outside Africa as the diasporic community in all over the world. It is reported that African Diaspora is one of the largest diasporas of the modern world. It is not the record of some centuries back for its historical development but it is also the continual process of African migration. As R W Beachey writes: "Pan Africanism and East African nationalism have drawn little or no strength from those nameless thousands who were wrenched from their homelands and transported overseas in past centuries." (Beachey, 84-85) The African diaspora is persuaded during the Atlantic slave trade, in which it is found that 9.4 to 12 million people were taken away to the Americas as the slaves through transportation using them in their different fields of production and development of the economy at the minimum price of labour charge. These enslaved people worked hard for the sake of their existences and established themselves as the descendants of Americas. So these slaves and their descendants became the major source of trans-culture community in British, French, Portuguese and Spanish New World colonies. Initially, it was recorded that to the Trans-Atlantic slave trade, millions of Africans had moved to the various countries of the world and settled there as the slaves, merchants, teachers, and other profession in the different context of migration. From the 8th century through the 19th centuries, and even to the current estimation, the African slaves were found controlled by the Arab oppressors. In this way, millions of Africans were taken to Asia and the other islands of Indian oceans to take their services in many fields. The present survey or record says that a number of Africans are surviving in the different countries of the world. The very slave trade has been known with the name of different types of diaspora like Victim Diaspora; the forceful eviction of the people, Trade Diaspora; dispersing to serve for economy, Labour Diaspora; working there with a job, Imperial Diaspora; settling there as their homeland and the Cultural Diaspora; group of people sharing their cultural traits which bring community together. The present African government has made the way to serve in many parts of the world as African Diasporic community can visit into nearly thirteen countries without advanced visas according to African Union. In pursuing their business for their future, into various countries, the Africans are allowed by the African Union (AU) to move freely between the fifty four countries of the AU under a visa free passport and they are also encouraged to return Africa after their well performance in their fields. It is well known that African diaspora and diasporic writings have been wide ranging connotations and complexities as The African Union defines an African diaspora consisting of people of Native African originally living outside the

continent, irrespective of their citizenship and nationality and who are willing to contribute to the development of the continent and the building of the African Union. Its constitutive act declares that it shall invite and encourage the full participation of the African diaspora as an important part of our continent, in the building of African Union.

The African diaspora is defined and developed as its sixth region in Africa by the African Union. It consists of a large number of population, descended from native Africans predominantly, in the various continents of United States of America. Historically, ethnographers, historians, politicians and writers have used the term African diaspora especially to the residents of the West and Central Africa, who were enslaved and sailed on, or sold to the many parts of America between the 16th and the 19th centuries. The largest population of African diaspora is found in Brazil while the Unites States and Haiti are the next two, having a large number of African people as the diaspora community or black diaspora. Further, it is said that between 1500 and 1900, near about four million enslaved Africans were taken away from their homes to the island plantations in the Indian ocean during the British rules. The next official estimation says that about eight million African slaves were shipped to the Mediterranean sea-shore countries, and about 11 million of African slaves were compel to survive in the Middle Passage to the New World.

The historical development of African diaspora was dispersed throughout the United states of America, Europe and Asia during the Atlantic and Arab slave trades which started proximately in the 8th century when the Arabs were taking a large number of African slaves known as Zani, from the central and eastern part of the continent, and selling them into the slave markets in the Middle East, the Indian subcontinent and the far East area of the world which came to be known as forcefully diaspora. The very business of supplying African slaves to the great extent into the hands of the capitalists for the great source of their income. It is told by the African historians that Europeans captured or bought a number of African slaves from the West Africa and sold them into the slave trades of Europe and Americas in the 15th century. The very system of Atlantic slave trade was going on till the 19th century while Arab slave trade was continued till the 20th century. Even the latest slavery trade known as, 'Pocket Slavery' is going on into the 21st century as anyone can see of Haratin in Mauritania. This Slavery Trade system of migration of the people can be categorized into the forced migration of diaspora. The result of such migration originated with the loss of African economy because a large number of young population from their communities was taken away out of Africa that's why the economy of Africa destroyed and devastated. In this way, African societies disrupted with its sensibilities of dispersion. Further, it was studied and found that some black communities were lost after being engaged with non-blacks, especially in the culture of the non-blacks. Their descendants came to be mixed up with the culture of the converted communities which resulted into the loss of African culture. Some black and non- black communities created by the descendants of African Slaves in the Americas, Europe and Asia have been surviving in the modern time which can be perceived well in the modern history. The convergence of multiple ethnic groups in America created multi- ethnic societies known as Black Americans or Afro-Americans society. It is seen that most of the people in the Central and South America are descended from European, Amerindian and African ancestry. Nearly half population of Brazil was calculated as the descendants from African slaves in 1888 and the variations of the physical appearances extend across a broad range while in the United States there was a greater European Colonies of African enslaved society, especially in the Northern Tier. Also there, one can find a great example of intermarriages in colonial Virginia, and other forms of racial mixing up population of African enslaved, during the slave trade and post-Civil War years. The migration of Africans voluntarily or involuntarily came to this extent that In South Africa, there passed an anti-miscegenation laws in the late 19th century after the reconstruction era of South Africa which maintained some particular differences between the racial groups and ethnic groups. It is found by the intellectuals that most of the Southern sectors of Africa adopted 'one drop rule' to institutionalize racial seclusion. The very law defined and recorded a major population of South Africa from the discernible African ancestry as black, even if the majority is white or Native American ancestry. The result of this law was very bad which can be considered as the loss of Native identity of the identified groups of people who were classified only as black either they were mixed up population.

Voluntary and involuntary, both types of migrations are found in the history of African continents and both diasporic societies have been playing their major role in the growth of cultural studies of African societies. For the support of such argument we can see the concept of expansion in the views of Harris- "The African diaspora concept subsumes the following: the global dispersion (voluntary and involuntary) of Africans throughout history; the emergence of a cultural identity abroad based on origin and social condition; and psychological or physical return to the homeland, Africa. Thus viewed, the African Diaspora assumes the character of a dynamic, continuous and complex phenomenon stretching across time, geography, class and gender." (Harris, 3-4) From the Spanish exploration and colonial rules of the United States of America, African population participated both as voluntary expeditions or involuntary labour population in the development of American economy. Many more Africans are found converted into Christian Catholicism. For instance, Juan Garrido, an African conquistador, born in the kingdom of Kongo, crossed the Atlantic continent for the sake of freedom and reached Portugal in the 1510s, especially Hispaniola in 1502, and participated in the siege of Tenochtitlan by the end of 1519, which resulted in him to be converted into Catholicism. There, he married and settled in Mexico City. The examples of Africans travels are recorded before the travels of Columbus in Asia and Europe. In the beginning of the late of the twentieth century, a large number of Africans began to emigrate to Europe and the United States of America constituting new African diaspora communities not directly connected with the slave trade but the interest of their life-setting. Many literary scholars have challenged the social and political conventions of the African Diaspora claiming it as the dispersion of the black people or the movement of liberation which opposes the social implications of racial discrimination. Tony Martin is not of the view to use the term African diaspora as he states: "…the term *diaspora* be deleted from our vocabulary, because the term *African diaspora* reinforces a tendency among those writing our history to see the history of African people always in terms of parallels in white history…. We should do away with the expression *African diaspora* because we are not Jews. Let us use some other terminology." (Martin, 441) It is seen that the positions of African diaspora or their descendants suffer a lot to reclaim power over their lives, living abroad through voluntary migration, or the cultural and political conventions and the practices. It also implies cultural conventions of resistance community with the similar objectives of the globalization of the diasporic culture. W. E. B. Dubois and Robin Kelley like scholars have argued the fact that black politics is more responsible for the growth of African diasporas than the labels of ethnicity and race, or the degrees of skin hue. In their views, the struggle against world historical process of racial colonization, capitalization and western domination of the African beings has a great concerning point of the black diaspora. Black or African diaspora is not limited to the United States of America but it is epitomized by the British sociologists Stuart Hall and Paul Gilroy as the evolution of the British cultural studies toward a greater attention to identity issues from the mid 1970s to 1980s onwards. Furthermore, African study and diaspora thirst have given more clues about African diaspora or the black diaspora. As well as it was researched by the scholars, they found that black diaspora has played its greater role to bring modernity and post-modernity in history of English literature. In this reference, one can study the thought of Stuart Hall- "The diaspora experience as I intend it here is defined, not by essence or purity but by the recognition of a necessary heterogeneity and diversity by a conception of "identity" which lives with and through, not despite, difference by hybridity. Diaspora identities are those which are constantly producing and reproducing themselves anew, through transformation and difference." (Hall, 235) The great historians like Patrick Manning have also accepted the fact that black community or black diaspora has created a new world of modernity that must be studied in the context cultural development. Paul Gilroy like historians raises the suppression of black community and asserted that they created ideals of nations and gave it a new term 'cultural insiderism', used by the nations to differentiate the deserving and undeserving category of diaspora and acquires a sense of ethnic differences as mentioned in his *The Black Atlantic*. Such type of scholars have assigned the importance of African diasporic contributions and offered a comprehensive study of global history of diasporic community. The latest views on African diaspora can be taken as the culture of dislocation which is well discussed

and defined by Richard Iton. Iton considers about African diaspora focusing attention on the ruptures with "…the Atlantic slave trade and Middle Passage, notions of dispersal and the cycle of retaining, redeeming, refusing and retrieving Africa." (Iton, 199) This is the conventional framework of African diaspora which is criticized analytically by Iton. He does not like such type of frameworks of diaspora, for he thinks such type of concept is dangerous, because it presumes that Diaspora exists outside of Africa. In his concept of studies, one can find a type of suggestion as: "the impossibility of settlement that co-relates throughout the modern period with the cluster of disturbances that trouble not only the physically dispersed but to those who move without traveling." (Iton, 199-200) In his discussion, he agrees with the thought that this modern matrix of strange spaces renders notions of black citizenship fanciful but undesirability of the identity. He argues to his readers for the black diaspora that is considered for the: "citizenship in a state of statelessness place whereby colonial cites and narratives de- link geography and power putting all space into a play." (Iton, 199-200) For him, "Diaspora's potential is represented by a re-discursive albeit agonistic field of play that might de-naturalize the hegemonic representations of modernity as unencumbered and self generation and bring into clear view its repressed, colonial subscript." (Iton, 201)

It is, if not impossible, then too much difficult to estimate the African diasporic population from all four sides of the world yet for the best of our knowledge the largest African populations are found in Brazil, United States, Haiti, Columbia, France, United Kingdom and so many countries. According to the latest estimation, nearly 5.6 million African people are living in Brazil. The United States included 4.7 million population of African diaspora. In this series, Haiti has 8.8 million, Columbia included 5.0 million, France has approximately 5.5 million, while United Kingdom has 2.5 million of African populations of diaspora. Again one can say that this calculation is not enough to study African diaspora at the last point of studies. It is reported that there are a number of communities that have been descended from African ancestry, willingly or forcefully, either they belong to slave trade or to the other professions of the livelihood in the world. They are known with the different names as Siddi, Sheedi, Makarani and Shri Lankan Kafirs etc. In some sects of particular identifications, they have got very prominency such as Jamal-ud Din Yaqut, Hoshu Sheedi or the Rulers of Janjira State. It is also found that the Mauritian creole people belong to the African slave category and in due to some respect, they are similar to those who are living in the United States of America. Some other Pan- Africans think that the groups of people like Negritos, Malay Peninsula, New Guinea (Popuans), Andamanese e.t.c., are also diasporic but most of these claims are also rejected by the mainstream of the ethnologists claiming them as pseudo-science and pseudo-anthropology of diaspora. They claim that Andamanese like groups are a part of network of auto-formation migrants or ethnic groups present in South Asia that culminated in the Australian Aboriginals rather than African community.

African diaspora has played its prominent roles in many fields as being fragmented and separated by land and water, these people maintained their role modal status, even in music also. Such type of diasporic contribution has been perceived well by Paul Gilroy who gave it a new term as *The Black Atlantic*. He asserts: "there is no reason his privileging of the *Black Atlantic*…. Should necessarily silence other diasporic perspective….If diaspora is to be something about which one could write a history it would be something more than the name for a site of multiple displacements and reconstitutions of identity.…black people have shared a great history rooted in oppressions of the diasporic people who are displayed in Black genres such as rap and reggae." (Gilroy, 17) This concept of African diaspora linkages within the black diaspora formulated a new identity through the music they produced. It allows all the consumers of music and artists to be attracted towards and from different cultures to combine and create a kind of experiences that reaches to most of the people across the world. At last, one can assess the African diasporic Identity in the words of Daniel and Jonathan Boyarin. They state that Diasporic cultural identity teaches us that cultures are not preserved by being protected from 'mixing' but probably can only continue to exist as a product of such mixing. Cultures, as well as identities, are constantly being remade…. diasporic identity is a disaggregated identity.

References;

Beachey, R. W. *The African Diaspora and East Africa: An inaugural lecture … at Makerere University*, Oxford University Press, Naurobi, July 31st, 1965.
Gilroy, Paul. *The Black Atlantic: Modernity and Double Consciousness.* Harward University Press, USA, 1993. print
Hall, Stuart. "Cultural Identity and Diaspora" in J. Rutherford (ed) *Identity: Community, Culture, Difference*. London Lawrence &Wishart Ltd, 1998. print
Harris, Joseph E. "Introduction". (2nd ed.), *Global Dimensions of the African Diaspora. (2nd ed.)* Harris. Howard University Press, Washington DC. 1993. print
Iton, Richard. *In Search of the Black Fantastic: Politics and Popular Culture in the Post Civil Rights Era;* Oxford University Press, New York. 2010. print
Martin, Tony. "Garvey and Scatterd Africa," in Harris (2nd ed.), *Global Dimensions of the African Diaspora. (2nd ed.)* Joseph E. Harris. Howard University Press, Washington DC 1993. print
http.org/wiki/African Diaspora.

Sunil Kumar Dwivedi
Research Scholar
Dr. R. M. L. Avadh University,
Ayodhya
Mob. 9453515381

A Study of Selected Physiological And Psychological Parameters In Male Handball

29

Dr Dheeraj Sangwan, Dr. Rambir Sing

Introduction

Handball is an ideal synthesis of the three fundamental athletic disciplines of running, jumping and throwing. Therefore it is not only a purely competitive sport but also a fine sport to be taken up with advantage by many for purposes of training and health. Handball is a fast-flowing game. The aim is to throw the ball into the opponent's goal as many times as possible within two 30-minute periods of play. It requires quick thinking and lightning reflexes as players are only allowed three steps with the ball, with a three second time limit. The players work together, passing and dribbling the ball up the court in an attempt to score a goal. The fast pace of the game results in many shots being taken, and it is not unusual for more than 20 goals per side to be scored in game. To ensure everything runs smoothly, there are 4 officials per match, the timekeeper, scorekeeper and two referees who stay close to the action. The sport requires strength, speed and agility and has been compared to being a cross between football and basketball, although the players (other than the goalkeeper) are not permitted to kick the ball. Handball is one of the fastest indoor sports. It has developed from a number of similar games, which were in existence at the start of the 20th century.

Research in the field of sports and games had proved that the future performance of an individual or team could be predicted through the analysis of certain variables, which are found to be the basis for total performance. Among many factors the following variables such as anthropometrical, physical, physiological, and psychological and skill performance that decide the playing ability of an individual are more important. Team handball is one of the team based sports and it is played both men and women throughout the world. Handball is growing game in India especially in north and south India.

In India every year Senior National Handball tournament for both men and women are organized by Handball federation of India.Handball is often referred to as Olympic handball so as not to be confused with other completely different versions of handball' which involve the use of hitting a small ball with the hand in a walled court.

Health and fitness benefits of playing handball

Playing handball has a number of health and fitness benefits, including the following:

- Improves arm muscles and upper body strength.
- Develops agility of hands and feet, with sudden changes of pace and direction required.
- Boosts the body's flexibility.
- Improves mental focus and self-confidence.
- Provides the body with a good cardiovascular workout, feeding more

Physiological Attributes of a Handball Player

Body Composition

Coaches and athletes today are acutely aware of the importance of achieving and maintaining optimal body weight for peak performance in sports. Appropriate size, build, and body composition are critical to success in almost all athletic endeavours. Compare the specific performance requirements of the 152-cm, 45- kg (5ft, 100-1b) Olympic gymnast and those of the 206-cm, 147-kg (6-ft 9-1n., 325-lb) defensive lineman in professional football. Body shape, size, and composition are largely predetermined by the genes inherited from one's parents. But this doesn't mean athletes should dismiss these components of their physical profile, feeling that nothing can be done to change or improve them.

Although size and body build can be altered only slightly, body composition can change substantially with diet and exercise. Resistance training can substantially increase muscle mass, and a sound diet combined with vigorous exercise can significantly decrease body fat. Such changes can be of major importance to achieving optimal athletic performance.

Each athlete's build is a unique combination of these three components. Athletes in certain sports usually exhibit a predominance of one component over the other two. The bodybuilder exhibits primarily muscularity, the 218-cm (7-ft 2in.) the basketball center who weighs only 82 kg (180 lbs) exhibits linearity, and the sumo wrestler exhibits fatness.

Most athletes are more balanced between muscularity and linearity, but muscularity tends to dominate in male athletes? Body size refers to the height and mass (weight) of an individual. Body size is often categorized as short or tail, large or small, heavy or light. Distinctions in these categories can vary depending on the specific performance requirements, so body size must be considered relative to the specific sport, the athlete's position, or the type of event. For example, among men a height of 190.5 cm (6ft 3 in.) would be short for a professional basketball player but tail for a longdistance runner. Similarly, in professional football a weight of 104 kg (230 Ib) would be heavy for a quarterback, just right for a line-backer, but light for a defensive end.

Body composition refers to the body's chemical composition. The first two divide the body into its various chemical or anatomical components; the last two

simplify body composition into two components. The major difference between these last two models is the terminology lean body mass and fat free mass. Behnke originally proposed the concept of lean body mass, defined to include fat free mass and essential fat—the amount of fat necessary' for' survival. Although this model is conceptually sound, it presents measurement problems: It isn‘t possible to differentiate between essential and nonessential fat. Consequently, most scientists have adopted the two component model that includes fat mass and fat-free mass, which is the model used in this book. Fat mass is often discussed in terms of relative body fat, which is the percentage of the total body mass that is composed of fat. Fat-free mass simply refers to all body tissue that is not fat.

Heart Rate

The heart rate (HR) is one of the simplest and most Informative of the cardiovascular parameters. Measuring it involves simply taking the subject's pulse, usually at the radial or carotid site. Heart rate reflects the amount of work the heart must do to meet the increased demands of the body when engaged in activity. To understand this, we must compare the heart rate at rest and during exercise.

Resting Heart Rate

Resting heart rate averages 60 to 80 beats/min. In middle-aged, unconditioned, sedentary individuals, the resting rate can exceed 100 beats/min. In highly conditioned, endurance trained athletes; resting rates in the range of 28 to 40 beats/min have been reported. Your resting heart rate typically decreases with age; it is also affected by environmental factors; for e.g; it increases with extremes in temperature and altitude.

Before the start of exercise, your pre-exercise heart rate usually increases well above normal resting values. This is called an anticipatory response. This response is mediated through release of the neurotransmitter norepinephrine from your sympathetic nervous system and the hormone epinephrine from your adrenal glands. Vagal tone probably also decreases. Because the pre-exercise heart rate is elevated, reliable estimates of actual resting heart rate should tie made only under conditions of total relaxation, such as early in the morning before rising from a restful night‘s sleep. Pre-exercise heart rates should not be used as estimates of resting heart rate.

Resting Metabolic Rate (Basal metabolic rate)

The rate at which your body uses energy is your metabolic rate. As noted earlier, estimates of energy expenditure during rest and exercise are based on measurement of whole-body oxygen consumption and its caloric equivalent. At rest, an average person consumes about 0.3 L O2/min. This equals 18 L/h or 432 L/day. Physical activity, no matter what type, burns calories. If you walked from the parking lot to your desk, or went to the gym, you burned calories. Because the amount of energy needed to do an activity is directly proportional to the weight that needs to be moved, the more you weigh, the more calories you burn. Though it may seem counter-intuitive, increasing the duration of the activity will burn more calories than performing the activity more vigorously for the same amount of time. Your basal metabolic rate is directly related to your fat-free mass and is generally reported in kilocalories per kilogram of fatfree mass per minute (kcal• kg-l• min-l). The more fat-free mass, the more total calories expended in a day. Because women tend to have a greater fat mass than men, women tend to have lower BMRs than men of similar weight.

Your body's surface area is equally important. The more surface area you have, the more heat loss occurs across your skin, which raises your BMR because more energy is needed to maintain your body temperature. For this reason, the BMR is also often reported in kilocalories per square meter of body surface area per hour (kcal • m-2 • h-1). Because we are discussing daily energy expenditure, we've opted for a simpler unit: kcal/day.

Many other factors which affect Basal Metabolic Rate (BMR) are :-

- Age: BMR gradually decreases with increasing age, generally due to a decrease in fat free mass.
- Body temperature: BMR increases with increasing temperature
- Stress: Stress increase activity of the sympathetic nervous system, which increases the basal metabolic rate.
- Hormones: Thyroxine from the Thyroid from the adrenal medulla both increases the BMR.

Instead of basal metabolic rate, most researcher now use the term resting metabolic rate, because most measurements follow the same conditions required for measuring BMR but don't require the individual to sleep over in the facility. The BMR may vary between 1,200 and 2,400 kcal/day. But the average total metabolic rate of an individual engaged in normal daily handball activity range from 1,800 to 3,000 kcal.(The energy expenditure for very large athletes engaged in intense daily training can exceed 10,000 kcal/day. Psychological Attributes of a Handball Player

Psychological demands are a significant part of the game. It has been said that the psychological area is as important as the technical side. All the talent a player is having can be irrelevant without proper mental stability. There are six area of the game that forms key psychological components that players need in order to improve or complete themselves as handball player.

o Reboundability o
Nervousness o
Concentration ability o
Confidence o
Motivation

Reboundability

With "Reboundability" or skill at mentally bouncing back from setbacks and mistakes. Mental toughness depends on ability to quickly leave your mistakes and failures behind you.

Hanging onto players mistakes will get him into big trouble, performance-wise.Athletes who dwell on their mistakes while the competition continues, end up making more.

Nervousness

Without the ability to stay calm in the clutch, an athlete will always underachieve. Peak performance demands that you are relaxed once the performance begins. While a little nervousness is critical for getting "up" for a game/match/race and performing at your best, ("good nervousness") too much nerves ("bad nervousness") will tighten your muscles and send your performance down the tubes.

Concentration Ability

With your concentration ability in every sport, your ability to focus on what's important and block out everything else is one of the primary keys to performance excellence. Poor concentration is the major reason why athletes choke and get stuck in performance slumps. Getting psyched out or intimidated is a direct result of concentrating on the wrong things.

Confidence

With your level of confidence and the factors that affect confidence; One characteristic of the mentally tough athlete is he/she possesses a confidence level that seems to be unshaken by setbacks and failures. Under the pressure of competition, low confidence will neutralize natural ability, hard work and talent. Similarly, high confidence will enhance an athlete's training and godgiven talents, lifting their performance to the next level.

Motivation

Motivation is the fuel that will drive your training to a successful completion and the accomplishment of your goals. Without adequate motivation athletes get stuck having "permanent potential." Without motivation you won't put in the work necessary to become a winner. Your motivation allows you to pick yourself up after a setback and keep going.

literature

The review of literature is a very important step in research process. It's a process of reviewing all the works done on particular topic. The main purpose of this is to bringing together all relevant and important works done on the topic, which includes the methodology used and findings of these studies. Review of literature also helps in avoiding the duplication of research and better understanding of the research problem. In this chapter, researcher has consulted various sources of information for finding similar studies on ―Physiological, anthropometrical and psychological parameters in male handball players‖.The relevant studies found from various sources, which the researcher has come across, are below. Assessed the anthropometric characteristics, including age, standing stature, body mass

and body mass index (BMI) in handball players who participated in the 2013 Men's Handball World Championships. Secondly, the objective was to identify the possible differences in these parameters in terms of individual playing positions (goalkeeper, back, center back, wing, line player). layers in G1 had the highest standing stature and body mass, while players in G6 had the lowest age and body mass values. The backs and line players were the tallest. In addition, the measurement of body mass showed that the line players had the highest body mass and BMI values. In conclusion, this study presented anthropometric data that differentiated levels of success in male handball teams playing in the 2013 world championships. This information should serve as a reference for the average standing stature, body mass, and BMI of handball players for particular positions at the professional level. The present study was aimed to identify the mental toughness of players of five different contact sports. The contact sports were handball, football, wrestling, boxing and judo. 50 players of each five games were selected who have competed at inter- college levels. They were between the age levels of 19 to 27 years. Todetermine level of Mental Toughness among the subjects, Mental Toughness battery constructed by Goldberg et al. (1980) was administered. One way Analysis of Variance (ANOVA) was employed to find out the intragroup differences. Test of mental toughness consists with 30 items with five sub scales. The investigator measured all the sub variables with questionnaire than find out the differences of total mental toughness of the players of different five contact games. The findings show that significant differences were found among the players of five different contact sports groups on the variable of Mental Toughness.

It‘s compared anthropometric data and physical performance characteristics between different playing positions in professional team handball. Furthermore, a comparison between performance profiles of first and second division players was made. Thirty- four male professional handball players were recruited. Measurement of heart rates (HRs) during official games anthropometric data, sprint ability, jumping performance, throwing velocity, and endurance performance were determined and analysed with respect to playing position. In a further step, additional 31 players from German second division were recruited to compare their profile on each position with profile of the first division players. Players of wings and backs positions had highest average HRs during game, best times in 30-m sprint tests, best jumping performance, and best anaerobic endurance performance. Similarly, backs and wings reached highest throwing velocities. Regarding anthropometric characteristics, wings were players with lowest body height and weight, whereas pivots were heaviest players and players with highest body mass index (BMI). We further found that wings from first division had a better sprint performance compared with wings from second division. Furthermore, pivots from first division had higher BMI and drop jump performance. Our data demonstrated a close relationship of anthropometric data, physical performance characteristic, and the playing position of handball. These information might be helpful for the assessment and evaluation of talents and may help to develop and optimize position specific training regimes and identification of talents.

In investigated physical and mental fitness of Iranian men's handball national players. Samples of the research were 15 of Iranian men's handball national players. Selected physical fitness tests (such as: sit and reach, VO2max, power, strength, speed, reaction time, agility) and OMSAT3 questionnaire used for measure physical and mental fitness respectively. The results of Pearson correlation showed that there was no significant relation between the factors of physical fitness and mental preparation in athletes ($p > 0.05$). Physical fitness scores were lower than optimal level whereas they had a very good mental preparation. Although the research subjects had low physical fitness, but they achieved considerable results in Asian games. Therefore, it seems that high psychological preparedness in athletes may be effective in earning such a great position.

Findings and discussion

For this study reviewed result was adopted and studies related to shoulder injuries in adolescents elite handball players were search and collected through online data bases. Studies in the last decade from 2011-2015 were critically reviewed and mentioned here. In this chapter, we discuss the result of selected. The difference in physical performance between players with better vs. worse estimated training status were all almost certainly trivial. The present results highlight the limitation of monthly measures of resting HR,

HRV and perceived mood and fatigue for predicting in-season changes in physical performance in highly-trained adolescent handball players. This suggests that more frequent monitoring might be required, and/or that other markers might need to be considered.

Players of wings and backs positions had highest average HRs during game, best times in 30-m sprint tests, best jumping performance, and best anaerobic endurance performance. Similarly, backs and wings reached highest throwing velocities. Regarding anthropometric characteristics, wings were players with lowest body height and weight, whereas pivots were heaviest players and players with highest body mass index (BMI). We further found that wings from first

division had a better sprint performance compared with wings from second division. Furthermore, pivots from first division had higher BMI and drop jump performance. Our data demonstrated a close relationship of anthropometric data, physical performance characteristic, and the playing position of handball. These information might be helpful for the assessment and evaluation of talents and may help to develop and optimize position specific training regimes and identification of talents.

Juniors had a very likely lower body height, mass, and fat-free mass and likely lower 1RM bench press and ISRT performance. Contrary, juniors had a likely to very likely superior speed, COD, and SJ and most likely superior core strength- endurance performance. While speed, COD, and jump capacities were large to very large correlated in juniors, they were mostly unclear correlated in adults. Overall explained variance among speed, COD, and jump capacities was likely higher in juniors (51%) than adults (17%).

An improvement is observed with aging, to most important parameters for the handball player, such as improvement in anthropometric and somatotype characteristics, jumping ability (CMJ, CMJ with arm and SJ) and increased power.

Conclusion

The present data suggest that monthly measures of resting HR, HRV and perceived mood and fatigue during the season may not be sensitive enough to predict changes in physical performance in non-overreached highly-trained adolescent handball players.

The present study confirmed a strong relation between playing position, anthropometric data, activity during games, and conditional factors. these findings might be very helpful for the assessment and evaluation of talents and can help to develop and optimize position trainings regimes. Therefore, a practical recommendation for coaches might be to organize training contents of physical performance more specific for each position.

This study shows that differences in anthropometric characteristics and physical capacities, and also in relationships among physical capacities, are evident between junior and adult top-level handball players, indicating different physical needs to play handball

The observed decline in the amount of technical playing actions during the second half period indicates that technical fatigue and impaired physical performance may occur at least in some players.

Substantial positional differences in the physical demands were observed. In addition, body anthropometry seems to play a crucial role for playing performance at the various playing positions. It is concluded that there are differences between age groups, which between them include anthropometric characteristics greater jumping ability in different variants is around 22- 24% for adulthood; while power makes around 30%. It increased over time flexibility stands; and a sub-maximal heart rate more efficient along age.

Bibliography

Books

- Wilmore, Jack H., (1988). Physiology of Sports and Exercise David L. Costill.—2 nd ed. Page no 223, 138.

JOURNALS

- Belka, J., Hulka, K., Safar, M., Weisser, R., & Samcova, A. (2014). Analyses of Time-Motion And Heart Rate In Elite Female Players (U19) During Competitive Handball Matches. Kinesiology, 46(1).
- Buchheit, M. (2015). Sensitivity of monthly heart rate and psychometric measures for monitoring physical performance in highly trained young handball players. International journal of sports medicine, 36(05), 351-356.
- Chaouachi, A., Brughelli, M., Levin, G., Boudhina, N. B. B., Cronin, J., & Chamari, K. (2009). Anthropometric, physiological and performance characteristics of elite team-handball players. Journal of sports sciences, 27(2), 151-157.

- Ghobadi, H., Rajabi, H., Farzad, B., Bayati, M., & Jeffreys, I. (2013). Anthropometry of world-class elite handball players according to the playing position: reports from men's handball world championship 2013. Journal of human kinetics, 39(1), 213-220.
- Hosseini, S. A., & Besharat, M. A. (2010). Relation of resilience whit sport achievement and mental health in a sample of athletes. Procedia-Social and Behavioral Sciences, 5, 633-638. Karcher, C., & Buchheit, M. (2014). Oncourt demands of elite handball, with special reference to playing positions. Sports medicine, 44(6), 797-814.
- Kaur, M. (2017). Analysis of mental toughness among the players of five different contact sports groups. International Journal of Physical Education, Sports and Health 2017; 4(4): 451-452. 68
- Krüger, K., Pilat, C., Ückert, K., Frech, T., & Mooren, F. C. (2014). Physical performance profile of handball players is related to playing position and playing class. The Journal of Strength & Conditioning Research, 28(1), 117-125.
- Milanese, C., Piscitelli, F., Lampis, C., & Zancanaro, C. (2011). Anthropometry and body composition of female handball players according to competitive level or the playing position. Journal of Sports Sciences, 29(12), 1301-1309.

Dr Dheeraj Sangwan
Assistant professor
Ahir college Rewari
Dr. Rambir Singh
Assistant professor
KLP college Rewari

30

Ensuring Safe Work Places for Women-Issues and Challenges

Dr Savita Bhagat

Abstract

Women have always been at the receiving end in society in almost every sphere of life, be it economic, political, social or cultural. In the recent past all over the country, gruesome incidents of violence against women have been reported day in and day out by the media.Our womenfolk whether in the womb or nearing the tomb are not treated equally and with equal respect and dignity is a fact that can no longer be ignored. From missing millions due to sex selective abortions to early mortality in childhood to gaps in enrolments to scaling up in schools at various stages on account of a girl child being considered a liability by the family and by the society at large are serious issues which are intertwined with sexual harassment and need to be researched extensively and deeply. It seems the whole country has become highly unsafe for women. Education is an important pillar on which the empowerment of women rests since it provides the wherewithal for economic independence and enlightenment of women.

Unfortunately, girl students and women teachers also don't feel safe in these very institutions Young women who move out for studies and work are facing increased threat of sexual harassment.Deeply entrenched values of patriarchy and injustice are all pervasive in the society.The falling proportion of women in the workforce is a serious matter impacting the development of the economy and wellbeing of the women and needs to be investigated. The findings of the paper dependent on secondary data and review of earlier studies suggest that gender sensitivity needs to be inculcated right from the beginning in families and in schools and colleges curriculum along with that law and order machinery needs to be strengthened to bring improvement in the proper implementation of the laws.

Key words-Women safety,Patriarchy, work places

Introduction

Sexual vulnerability of women since ancient times has rendered the status of women in society inferior to that of men. They are not considered socially equal to men. And that inequality is reflected in various other aspects of the social system and organization. Economically, politically and culturally women have not got a just treatment. They are considered as objects to be possessed by men for their sexual gratification. Violence for possessing women and violence against them for not following the dictates of the men folk has been a recurring theme since ages. Harassment of women takes place in many ways. It is not only limited to physical abuse or mental harassment but when women are not given equal treatment in the family or resources are diverted for the education and well- being of only male members, it is also a manifestation of harassment and violence.

That nearly one half of our population, i.e., our womenfolk whether in the womb or nearing the tomb are not treated equally and with equal respect and dignity is a fact that can no longer be ignored. From missing millions due to sex selective abortions to early mortality in childhood to gaps in enrolments to scaling up in schools at various stages on account of a girl child being considered a liability by the family and by the society at large are serious issues which are intertwined with sexual harassment and need to be researched extensively and deeply.

With the onset of modernization and spread of education, the more egalitarian and humane treatment of all human beings should have been the natural consequence. But unfortunately there seems to be no end in sight to crimes and violence against women in India. Rather violence against women has increased manifold in the last few years. Feminist writers Raja Annie et.al have mentioned in a paper (EPW, 2014) that the statistics related to crimes against women reveal 68 rapes (3 every hour) and 23 dowry deaths per day (almost 1 every hour). Over 2.5 lakh cases of crimes against women have been recorded every year. The conviction rates on the other hand continue to remain very low- at 24percent for rape cases, 32percent for dowry deaths and a paltry 21.3perent for all crimes against women. This is a severe indictment of the failure of the criminal justice system to address the issue of crimes against women.In a report of the Times of India dated Aug11,2017, stalking in five high profile cases led to the murder of the victims. Priya Darshini Matto, a law student in Delhi University was raped and murdered in 1996 by her stalker who was the son of an IPS officer.Radhika Tanwar was shot dead by her stalker who tried to strike up a conversation with her and on being rejected took his

revenge. Airhostess Geetika Sharma committed suicide after a prolonged stalking by a politician.

These three or four illustrations have been pointed out just to bring home what is known as harassment in terms of eve-teasing and stalking can turn to assault and violence with its horrible consequences for the victims and their families.

Why and How ofSexual Harassment and Violence

The onset of the modern way of life has led to the growth and proliferation of cities, big and small, throughout the world. Life in cities where the number of people is much larger than in a village tends to be a source of freedom and emancipation as the narrow confines of caste; community and religion which tie down people in a society like ours are absent here. Vishwanth and Mehrotra (EPW, 2007)shared that a city needs to be imagined as a space occupied by a diverse set of people with diverse needs and diverse aspirations. The quality of a city has to be judged by what it offers to its residents to move around and to work with dignity and safety. But our city spaces and public places are not gender neutral. According to authors in a study of Delhi, they reported that men can be seen out in most areas and during most times. Women are legitimately allowed to use these spaces when they have a purpose like their way to work or study, dropping or picking up children walking in a park or shopping and that too at certain times. Obviously, it is the fear of harassment and violence that restrict women's movement in urban spaces. There is a palpable and evident inequality and difference in the way men and women access and use public spaces.The violence against them also impinges on their constitutional rights under Article 14, 15 and 21 to live with dignity and honor.

When they commute from their homes to their colleges and institutes, they use public transport and there also they face harassment and violence in one form or the other as is glaringly borne out by the Nirbhaya case in Delhi.

Now moving on to sexual harassment at workplace, the recent # MeToo movement is ample proof of how endemic the problem is whether it is the film industry, journalism or the art and the corporate world. The movement has also proved that the problem is not confined to any specific strata as even prominent names like Anurag kashyap ,M. J Akbar, Nana Patekar, Jatin Das, Alok Nath and Suhel Seth among others have been accused of sexual misconduct by a number of women. In fact, no workplace, no institution, public or private, is free from this malaise.

All this puts a big question mark on the right of women to move freely and to go out to work without fear and with dignity and enjoy all the freedoms that are taken by the male counterparts for granted. The recent spate of incidents of violence against women inside the institutions, at public places and while travelling to and from their homes has left no ambiguity in the notion that society does not treat both the sexes equally.

Public places are viewed and used differently by men and women. It is not only that violence and harassment is faced by women at public places or outside home. The home and the private spaces have also been recognised as the violence and harassment inflicting places. Domestic violence is known to cause more death and disability among women and girls aged between 15 and 44 worldwide, than cancer, malaria, traffic accidents and war (Vishwanath and Mehortra,2007).

According to Raja Annie et.al (EPW,2014), the clothes women wear, and thepresence of women in public spaces, “modern values of freedom” and the “free association of young women and men” are conceived as the causes of rising sexual crimes.

The popular media and bollywood movies also set a wrong trend of depicting sexual harassment in a very casual an acceptable manner. In a paper Gupta (EPW, 2010) has critiqued the then released movie Three Idiots from a gender perspective and has cited language and incidents from the movie where rape is exploited to create humour. Films like 'Jab We Met' and '3 Idiots' are similar in their use of women's sexual vulnerability to create sensation and humour. Dialogues like 'a single girl is like an open locker' and 'she is a chick, where did you find her' are used without any sensitivity to women. Hindi language words were used deliberately for discussing the female body so as to evoke loud laughter in the cinema halls. The film succeeded in teaching young boys that rape is entertainment and female body is comic material. Such influences distort the psyche of young boys and girls.

In another article the famous economist Swaminatahn Ankileshawr Aiyer (2012)has mentioned that it is not the behaviour of villains in the films that incites violence, rather the terrible fact is that film heroes have pestered, stalked and forced their unwanted attention on heroines in a thousand films and ended up getting the girl. This gives a most outrageous message that a girl's 'no' actually means 'yes'. He further shares that hit songs glorify harassment and stalking compounds the problem. These are perpetuated in memory and social attitudes through repeated humming of the songs and viewing of videos.In a paper Sandler (1986) has

mentioned that, despite laws and institutional mechanism to deal with it, sexual harassment is a serious problem for women on the campuses. Unwanted sexual attention has a chilling effect on the learning environment. Even those women who are not harassed may start avoiding classes and stop their studies. The author has talked not only about the issues of sexual harassment at the hands of fellow students but also by the professors and teacher as they have a hierarchal advantage and women students are not in a position to say a clear and resounding no as their grades and evaluations are linked to their acquiescence.

In a paper Eswarana and Pooniah(EPW,2013) based on the report of a Panel Discussion held on Sexual Violence in JNU, pointed out the most complex is the violence faced by students at the hands of guides and supervisors where politics of hierarchy plays out to the disadvantage of women students. It has been shared in the paper that no woman student who complained against the excesses of the faculty member in the GSCASH could complete her education. Students and teachers of a prestigious university like JNU have faced violence at the hands of police while voicing protest against sexual harassment. The article has cited real cases when sexual violence was used as a tactic to control and quash dissent.

In an article in the EPW 1987**,** the account of the harassment women students faced in the Madras Law College is truly revealing. Obscene writings and pictures were found scribbled on the benches by the girl students. When the women protested, they were told to remain quite for 'boys will after all be boys' and that it was unbecoming for women to protest openly and it showed their lack of morals. When women students collectively decided to boycott the classes, the authorities came down heavily on them. Individually they were threatened, show cause notices were issued and letters were sent to their parents to control their daughters' wayward ways. That conspiracy of silence is still prevalent in many colleges and institutions which don't want to sully their name by spilling the beans in the open.

The whole thing ultimately boils down to the brazen patriarchy that is still prevalent in society asChowdhary (EPW, 2013)has shared, men in patriarchal societies take their power for granted and certain type of beauty and dressing up of women is considered as an act of aggression by men which challenges and is perceived as threatening their masculinity. Men identify masculinity with control and when women repudiate men's sexual advances, sexual assault is the way for them to take revenge. Being manly means to be ready to be violent which means putting women forcibly 'in their place'. Male gender role generates violence by castigating men if they are not violent and by rewarding them with honor if they are. The author further shares that it is only feminists who want sexual violence to be culpable in a patriarchal system whereas for men the show of violence is considered a very masculine characteristic. It is this male mentality that eggs on conservative and patriarchal elements to blame women themselves for violence against them.

Resolution of the issue- Joint Responsibility of all the stakeholders

The problem of not treating women equally is very deep rooted in our culture and society. As a result, no place is considered safe for women. There is almost always a conspiracy of silence as far as violence committed against women is concerned. Most of the times women don't share such experiences as they have been brought up on a diet of not disclosing such things and at other times if they disclose them, they put their own and their family at risk as the police and administration don't support them. Colleges and other institution don't have adequate help and support system to take care of the girl students' issues and most of the time blame is passed on to their way of dressing up or their loose morals and behaviour.

The onslaught of outside forces was comparatively less when movement of women outside homes was less. But with the moving of women outside homes for getting education in institutions and using public or private transport for commuting has come their exposure to the outside world. But the social structure and people at large have not accepted this change in the role of women. The society is still not ready to see independent and liberated women having their own identity. So the backlash for these independent women chalking out their own path in life is severe in the form of eve-teasing, stalking, acid attacks and rapes.

How to make a dent on the problem is the biggest challenge. Sexual harassment at workplace came into the limelight in India with the issuance of Vishakha Guidlines by the SupremeCourt of India in 1997 and the matter got a further fillip with the coming in to force of the Sexual harassment of Women at Workplace Act (Prevention, Prohibition and Redressal) Act 2013 and the Criminal law Amendment Act, 2013 which is also known as the Nirbhaya Act. As of now the laws related to the sexual harassment of and violence against women are stringent enough but it is their enforcement that leaves much to be desired and for an effective enforcement of these laws, the first and foremost requirement is change in

mindset.

In such a scenario the following few suggestions on the basis of our study can be given to bring abouta measure of gender sensitivity in the society.

- Re-orient the syllabus in educational institutions to inculcate values of gender equality, sensitivity and conduct multi-level campaigns against regressive anti-women practices such as female feticide, dowry and witch hunting, etc. Rather at an early age school children need to operate in a gender sensitive environment.
- Higher educational institutions including professional institutions in the private sector should be instructed to have GSCASH like cells and committees in the institutes so that victims can get justice.
- People have to be proactive and shed their apathetic attitude. Our general attitude of indifference to others' problems has to be shunned. Taking out candle light marches once in a while might help to arouse public sympathy and give some tough time to policy makers but it doesn't curb the recurrence of the crimes. For that to happen people have to take a lead in sensing the trouble timely, bringing it to the notice of the authorities and provide timely guidance to trouble makers and support to victims.
- After the gruesome rape and murder of a girl student in Delhi bus case, several of the city's colleges and working-women's hostels tightened their curfews for female students, citing the "atmosphere in the city" as the reason.As cited by Rohini Pande (Harvard Magazine, 2015), restricting women's ability to move about in the community is likely to have an unintended effect. There is strength in numbers, and for those few women who *are* out at odd hours, curfews increase the risk. Perhaps Breakthrough, the international women's rights organization, had the right idea when it organized mass "Board the Bus" demonstrations to increase visibility: the key to women's safety is not protecting them *indoors* but increasing and even advertising their public presence.
- Another step which is very essential is to break the gender stereotypes and occupational segregation. One example is the training provided to women in self-defense, etiquette and behavioral skills to become cab drivers. Women feel unsafe travelling alone with men drivers. Some companies providing taxi services have started inducting women drivers and this leads to their own empowerment and they in turn help in making the women commuters feel safe.
- Women students should be guided to form their networks and solidarity groups so that they can draw upon each others' strengths. Sharing with each other, moving together and not remaining secretive about their exploitation should be the positive outcomes of these groups. In a proactive approach Delhi police have trained a group of 'Super Students' who on their off days take turns to patrol the area where eve teasing is rampant and they have been trained in self- defense.
- Information about counselors, support groups, lawyers and officials must be also made available. Information about how to file a complaint, where and in which format, should also be disseminated.
- Police patrolling at trouble spots, police in plain clothes, women police stations and mobile police vans on the roads to nab the culprits is very essential to create fear in the minds of eve- teasers.
- Court cases, when they are delayed inordinately, lower the morale of the victims and hurt their self- esteem. Fast track courts that deliver justice easily and immediately and handling the issues in a more gender sensitive way, both by the police and the judiciary, will go a long way in restoring the environment of safety and security for women.
- Create a social movement by engaging different stakeholders in bringing about awareness in the society so that women don't feel ashamed of disclosing the crimes against them and the identity of perpetrators of those crimes.
- Tackle adverse sex ratio. Promote and financially support Women's Studies Centers in all Universities. The objective and goals of setting up these study centers should be to do researches, case studies and promote awareness about gender equity and justice.
- Ensure minimum 10percent of the Plan fund for gender budget. Gender auditing should be strengthened
- Institute and implement a Code of Conduct for the prevention of anti-women derogatory statements by persons in public office. Lately many people occupying responsible offices in the government and in the non – government sector have been making statements which are very derogatory and show the deeply entrenched misogynistic psyche of the society. Such irresponsible utterances by people occupying high positions should be tackled and countered strongly.
- Draft and implement a gender-sensitive Media Code.
- In the address to the nation Prime Minister Narendra

Modi(India Today,2014) had given a call to parents to give equal treatment to sons and daughters and not to put restrictions on the daughters and instead keep a tab on the activities of the sons and on what kind of activities they were indulging in. It has been the argument of all feminists and women activists that dictating girls as to what to wear and what not to wear will not help in reducing the incidents of violence, rather the boys must be given values of how to behave with women. As so powerfully demonstrated by the movie Pink, the boys must learn and accept that woman's No means 'No'.

Conclusion: In a nutshell we can say that the issues women have been facing have changed their nature and shape but their supposed inferiority to men has stayed constant. With great difficulty they have got the right to get education and come out of the four walls of their homes to work and be independent economically. But now the issue of their safety at workplace and in public spaces has cropped up and this is the result of the deep-rootedpatriarchal mindset. The economic development of our nation cannot take place unless women enjoy equal rights—the right to live as well as the right to safety, security and to grow unhindered. For that to happen right from the upbringing of children in the family to their education, the policy framework and the criminal justice system have to be gender sensitive in order to let women realise their full potential and live a life of peace and dignity.

References

1. Aiyer, A. (2012, December 30). Films Sanctify Pestering and Stalking of Women. Retrieved from http://swaminomics.org/films-sanctify-pestering-and-stalking-of-women/
2. Chowdhury, R. (2013). Male Sexual Violence: Thoughts on Engagement. *Economic and Political Weekly, XLVIII* (49).
3. EPW. (2012). An Insidiuos Crime. *Economic and Political Weekly, XLVII* (50).
4. Eswarna, A., and Ponniah, U. (2013). Panel Discussion on Sexual Violence. *Economic and Political Weekly, XLVIII* (10).
5. Gupta, L. (2010). Language,Cinema and State: A Gender Perspective. *Economic and Political Weekly, XLV* (23).
6. Hindustan Times. (2015, Jan 29). Bollywood' Bad Influence' Helps Indian Man Escape Conviction for Stalking Aus Woman. *Hindustan Times* .
7. India Today. (2014, August 15). Narender Modi:the First Feminist. Retrieved from http://indiatoday.intoday in/story/narendra-modi-feminist-independence-day-gender-issues-jashodaben/1/377313.html
8. Khan, S. (2013). Women,Safety and the City of Mumbai. Economic and Political Weekly, XLVIII (36).
9. Pande, R. (2015, January-Febrarury). Keeping Women Safe:Addressing the Root Causes of Violence against Women in South Asia. Harvard Magazine . Cambridge. Retrieved from http://harvardmagazine.com/2015/01/keeping-women-safe
10. Raja,A.,Abidi,A.,Agnihotri,I.,Sangwan,J.,Jyotsna,C., Passah,L,......Thorat,V.(2014). Women's Charter for the 16th Lok Sabha Elections-2014.Economic and Political Weekly.Vol.49 (11).
11. Sandler, R. (1986, October). The Campus Climate Revisited:Chilly for women Faculty Administrators and Gradute Students. Retrieved from http://files.eric.ed.gov/fulltext/ED282462.pdf
12. Student Protest against Eve Teasing. (1987). Economic and Political Weekly .
13. The Times of India. (2015, March 28). Roadside Romeos harass Women. The Times of India
14. The Times of India.(2017,Aug. 11). Stalking: Five Cases that Shook Delhi's Conscience. The Times of India
15. Vishwanath, K.,and Mehrotra,S.(2007). Shall We Go Out? Women's Saftey in Public Spaces in Delhi. Economic and Political Weekly, XLII (17).
16. https://www.who.int/violence_injury_prevention/violen ce/global...

Dr Savita Bhagat
DAV Centenary College, NH-3,
NIT FBD,121001
Savibhagat2002@yahoo.com

31

Literacy-Cirtical Factor For The Knowledge Revolution

Kiran Miglani ,Mukesh

Abstract:
Knowledge of reading, writing and arithmetic is the basic and elementary for being a well-awakened citizen in the modern world. It is a powerful took for communication without which human world is like a world of brutes. An illiterate person is like dumb-driven cattle in the primitive wilderness. Female literacy is the most essential as a literate mother is like beacon light to spread enlightenment in the civilized world. Literacy is the key to educational improvement, social change and population control. A strong wave of renaissance is the result of literacy which ultimately leads to all round awakening. Knowledge Revolution is the stepping-stone for research in all fields of life. Medicine, agriculture, engineering, information technology- in short all basic patterns of social, economic and medical life – have been the sequel of literacy revolution. Literacy in a nut-shell is like the Alladin's Lamp that can summon into immediate existence the all-pervading wealth of human race in order to create a new world of knowledge.

Literacy-Critical Factor For The Knowledge Revolution

Literacy which may be defined as an ability to read and to write, is in fact, the knowledge of three R's. Beside being able to read and to write a person must have some knowledge of elementary arithmetic. He or she must be able to add, to subtract and to multiply. Such a fund of ability as a person is equipped with makes him literate, which in turn makes him a worthy citizen fit to live a socially useful life. It is this knowledge of three R's which makes a man homo sapien in a true sense. Contrary to this if a person is illiterate, he or she is worse than an animal. An animal is not required to participate in a civilization that calls for mutual understanding and ability to communicate among humans while a man is verily an inseparable part of civilized living. If he is illiterate he is worse than a brute, even worst in the present day social milieu. You can sympathise with a beast as it deserves to be sympathized of its animality but you can hardly sympathise with a person who being illiterate, is only a parrot in human form, unable to participate in routine activities of life and entirely dependent on his more fortunate companions who can easily and comfortably express themselves in a confidential way and read and write and juggle with figures and numbers. Hence, literacy, the lowest rung of the ladder of today's social life, is an important thing. A bird can soar on its wings and an animal can freely move about but a man sans an ability to read and write is in Longfellow's words 'a dumb-driven cattle' in the strife of life. Who can nobly deal with him with advantage? Thus the minimum that can help man lead a normal life is his knowledge of reading and writing which alone can save him from being Swift's yahoo in the modern world of Lilliput. Only rarely can a Selkirk here or a Robinson Crusoe there flourish independently sans society. Otherwise literacy is a must even for a plain, uneventful life in a remote corner of a lonely hamlet in a desert.

Literacy alone can pave the way for knowledge revolution through successful communication, learning and information. It alone can help an individual in his growth, his gradual development and overall enlightenment. Being a powerful instrument of social and political awakening, literacy arms a person with a self lightening device to illuminate his darkness of ignorance and ultimately to dispel it in order to awaken him/her into socially useful life. As an instrument of communication, literacy enables a person to channelize his latent energy into useful pursuits. It empower him/her with a faculty to give vent to his feelings and thoughts and thus learn to operate with his/her companions and colleagues in day-to-day activities. Literacy is a useful tool through which a man can understand his social, political and geographical environments and thus participate actively in the give and take process of life. Only when a man can read a paper or writes his thoughts in linguistic symbols can he see what is good or bad for him and for his family, state and the nation. Unless he/she can read the policies for his government and write his intentions on paper a person cannot take part in self-governance. It is his literacy that enables him to communicate with others and thus equip him with arguments for praise or condemnation of what his leaders do or plan to do. Literacy is a powerful tool in the art of communication which alone is the symbol of his being alive to situations and events.

Not only communication but learning too accrues as a natural growth when one gets literate. Advanced knowledge of any branch of study is possible only when a

person is competent to read and write. As a seed serves as a basic element for plant and its final fructification, so does literacy with slow and steady but sure grasp on a man's mind leads to learning. Literacy serves as an appetite for more and more learning. It sharpens a man's curiosity for gaining more and more of knowledge in different fields of life. Literacy whets the inquisitiveness and thus opens up the gates of the wealth of intellect. It arms a man with a sense of keenness that makes him thirsty for drinking at the Pierien Springs. The thirst of more and more gets so sharpened that it becomes unquenchable. In this way literacy leads to vast vistas of knowledge. By encouraging a man to discover the hitherto unexplored areas of learning, literacy brings to man's door the variegated springs of invigorating elixir of life. The springs of learning so discovered through the magic rod of literacy gushes forth the waters of enlightenment and so the light of leaning spreads leading to a total illumination of the remote corners of dark ignorance. This ushers in a dawn of learning and the beast barbarity and illiteracy is banished from life. A revolution takes place and a new dawn of awakening is born like the rejuvenation of the dead.

An illiterate person is a being in its rudimentary stage of birth with the darkness of the world all around him. He is like a blind person groping his way to light. Hurled in a pit of mire of ignorance he struggles for light and strives for the light of knowledge. Multiple layers of the gloom of ignorance envelop his eyes. But literacy acts as an eye-opener and lays bare before him the sprawling regions of knowledge.

A man who can read and write can understand well his environments. He can equip himself well with the information of the world around him. He can see the cricket and hockey matches with meaning which literacy alone afford him. As a watcher of the screen on his idiot box he can realize the tight or loose position of his favorite batsman at Sharjah; he can exult or deplore meaningfully the jerks and the jolts of his favorite athlete playing and making his races the point of world concentration. Only the understanding of the game, the knowledge of the ins and outs of it can fill him with the ecstasy of real applause or regrets of real condemnation. All this is possible when he is literate, for the illiteracy won't let him be glued to the star channel of his small silver screen.

Ability to read and to write is the minimum that can enable man to live and live a little gracefully on this planet. The present world is unlike the world of the past when our fathers and grandfathers depended on others to know the contents of a letter or chithi. Our grand-grandparents with schooling at all pined for the latest information about their distant relatives. Once-in-life pilgrimage to Haridwar with the ashes of one's father or mother in an urn to be immersed in the sacred Ganga, took months together to be completed. Absence of means of transport and speedy communication led to several hazards of travelling. Illiteracy with its attended ignorance caused the pilgrims untold inconveniences. Distant emergences, deaths and births, diseases and natural calamities assumed the coloring of divine wrath. Illiterate men and women were like the frogs in a well, unaware of what was happening all around. Like Selkirk they were the ship-wreeked passengers cast on alien shores left to their own private means of life, they were like the animals who somehow lived on with whatever they could get to eat or drink. Scarcely better than animals they were forced to face the unkind nature like the primitives of the stone age. Hence literate or not they just dragged their lives on till the inevitable hour of death snuffed out their breath. Illiteracy was not a curse – in fact it was a part of life.

But in the present day world which is tightly close-knit big family there can be no deadly disease more fatal than illiteracy. The imperative necessity of being familiar with the ultramodern ways of the world, one must be abreast of the events that do take place daily in every corner of the world. Literacy is the bare minimum to be able to live with some dignity and grace. With the world of webs on the internet, how can an illiterate cope with his day-to-day routine problems? To hope to travel fast in a bullock-cart when cars boom rang the roads will he like living in a fool's paradise. Literacy, the least tool, can alone enable man to pull on somehow. Through reading and writing one can go ahead with the hope to remain well-informed of what is taking place all around. Literacy alone can keep people well-informed or else they are destined to live eternally in the pitch black darkness of ignorance. Hence literacy is the virtual pre condition for a man's living with some grace and dignity.

Literacy is not only a prerequisite for a cultured and a civilized life, it is an inevitable thing for the evolutionary progress of man. Even before Darwin had given us his 'Descent of Man' and the 'Origin of Species', ability to read and write had been a prerequisite to trace back human origin. The theory of the 'Survival of the Fittest' devised by Charles Darwin and discovered by him in his revised version of Evolution Theory emphasises the need for a stronger brain in order to rise in evolution. The gradual process of attaining

higher levels of learning was also passionately researched by Lammarck when he experimented with rats and mice. The lower level of Intelligence Quota in lower animals slows down the pace of evolutionary growth and when accelerated it rises to an imaginable heights. A man with developed capabilities and sharpened faculties is capable of speeding up the process of growing. With his developed senses, growing understanding and keen observational eyes, a literate person can add to the pace of learning. Caxton could hardly devise his printing press, Bell his telephone and Marconi his wireless, had they all been illiterate. Devoid of the rich fruits of literacy we are bound to relapse in to primitivism, not to speak of enhancing the pace of revolution. And if we still persist in illiteracy by not encouraging our fellow humans to be literate we will never be able to evolve the superman who could enjoy longevity of life as envisioned by George Bernard Shaw in his play 'Back to Methuselah'. To keep evolving requires us to be well awakened in the art of reading and writing and well preparing ourselves for our speedy evolution to rise to noble heights so far unattained.

Can we materialize our dreams of all round national development without achieving literacy in our country? Can we hope to compete with the developed countries in the fields of Industry, technology and space research? Can we raise our nation to the heights of noble humanism and achieve world peace? The answer to three questions is sure to compel us to work for total literacy. An illiterate person who does not understand his life better than a pagan, is doomed to a life of passive servitude. Of course he cannot die of starvation but at the same time he cannot die of indigestion while starvation symbolizes poverty and want, indigestion stands for plenty and prosperity. A flawed prosperity is far better than a divine penury. National literacy can save us from disastrous beggary, it can lead to national development and eventually to the fulfillment of our national aspirations. Poverty and scarcity are the sequels of illiteracy while total literacy ensures gradual development. Let us, therefore, spread literacy and inject the spirit of awakening in people by making them realize their dreams. Illiteracy, if allowed to remain, is sure to reduce our men and women to the abyss of poverty. It is sure to degrade us in the eyes of world comity by reducing our men and women to mere hewers of coal and drawers of water. We have already tasted bitter fruits of slavery and unless we keep pace with the latest trends of rushing international society we may again return to a state of servitude with our golden dreams of development and growth, democratic realm, all shattered to pieces.

Literacy is undoubtedly the starting ground for bringing about the knowledge revolution. Under any system of government but especially under democratic set up literacy among all and particularly among elderly women is highly desirable. Women must be literate at all costs and if higher education is a far off goal, literacy can be easily accessible goal for us. Women literacy is a must for India where mothers are entrusted not only with the daily domestic chores in homes but they are also instrumental in bringing up the children till they became self-sufficient. Teach a man and you teach an individual but teach a women and you teach the whole family. It is the mother whose lullaby instills the first lesson of patriotism in the child. It is her prattling dialogues with her child playing in her lap that provides the child with the first fundamentals of life's lessions. Shivaji Maratha grew up into a patriot because Jija Bai never let an opportunity slip to teach him the love of his country. When Shivaji had conquered almost all the adjacent forts and wielded sovereignty over the small kingdom he had carved out of declining Mogul empire he first sought his mother's blessings whom he proudly addressed with the following words:-

“O! Lady, all my forts are thine
But ask me not what is not mine.”

Jija Bai who had been the primary source of Shivaji's inspiration retorted back with a sigh but with an assumed rebuking posture:

'Beware a mother's curse', she cried.
Its fire shall scorch thy kingdom wide.
Give me Singrah'.

The next moment witnessed the siege of Singharh which was conquered and annexed to Maratha kingdom. The wish of the mother was the blessing of the son. It justifies the necessity of educating a mother who like Jija Bai plays an important role in preparing the sons of the soil as great patriots. Mother must be educated; they wield an everlasting influence over their children whom they prepare for life's struggle from the moment they bear them in their wombs. Napolean Bonaparte was in his mother's womb when he was made to leave Corsica which island then was not a part of France. Bearing her son in her womb, Napolean's mother had to pass through several physical sufferings before Napolean was born. And whatever external impressions the child bore proved of great value to him in his later life. Like Shivaji and Napolean we have so many instances of mother being responsible for their children's greatness. Garibaldi and Gandhi, Haquiqat Rai

and Abhimanyo call aloud from the ruins of history that maternal education is of most crucial importance for the child. Hence women must know what the world is like, what the would be children should be and what the country expects then to be? All this is possible only when women are literate and can at least use newspapers, read simple writings and understand main currents of events that take place in the world around them.

Literacy in women and men when they are physically mature enough to be familiar with the trends of life can lead them to wider fields of communications. Especially the women who have been married and borne children and have crossed the first part of their life are in a more advantageous position than those who are still underteens and have remained illiterate for one or the other reason. If an illiterate woman after twenty starts learning reading and writing and gets to a certain level of literacy she is in a better position, to go ahead for higher attainments. At adult centres where adult education is imparted by devoted teachers these women can find better opportunities for happier future. It is here that the torch of literacy once blazed gets brilliant and leads to wider vistas of education. Women with keen interests for more useful social, economic and political activities find fertile soil for their latent capabilities to flourish. Hence literacy serves for them as a stepping stone to achieve higher things in life. Once the seed for leaning is sown, it is sure to sprout into a full-fledged tree and with a sense of keen curiosity once aroused, women become ambitious to outdo their male counterparts in politics, social service and in other fields of life. Literacy proves boon, a divine gift for the attainment of oft-dreamt of goals. Active participation of women in local elections and their enthusiastic role in the administration of local self-governing bodies in the country has more than justified the usefulness of literacy drive at the national level in India. Literacy indeed is a pre-condition for the knowledge that will ultimately usher in a realm of happiness.

Of all the factors that contribute to the revolutionizing of knowledge, literacy is the most indispensable and the most powerful. In fact what we call revolution in knowledge is not a radical change that takes place all of a sudden. It is not an abrupt happening which like the eruption of a volcano takes place all at once. The big change for the better in knowledge does not surprise us and we do not feel caught unaware in its mesh. Knowledge revolution is a slow process that starts like all processes in a small way. Gradual growth takes place, things develop peacefully with steady advancement and improvement. Hence revolutionizing knowledge is only an evolution that goes on silently and slowly, sometimes even uneventfully without jerks and sudden jolts. Like the famous French Revolution of 1789, knowledge revolution goes along its path with strides sometimes unexpected, sometimes elongated but always surely. The revolution of knowledge, however, is not the end in itself; it is a means for some greater end. When knowledge stands at our threshold, it calls for efforts to disseminate it in thousands of directions and the revolution ushers in a dawn of enlightenment. But revolution of knowledge demands great awareness so that the gates of wealth once opened do not flow their wealth in misguided directions. At present the endeavors' of government for spreading literacy have started bearing fruits. The literacy drive initiated three decades back has fructified. The first blossoms that have appeared on the fructifying tree of literacy have proved true our hopes. The innumerable channels that have started opening have almost dazzled us with the first flush of success. Literacy goals already achieved have revolutionized our life. The erstwhile illiterate adults have emerged from the darkness of ignorance into the age of illumination. The adults who have been rendered literate have advanced in the direction of education. The illiterate hapless adults of yester years have been converted into the most learned scholars of the current days. With the onrush of computers, web sites and internets, the dark age of ignorance seems to have slipped past giving place to enlightenment and awaking. The extensive use of computerized information has opened up a bright future of knowledge with the knowledge revolution gone full one round. The vast vista of future lies sprawling, yet unexploited. Literacy programs of the seventies and sixties have yielded rich fruits dispelling the darkness of uncertainties and misgivings.

The dawn of knowledge revolution that literacy has already ushered in is clearly visible in the fields of social change, educational improvement and population control. Literacy being the most important index of overall progress, acts as a catalyst that accentuates the speed of reformation in all fields of a nation's life. Already in educational and cultural field literacy has let loose a wave of enthusiasm working for higher standards of pursuits and possession of goals. Knowledge of happier pastures has accelerated people's pace, especially those on whom new dawns of knowledge have risen in attaining higher levels of learning. Newly discovered courses in computers knowledge have

held bright visions of progress. Pursuits of training degrees in business and commerce have reached new heights. Research work in academic and professional knowledge, methods of teaching, job oriented know how and learning of new techniques of controlling environments have touched the acme of all time efforts and achievements. Cultural activities which serve as the measuring rod of social awakening have already received an impetus. New fanged policies and schemes for social change have brought about a transformation of ideas and ideals. In the wake of the literacy drive several programs for healthy outlets of life resulting into social welfare have become the keyword of social unrest. A strong wave of renaissance in the social order has been born resulting into ardent steps in the direction of widow- remarriage, en-mass marriages of poor but young weddings and other avenues of economic amelioration of the financially backward people.

Not only in the field of social and education but also in national pursuit of population control has literacy created its spell. Once literate, the illiterate but young couples take a long strides in the direction of population control. Recent times have witnessed uncontrolled passion among the new-literates for limiting their families to much smaller size. Sophisticated means of contraception have proved very popular and the slogan of 'Hum Do Hamare Do' has assumed a meaningful purport of national significance. With the birth of the billionth child in India, the significance of population control had assumed new dimensions and literacy drive is bound to have its strong effect with its ever marching galloping goals and all attainment. With a new sense of national responsibility in their hearts and a new hymn of national reconstruction chanting on their lips, the young literate couples are avowed to the ideas of population control. Thus the Malthusian theory of mathematical and geometrical calculations is passing through an ordeal of survival with our literacy rate touching new high points.

Literacy with its latent potentiality for knowledge revolution is also on march to cause a great change in our attitude to health programs. Gone are the days when rural population in sleepy hamlets and huts used to depend on divine mendicants and quacks for the cure of their physical ailments. Poor knowledge or deep ignorance of rules of hygiene was always instrumental in the spread of epidemics resulting into immature and untimely deaths. Indigenous methods of treatment were either poorly employed or in adequately exploited while research based Allopathic or Ayurvedic medicines were yet imagined. In fact deaths, unnatural deaths used to be the order of the day. Illiterate men and women superstitious parents quackery, indifference of govts. and deep-rooted orthodoxy played havoc with life. Paganism, sorcery, black magic, tantra-mantra and above all fatalism ruled the roost. But like the proverbial Alladin's Lamp literacy programs have sparked off the flame of reason. The torch of literacy lighting the dark corners of remote hearts has illumined the dismal nooks of our national psyche. Literacy in its accumulative onrush to knowledge has roused our erstwhile illiterate people from their centuries old slumber of ignorance. One can witness a total awakening all around. Even the ascetics in mountain caves, when they feel some mental or physical convulsion, rush for a city clinic for ready healing of their ailments. Literacy has brought into our view a galore of Ayurvedic, Allopathic, Homeopathic, Psychoanalytic, Unani, Naturopathic, Reiki, Yogic and other multi-faced medicinal cures and clinical centres. Is not literacy the legendary lamp in the hands of Florence Nightingale darting its light of cure on every wound? Is it not the magical stick in the hands of Moses to strike against the adamant rocks of illiteracy and drought to hasten the springs of literate waters of gush forth in order to slake the thirst of centuries?

Knowledge revolution is not confined only to medicine and health care questions, it entails tens of other problems arising from agriculture, sports, customs and their tyrannies, linguistic knots, securalism, national integration, corruption in all fields of administration, justice, law, order, discipline and hundreds of allied topics and currents affairs on national and international levels, crimes, punishments, prohibition, drug-addiction, social, economic and political evils, systems of government, planning, industrialization, and even spiritual imbroglios. Literacy is the precondition to the tackling of all such problems. Ignorance of the technical complications of law and legal procedures further complicates the matters. Unless a citizen has some basic understanding of all that faces life, he or she cannot hope to wrangle with riddle-like things of life. Life being a non-stop struggle against odds is not at all to be treated as a losing preposition. It is to be fought and won. But unless one is literate and is equipped with reasonable amount of atleast elementary knowledge of things one cannot hope to wrestle with the adverse circumstances and emerge triumphant over them. Literacy, to be sure, is the first stepping stone to the understanding of life's activities. It alone enables a man to take up cudgels against hundreds of social, economic and political injustices that characterise modern life. An illiterate

farmer with no information about the latest trends in rotation of crops can scarcely hope to benefit from research based information on matters concerning sowing, reaping, thrashing and other allied activities of farming. Only a literate tiller of land with sufficient reading interests, with tastes in agricultural pursuits broad cast on radio or screened on J.V. can reap the benefits of new-discovered varieties of grains and oil-seeds. Similarly a reading villager with interests in social problems can easily involve himself in the tangles of such challenging topics as dowry-deaths, superstitions and linguistic knots of varying degrees. Literacy equips a man with better material for arguments and reasoning. It alone enables a man to rise above narrow, parochial approaches to the questions concerned with caste, language and creeds. Illiteracy on the other hand leads only to bigotry, fanatic behavior, evil passions of division and sectarian outlook. Seldom has an educated person been utterly devoid of humanitarian attitudes to life. Seldom has a person well-equipped with knowledge and learning been beastly in his conduct and behaviour towards his fellowman. A Hitler or a Mussolini may be an exception, but generally knowledge gained through books, newspapers and contacts resulting into rich experiences, leads to broadening horizons of life. Cruel dictators, callous judges, dishonest sportsmen, corrupt politicians and immoral men of medicine, no doubt, have been polluting human life with their misdeeds but in the whole the sum of literacy and education, once it shines upon man, never lets him lapse into darkness. Literacy gradually leads to higher knowledge of things and people; and being a crucial factor for knowledge revolution, works its way to the ultimate salvation of life.

There is no doubt that literacy is a crucial and critical factor for the knowledge revolution. It is not only so, it is decisive too, for on it depends the future of India. The land that is so rich in its resources can no longer afford to be poor nation. Not the material wealth, tapped and untapped resources, plenty and material wealth make a nation strong. It is the men, the women, those who are well-trained in art, in humanitarian outlook and in living purposefully, who take the country to heights of glory. Literacy with its potentiality of bringing about the knowledge revolution can work wonders. It alone can make people morally upright, economically self-dependent and culturally rich. Literacy, through for below education, is the minimum condition for attaining political awakening which is a pre-requisite for democracy. However, for knowledge revolution literacy is not enough as it is synonymous with little learning which is of no avail in a democratic society. As Alexander Pope has said.

> "Little learning is a dangerous thing
> Drink deep or taste not the Pierian Spring".

But still literacy is a critical factor for knowledge revolution. It may be the least minimum but it surely is the indispensible factor. Literacy is clearly and obviously far better than illiteracy.

References

- The Renaissance in India: By J.H. Cousins
- Nationalism, Madras, Macmillan, 1917; rpt. 1976.
- East and West in Religion: Dr. S. Radhakrishan.
- Glimpses of World History: J.L. Nehru.
- Freedom at Midnight: Mulana Abul Kalam Azad.
- The Religion of Man, London, Allen and Unwin, 1931.
- Towards Universal Man, Bombay, Asia Publishing House, 1961.
- Aurobindo, Sri, *The Renaissance in India*, 3rd ed., Calcutta, Arya Publishing House, 1946.
- Datta, K.K., *Socio-Cutural Background of Modern* India, Meerut, Meenakshi Prakashan, 1972.
- *Ideas of Great Philosophers:* William S. Sahakian.
- A History of Civilization, *Volume II:* 1648 to the Present: Brinton Christopher Wolf Winks.

Kiran Miglani
Assistant. Professor,
Govt. College, Hisar.
Mukesh
(Research Scholar),
Govt. College, Hisar.
Address- 115 MC Colony,
Hisar (Haryana)

उपन्यास गूगल बॉय

पुस्तक समीक्षा

32

समीक्षक – हरनाम शर्मा **पुस्तक लेखक – डॉ0 मधुकांत**

सारांश –

सत्यम शिवम सुंदरम की कशीदाकारी करता उपन्यास गूगल बॉय।

चिंतन का सटीक लिपिबद्ध होना ही उसकी सार्थकता है ।और उस सोचे हुए की पछटपटाहट सिर्फ पृष्ठ पर उतर आने से दूर नहीं होती। लिपिबद्ध शब्द का आचरण में उतर आना या व्यवहार में प्रयुक्त होकर समग्र सामाजिक चिंतन एवं व्यवहार को प्रभावित करना नवीन, सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना से लैस करना अंतिम लक्ष्य है।प्रमेय रचना एवं रचनाकार को स्वयं सिद्ध करने का अवसर देती है। मधुकांत के वर्तमान लेखन को लेकर स्वर्गीय कवि श्री भवानी प्रसाद मिश्र की ये पंक्तियां स्मरण हो आती हैः–

कलम अपनी साध,

और मन की बात बिल्कुल ठीक कह ।
यह कि तेरी– भर न हो तो कह ,
और बहते बने सादे ढंग से तो बह।
जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख।
और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।
चीज ऐसी दे कि जिसका स्वाद सिर चढ़ जाए
बीज ऐसा बो कि जिसकी बेल बन बढ़ जाए ।
फल लगें ऐसे की सुख –रस, सार और समर्थ
प्राण– संचारी की शोभा– भर न जिसका अर्थ।

प्राण– संचारी रक्तदान विषय को मन में साधकर, कलमबद्ध करने में संलग्न श्री मधुकांत का नवीन उपन्यास श्गूगल बॉयश आदर्शोन्मुखी तथा रक्तदान प्रेरक कथ्य को कदम– दर– कदम श्बुनता इति की ओर अग्रसर होता है । नायक गॅूगल (जिसका असली नाम गूगन है जिसे अध्यापक द्वारा प्रथम कक्षा में प्रवेश करते समय गलती से गॅूगल लिखा गया है) एक इमानदार किशोर है। उसकी मां उसे दानवीरों तथा किशोर बलिदानियों की गाथाएं सुनाकर पाल –पोस कर बड़ा करती है । उपन्यास का आरंभ ही मां द्वारा दानवीर कर्ण के त्यागपूर्ण एवं दान प्रवृत्ति के उन्नत भाव मिश्रित घटनाओं के वर्णन से होता है।प्रथम परिच्छेद से स्पष्ट हो जाता है कि यह कथा उज्जवल आदर्शों को लेकर गमन करेगी। आगामी अध्याय में एकलव्य,वीर प्रताप, दानवीर भामाशाह, रानी पद्मिनी का जौहर, तथा वीर बालक बादल का बलिदान आदि ऐसी अनेक उप कथाओ का अवलंबन गूगल के व्यक्तित्व को मानवीय गुणों से दिव्या करता है । यही वजह है कि वह अपने काठ शिल्प की वाजिब कीमत स्वीकार करता है, शेष को प्रभु चरणों में समर्पित कर, मंदिर का खर्च चलाने को दे देता हैं।

एक दुर्घटना में पिता की मृत्यु के उपरांत उसे अधिक जिम्मेदारी से पैतृक कार्य करना पड़ता है। वह उसे और आगे बढ़ाता है ।आई टी आई से प्राप्त प्रशिक्षण उसके जीवन का आधार बनता है ।उसे एक पुराने सोफे की खरीद से उसकी सीट के नीचे छुपे सोने की गिन्नियों का खजाना मिलता है। इस संपत्ति को वह प्रभु का दिया वरदान समझकर ईश्वर के बनाए बन्दो की सेवा में खर्च करता है । परिणाम स्वरूप उसका अर्जित मुद्रा– साम्राज्य तीव्र गति से विस्तार पाता है । ऐसे भी वह अपनी माता जी की सलाह और आशीर्वाद से रक्तदान शिविरों के आयोजन पर खर्च करके गंभीर रोगियों को रोगमुक्त कर नव जीवन प्रदान करता है।

गॅूगल अहंकारमुक्त, अपरिग्रही, संतुष्ट, श्री बांके बिहारी भक्त, परोपकारी, स्थितप्रज्ञ युवा है, जिसे जन उपयोगी कार्य करने का अद्भुत जुनून है। गॅूगल का परिवार श्री बांके बिहारी का अनन्य भक्त है। अपनी प्रत्येक उपलब्धि को परिवार बांके बिहारी का वरदान मानता है और यही भाव मां– बेटे से सद्कर्म करवाते रहने की प्रेरणा बनता है।

रक्तदान के कार्यों में उसकी मित्र अरुणा भी जन सामान्य में जाकर प्रचार–प्रसार करती है। वह सत्यनारायण व्रत कथा की तर्ज पर रक्तनारायण व्रत कथा का आयोजन करती हैं जिसमें रक्तदान प्रक्रिया और उससे प्राप्त सुख– संपन्नता का वर्णन है। उपन्यास का पूरा कथानक रक्तदान क्रिया को पवित्र और लोकोपयोगी बनाने के प्रयास में सहायक उप–कथाओं से निर्मित है। गॅूगल के कार्य प्रत्यक्ष समाज द्वारा मान्यता प्राप्त करते हैं। गॅूगल को मानव– कल्याण के उच्चतम कार्य करने के लिए राजकीय उच्चतम संस्थान यानी राज्यपाल द्वारा सम्मानित तथा पुरस्कृत किया जाता है। गॅूगल तथा अरुणा का जीवन साथी बनने का प्रसंग कथा को सुखांत इति तक पहुंचाता है।

वस्तुतः उक्त उपन्यास किशोर नायक द्वारा किशोरों को उचित पथ– प्रदर्शन का निर्देश करता है। इस तरह उपन्यास में लेखक स्वयं के विचारों तथा कार्यों को तथ्य में बुनकर सत्यम शिवम मंगलम की अद्वितीय कशीदाकारी करता है। वैसे तो मधुकांत का

स्वयं का जीवन भी रक्तदान आंदोलन का पर्यायवाची बन चुका है। जैसे वे कह रहे होरू–

अब मैं और मेरे शब्द
अलग अलग नहीं है
एक है।
मैं चाहता हूं
कि कभी उनकी शर्म न बनूं
क्योंकि वे मेरी टेक हैं।
मैं उन्हें सिर्फ बरतूं नहीं
उन्हें जीऊं।
बात कठिन है
लेकिन करना चाहिए।
शब्दकार को अगर जरूरत पड़े
तो अपने शब्दों पर
मरना चाहिए।।

(भवानी प्रसाद मिश्र)

उपन्यास के कथ्य में गति है। भाषा अति सरल है । पथ–प्रदर्शक एवं प्रेरक घटनाएं हैं। धार्मिक और कर्मकांडी वातावरण होना उपन्यास पर अंधविश्वासी प्रवृत्ति प्रसारित करने का आरोप निमंत्रित करता है किंतु कुल सकारात्मक सोच की पक्षधरता उपन्यास की सार्थक परिणति है।

हरनाम शर्मा(समीक्षक)
ए जे 1/54–सी विकासपुरी
दिल्ली 110018. M 77 0809073

पुस्तक– (किशोर उपन्यास) गूगल बॉय। लेखक– मधुकांत, पृष्ठ संख्या– 112, मूल्य– ₹100 प्रकाशक– एस पी कौशिक इंटरप्राइजेज दिल्ली 93